दाम्पत्य जीवन

[काम-विज्ञान सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थ]

(सचित्र)

लेखिका—

श्रीमती सुशीलादेवी निगम, बी० ए०

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

जून, १९३०

बार २,०००] [मूल्य ढाई रुपया

उपहार
Brijratan
Parakh
Bikaner

मेरा सर्वस्व

मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद, काबा काशी यह मेरी !
पूजा, पाठ, ध्यान, जप तप है, घट-घटवासी यह मेरी !

कृतज्ञता-प्रकाश

इस पुस्तक को तैयार करने में नीचे लिखी पुस्तकों से सहायता ली गई है। इनके लेखकों और प्रकाशकों के प्रति हम सादर कृतज्ञता प्रगट करती हैं :—

1—Motherhood and the relationship of the Sexes
By C. Gasquoine Hartley

2—Confidential Talks with Husband and wife
By Lyman B Sperry, M.A.M.D.

3—Youth's Secret conflict
By Walter M. Gallichan

4—The Threshold of motherhood
By R. Douglas Howat, L. R. C. P., L R.C S., L.R.F.P.S.

5—Radiant Motherhood
By Marie Stopes, D Sc. & Ph. D.

6—Married Love
By Marie Stopes, D Sc. & Ph. D.

7—Wise Parenthood
By Marie Stopes, D.Sc. & Ph. D.

—सुशीला निगम

अपनी बात

स पुस्तक में जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें मेरी 'अपनी बात' बहुत कम है। जिन पुस्तकों से मैंने सहायता ली है, उनकी सूची अलग दे दी गई है। अधिकांश बातें इन्हीं पुस्तकों की हैं। हाँ, इन पुस्तकों को सामने रख कर मैंने उनके अंशों का अनुवाद कर दिया हो, यह बात भी नहीं है। इन पुस्तकों को पढ़ कर, विचार करने, सोचने के बाद ही अपनी भाषा में मैंने यह पुस्तक लिखी है। मैंने उनके विचार में कमी-वेशी भी की है। इस पुस्तक में कुछ बातें ऐसी भी है, जिन्हें मैंने अपने मन से लिखा है।

यह पुस्तक आवश्यक है या नहीं, इस विषय में मैं यहाँ कुछ भी नहीं लिखना चाहती। इस बात की चर्चा पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में ही की गई है।

पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय बहुत ही नाज़ुक है। जो कुछ बातें इसमें लिखी गई हैं, यद्यपि उनमें यथाशक्ति मैंने इस बात की प्रबल चेष्टा की है कि वे भद्दी या अश्लील न होने पाएँ, फिर भी यह विषय ही ऐसा है कि सतर्कता रखते हुए भी उसका बड़ी आसानी से दुरुपयोग किया जा सकता है। ग्रन्थ का निर्माता कितना

ही सतर्कता क्यों न रक्खे, वह लोगों को खड्ग के दुरुपयोग से—उसके द्वारा व्यर्थ हत्या करने से—नहीं रोक सकता। तलवार को लेकर लोग आत्म-रक्षा भी करेंगे और आघात भी। काटना तलवार का धर्म है, निर्माता तलवार के धर्म को नहीं बदल सकता।

ऐसी दशा में यदि तलवार की रचना करते समय निर्माता का हृदय काँप उठे तो आश्चर्य नहीं। उसे केवल एक ही सन्तोष रहता है कि वह अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए लोगों के हाथों में आत्म-रक्षा का एक अस्त्र प्रदान कर रहा है। उसकी मन्शा ऐसी नहीं रहती कि लोग इस तलवार से अबला या अशक्त पर स्वार्थ-वश आक्रमण करें।

पुस्तक लिखने का यह मेरा प्रथम प्रयास है। हाँ, मुझे इतना अवश्य मालूम है कि हिन्दी-भाषा में 'शील' शब्द का क्षेत्र या उसकी परिधि बहुत विस्तृत है। किसी भी पुस्तक की जाँच हमारी इस मातृ-भाषा में प्रतिपाद्य विषय के महत्व तथा प्रतिपादन-शैली की उत्तमता से न कर 'शील' रूपी तराज़ू पर रख कर की जाती है। ऐसा करके विद्वान ग़लती कर रहे हैं, यह मैं अपनी ज़बान से नहीं निकाल सकती। हिन्दुओं में अपने गुरुजनों के प्रति ऐसी बात कहने वाले को लोग 'बेअदब' कहते हैं। इस दोष की भागी बन कर 'नरक' जाना मुझे मन्ज़ूर नहीं। लेकिन इतना अवश्य कहूँगी कि हमारी भाषा का प्रवेश-द्वार इतना सङ्कीर्ण कर देने से इस समय हानि हो रही है। अस्तु—

शायद मेरी यह पुस्तक भी अश्लील समझी जाय, लेकिन मुझे इससे मतलब नहीं है। इसे आप अश्लील समझें, अनुवाद समझें,

चोरी समझें या मौलिक समझें, किन्तु मैंने इसे इसीलिए लिखा है कि इसे पढ़ कर मेरे भाई-बहिन इस सम्बन्ध का साधारण ज्ञान लाभ करें और अज्ञान में वे जो ग़लतियाँ करते हैं, उनसे बचें। इसका परिणाम क्या होगा, इसका अभी से मैं अन्दाज़ नहीं लगा सकती, और परिणाम है भी मेरे हाथ के बाहर की बात—कर्मण्ये-वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—सुशीला निगम

विषय-सूची

क्रमाङ्क विषय पृष्ठ

छठा परिच्छेद

सातवाँ परिच्छेद

आठवाँ परिच्छेद

नवाँ परिच्छेद

दसवाँ परिच्छेद

ग्यारहवाँ परिच्छेद

बारहवाँ परिच्छेद

तेरहवाँ परिच्छेद

चौदहवाँ परिच्छेद

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सोलहवाँ परिच्छेद

सत्रहवाँ परिच्छेद

अठारहवाँ परिच्छेद

उन्नीसवाँ परिच्छेद

चित्र-सूची

तिरङ्गे

आर्ट पेपर पर रङ्गीन

आवश्यकता

ष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य की यह चेष्टा रही है कि वह प्रकृति के रहस्य को समझे, प्रत्येक विषय मे अपना ज्ञान बढ़ावे और उस विषय में दक्षता हासिल करे। केवल स्थूल पदार्थों का ही नहीं, सूक्ष्मतम पदार्थों की ज्ञान-प्राप्ति के लिए भी उसने अथक परिश्रम किया है, और वेद-सरीखे ग्रन्थ-रत्न की रचना की है। किन्तु आश्चर्य है कि जीवन के अत्यन्त कोमल एवं महत्वपूर्ण विषय—काम-विज्ञान या जनन-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने में आज तक उसने शिथिलता दर्शायी है।

अवश्य ही समय-समय पर इस विषय के कई महत्व-पूर्ण ग्रन्थ लिखे गए हैं, लेकिन और विषयों की ग्रन्थ-

संख्या पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ओर हमने यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया है।

इस विषय की पुस्तकें कम होने के कारण भी यथेष्ट हैं। सब से पहिली बात तो यही कि विषय बड़ा नाज़ुक है और इस विषय में जो कुछ लिखा जाय उसके दुरुपयोग की आशङ्का रहती है। दूसरी बात यह कि विषय गोपनीय समझा जाता है तथा इसकी चर्चा करने में लोगों को सङ्कोच होता है। तीसरी बात यह कि इस विषय के ज्ञान की आवश्यकता लोगों को अनुभव न हुई। जब तक किसी बात की आवश्यकता न दिखे तब तक उसे कौन करेगा? लेकिन देश की दिनोंदिन बढ़ती हुई ग़रीबी, रोगों का आक्रमण आदि ने देश में ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी है कि अब लोग इस आवश्यकता को महसूस करने लगे हैं।

इस बात को हम बखूबी समझ चुके हैं कि हमार पतन हो रहा है। लेकिन अपने उत्थान के लिए दूसरी ओ प्रयत्न करते रहने पर भी हमने अपनी उन्नति के मूल विषय पर ध्यान नहीं दिया। जिस प्रकार इमारत खड़ी करने के लिए नींव पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार देशोन्नति के लिए अपनी नसल में सुधार करना ज़रूरी है; और यह उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक देश का प्रत्येक व्यक्ति काम-विज्ञान के सहज ज्ञान से परिचित न हो जाय।

इस समय भारतवासियों की दशा बड़ी हीन एवं दय-नीय हो रही है। लोगो ने आश्रम-धर्म भुला दिया है। स्त्रियाँ विलास की सामग्री हो गई है तथा वीर्यपात एक प्रकार का सुलभ आनन्द समझा जाने लगा है। पन्द्रह वर्ष की अवस्था के भीतर ही अधिकांश बालक-बालिकाओं का विवाह हो जाता है और इसी अपरिपक्क अवस्था में वे सम्भोग-क्रिया आरम्भ कर देते है।

इसका एक प्रधान कारण है। आज तक लोग इस क्रिया को लज्जाजनक समझते आए हैं। इसे एक अत्यन्त गोप-नीय विषय क़रार देकर इस पर जबान खोलना अभद्रता समझा जाता रहा है। हमने सब से भद्दी ग़लती यह की है कि इस क्रिया को अपने जीवन का एक प्रधान कार्य न समझ कर, इसे परित्याज्य और दूषित विषय समझ लिया है। हमने इसे मानव-जीवन का धर्म नही, वरन् एक ऐसी अनिवार्य आवश्यकता समझी है, जो हमारे लिए स्वाभाविक स्वास्थ्य-वर्द्धक नहीं, वरन् हानिकर है।

किन्तु अब इस विषय पर लोगो का मत बदल रहा है। अब कई प्रसिद्ध विद्वान्, सुधारक तथा डॉक्टर इस बात को स्वीकार करने लगे है कि लोगो में इस विषय का सहज प्रारम्भिक ज्ञान फैलाना तथा इस विषय के लोगो के दृष्टि-कोण में परिवर्त्तन करना ज़रूरी है।

लोग प्रेम की महिमा तो गाते हैं, लेकिन वे इस बात

को भूल जाते हैं कि स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक प्रेम या आकर्षण के दो पहलू हैं। भौतिक और आत्मिक प्रेम के अस्तित्व एवं परिवर्द्धन के लिए इन दोनों का खिलना आवश्यक है। एक के मुरझाते ही दूसरा भी गिर पड़ेगा।

इसके अलावा यह विषय लज्जाजनक क्यों? खाने-पीने की तरह यह भी हमारा स्वभाव है तथा इस सृष्टि-सञ्चालन एवं लोक-संग्रह के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

जब [illegible] की यह इतनी आवश्यक तथा अवश्यम्भावी घ[illegible] आ[illegible] क्या यह अच्छा न होगा कि इसके सङ्कटि[illegible] [illegible] [illegible]के पहले कि हम इस कार्य में लिप्त हो, हम[illegible] [illegible]के [illegible]ाधारण ज्ञान प्राप्त कर लें?

इस[illegible] चलने से ही आज हमारी दशा इतनी गिर गई है तथा हम इस विभाग मे पशु-पक्षियो से भी हीन हो गए हैं। मनुष्य होते हुए भी हमने इस दिशा में अपनी बुद्धि का उपयोग नहीं किया है। जब प्रायः प्रत्येक बालक-बालिका को इस कार्य मे संलग्न होना है, तब इस विषय को उनसे गोपनीय रखने से क्या लाभ? अनजान मे बालक अपने हाथ आग मे जला डालें, इसकी अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा होगा कि आग के उपयोग की शिक्षा लेकर ही वह आग का स्पर्श करें।

अपने जीवन को सुख से बिताने के लिए यह ज्ञान बहुत जरूरी है। अज्ञानता के कारण हम ऐसी गलतियाँ कर

डालते हैं, ऐसा अनर्थ कर गुज़रते हैं कि हमारा जीवन भार हो जाता है। हम अपनी मनुष्यता तक खो बैठते हैं और जीवन के उद्देश्य से भटक कर गड़्हों में गिर पड़ते हैं।

बिना किसी तरह की शिक्षा पाए ही हम लोग यौवन के मज़े लूटने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। हम लोग तो पहले से ही इसके लिए लालायित रहते हैं, पहले से ही हमारे हृदयों में स्वाभाविक काम-तरङ्गे उठती रहती हैं। बस, छूटते ही हम विना बाधा, विना विश्राम के इस [illegible] में डूबने-उतराने लगते हैं।

फल ठीक वही होता है, जो [illegible] नने वाले व्यक्ति को अगाध जल-राशि में डाल [illegible] ता है। किसी विद्युत् यन्त्रालय में एक अबोध [illegible] यक्ति को छोड़ देने का फल क्या होगा? इधर-उधर हाथ मारते ही उसका प्राणान्त हो जायगा।

जिस विवाह में प्रेम और उल्लास के फल लगने चाहिए थे, वहाँ दुख, गृह-कलह, मनोमालिन्य तथा आजीवन असाध्य रोग के दर्शन होते हैं। हम चेतते हैं, किन्तु उस समय, जब हम प्रायः बेकाम हो चुके रहते हैं, जब हमारे जीवन की वसन्त-बहार का अन्त हो चुका रहता है, और जब हमें वह क्षति पहुँच चुकी रहती है, जिसे हम पूरी नहीं कर सकते, मिटा नहीं सकते।

मेरे एक मित्र हैं। उनकी अवस्था इस समय २४ वर्ष

की है। वे विवाहित हैं और उनके दो-तीन सन्तानें भी हैं। अचानक एक दिन मेरे घर पर बैठे-बैठे उन्हे चक्कर आ गया; उपचार करने पर वे स्वस्थ हुए। बातचीत के सिलसिले मे पता चला कि उनकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था बहुत खराब हो चली है! ऑफिस का अपना काम वे पूरा नही कर पाते। आध मील भी चलना पड़ जाय तो उनकी कमर दुखने लगती है। रोज़ शाम को उन्हें चक्कर-सा आता है। कोई बात भी याद नहीं रहती। पता लगाने पर मालूम हुआ कि यह सब अति-मैथुन के कारण हुआ है। डॉक्टर के पास ले जाने पर पता चला कि विवाह के पूर्व वे हस्त-क्रिया के भी शिकार बन चुके थे। इतना सब होते हुए भी डॉक्टर के रोग-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर वे ठीक-ठीक न दे सकते थे। कारण उन्हे इस विषय का साधारण ज्ञान भी न था और न यही पता था कि उन्हे यह रोग किस कारण से हुआ है। अभी तक उनका "दैनिक" क्रम जारी था और उनका कथन था कि एक साथ रहने पर वे अपने को रोक रखने में असमर्थ हैं।

एक शिक्षित, वयस्क, विवाहित पुरुष के इस अज्ञान पर शायद पाठकों को आश्चर्य हो, किन्तु अधिकांश भारतीयों की दशा आज यही है। आज इस देश के ८० फी सैकड़ा विवाहित स्त्री-पुरुषों को काम-शास्त्र की साधारण से साधारण बात का बोध भी नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह कि किसी भी काम को शुरू करने के पहले उसका ज्ञान प्राप्त कर लेना निहायत ज़रूरी है। अन्य सभी कामों में हम ऐसा करते भी हैं। बिना वैद्य-विद्या में दक्षता प्राप्त किए हम रोगी को दवा नहीं देते। केवल यही—अपने जीवन के अत्यन्त मर्म-स्थान या अंश पर हम अनाड़ी की तरह कुठाराघात करते हैं।

सुखी जीवन बिताने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्त्री-पुरुषों को काम-शास्त्र की शिक्षा उस समय के पहले दी जाय, जब कि प्रकृति उनके हृदय में प्रबल काम-सञ्चार पैदा करती है।

विधवाओं की संख्या में वृद्धि, वेश्याओं का अस्तित्व, प्रदर, हस्त-मैथुन, स्वप्न-दोष, पुरुषों मे जनानेपन की उत्पत्ति, नपुंसकता आदि नाना व्याधि एवं सामाजिक कुरीतियों के बढ़ने—केवल बढ़ने ही नहीं; उनके पैदा होने का कारण भी हमारी काम-शास्त्र सम्बन्धी अज्ञानता ही है।

दो-एक उदाहरण लेकर देखना चाहिए कि इस अज्ञानता से हमें किस प्रकार हानि हो रही है।

बालक की ज्ञान-पिपासा बड़ी प्रबल होती है। जिन-जिन चीजों को वह देखता है, उन्हें जानने के लिए, समझने के लिए वह उत्सुक हो उठता है। स्वभावतः वह अपनी माता से या कभी-कभी पिता से ही प्रत्येक के विषय में सवाल करने लगता है। यह भी ध्यान में रखना होगा कि प्रत्येक

बालक एक ही सवाल या कुछ सवाल क्रमानुसार नहीं करता। जिस बालक के ध्यान में जो बात आ गई, वह उसीके सम्बन्ध में सवाल कर बैठता है।

अधिकांश बालको को पहले अपनी जननेन्द्रियों के सम्बन्ध में ही ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता पैदा होती है। वह पूछता है—यह क्या है? इसका नाम क्या है? यह है किसलिए? आदि।

किसी नग्न बालक-बालिका से साक्षात् होने पर उन दोनो की जननेन्द्रियो में जो अन्तर है, उस पर भी बालक-बालिकाओ का ध्यान आकर्षित होता है। वे पूछने लगते हैं—उसके पास यह चीज़ क्यो है, या क्यो नहीं है?

कुछ बड़े होने पर उनका ध्यान इस बात पर भी जाता है कि उनके माता-पिता प्रत्येक रात को एक अलग कमरे में क्यो रहते हैं? माता के गर्भवती होने पर भी उनमे उत्सुकता आती है। पुत्रोत्पत्ति होने पर वे सोचने लगते हैं कि पहले यह कहाॅ था? यहाॅ कैसे आया? कहाँ से आया? किस प्रकार आया? आदि।

माता-पिता तथा गुरुजनो से सवाल करने पर उन्हें कुछ उत्तर नहीं मिलता। उत्तर मिलता भी है, तो बिलकुल उलटा-सीधा—"तुम एक झाड़ी मे पड़े थे, तुम्हारे बाबू जी तुमको उठा ले आए या एक साधू तुम्हे यहाॅ रख गया!" ऐसी ही बातें उन्हें जवाब में सुननी पड़ती है।

कुछ दिनो तक शायद वे इस बात पर विश्वास कर लेते हों, लेकिन उन्हे सन्तोष नहीं होता, उनकी उत्सुकता मिटती नहीं।

स्त्रियो के भद्दे वार्तालाप में, नौकरों के गन्दे मज़ाक़ में या अवस्था मे कुछ बड़े साथियो से धीरे-धीरे उन्हे इस रहस्य के विकृत रूप का आभास मिलने लगता है, जो आगे चल कर अनर्थ पैदा करता है।

बहुधा ऐसा भी होता है कि माता की अलाली, फूहड़-पन या इस आशङ्का से कि सन्तान में असमय काम-ज्ञान का सञ्चार न हो जाय, बालक-बालिकाओं की जननेन्द्रियो की सफ़ाई नहीं हो पाती। वास्तव में इन्हे भी साफ रखने की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी मुँह, दाँत, कान, नाक और सिर के बालो आदि की; पर यह तो कभी किसी बालक-बालिका को नहीं बतलाया जाता। अब यदि दुर्भाग्य-वश जननेन्द्रियो मे खुजली हो जाय तो उन्हे मालूम होता है कि ऐसा करने से तो मज़ा आता है। फलतः बहुत छोटी अवस्था से ही उन्हे हस्त-मैथुन की आदत पड़ जाती है। इसमे दोष उनका जरा भी नहीं रहता। यौवनावस्था के प्रारम्भ होते ही तथा कभी-कभी तो अज्ञानता एवं दूषित वातावरण के कारण यौवनावस्था आने के पूर्व ही कुमार-कुमारियो के मन में स्वाभाविक ही काम-सञ्चार होने लगता है। इसे कैसे रोकना चाहिए, इसके रोकने से क्या लाभ है; यदि न रोका जाय तो इस क्रिया के लिए कौन-सा

जायज़, स्वाभाविक और स्वास्थ्यकर तरीक़ा है, तथा अस्वाभाविक तरीक़े से काम लेने पर क्या हानि होगी—इनमें से एक भी बात का उन सबों को पता नहीं रहता। बचपन से ही इस विषय को भद्दा और गोपनीय समझते रहने के कारण वे किसी गुरुजन या समझदार आदमी के सामने लज्जावश अपनी ज़बान नहीं हिला सकते; किसी से कुछ पूछ नहीं सकते, सलाह नहीं ले सकते। ऐसी दशा में गँवार नौकर-नौकरानी या पथ-भ्रष्ट सखा-सहेली—ये ही उनके साथी होते हैं। फल-स्वरूप अपनी वासना की बलि-वेदी पर अज्ञानता के कारण उनकी कुर्बानी हो जाती है। बड़े-बड़े भयानक रोग उनके शरीर मे घर कर लेते हैं। असमय में ही उनमें कुरूपता और बुढ़ापा आ जाता है।

यदि ऐसे पतित होने के पहले उनका व्याह हो जाय, जैसा कि भारतवर्ष में होता है, तब भी फल अच्छा नहीं होता। पति-पत्नी मे आपस का प्रेम हो तथा दोनो एक-दूसरे से सन्तुष्ट रहें, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्त्री तथा पुरुष दोनो को सुरति-क्रिया का अच्छा ज्ञान रहे। लोगों का यह ख्याल ग़लत है कि यह कार्य स्वाभाविक होने के कारण युवक-युवती को आप से आप आ जाता है, सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अवश्य ही वे इस कार्य का सम्पादन किसी न किसी प्रकार कर लेते हैं। लेकिन काम चलाना एक बात है और योग्यता एवं सफलता-

पूर्वक किसी काम को करना दूसरी बात है। इसके लिए किन बातों के जानने की जरूरत है, इसका वर्णन आगे चल कर किसी दूसरे प्रकरण में करेंगे। इस प्रकरण मे केवल यही बताना है कि पति-पत्नी के असन्तोष से परिणाम कितना भयङ्कर तथा घातक होता है।

स्त्रियो का ख्याल है कि सुरति-क्रिया केवल पुरुष के हाथ मे ही छोड़ देनी चाहिए, उनके लिए इसमें कोई विधि है ही नहीं। स्त्रियो के इस क्रिया में उदासीन रहने का ही अधिकांश मे यह परिणाम है कि पुरुष वेश्याओ के पास जाकर मनस्तुष्टि करने पर बाध्य होते हैं।

यदि स्त्रियाँ यह जान जायँ कि इसमे उन्हे भी कुछ करने की आवश्यकता है, तो उनके पति बहुधा उनसे सन्तुष्ट रहें और उनके लिए वेश्यागमन की आवश्यकता न पड़े।

पुरुष समझते हैं कि स्त्री से अपनी तृप्ति प्राप्त कर लेना ही एकमात्र हमारा ध्येय है। इस क्रिया से पूर्ण सुख एवं सन्तोष प्राप्त होने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिसके साथ आप इस क्रिया मे रत हो, उसे भी सुख मिले और वह भी उल्लसित होकर इस कार्य मे भाग ले। पुरुषों के इस क्रिया मे अनभिज्ञ रहने के फल-स्वरूप ही अधिकांश घरों मे पति पत्नी के बीच इतना असन्तोष दिखाई पड़ता है। इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि दोनों के दोनों पथ-भ्रष्ट हो जाते है।

इन बातों पर ग़ौर से सोचने के बाद आपको निश्चय हो जायगा कि व्यक्तिगत विकास, कौटुम्बिक सुख तथा जातीय उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सर्वसाधारण में इस विषय का ज्ञान फैलाया जाय। परन्तु यह काम कठिन है। इस विषय पर कुछ लिखते या कहते समय हमें विशेष सतर्क रहना चाहिए और सदैव ऐसी भाषा तथा शैली का उपयोग करना चाहिए, जो किसी अंश में अनर्थकारी न हो। कार्य कठिन है अवश्य, लेकिन इसीलिए उसे प्रारम्भ ही न करना बुद्धिमानी नहीं है।

युवकों की अपेक्षा बालकों को इस विषय का ज्ञान देना और भी कठिन कार्य है। लेकिन किसी भी प्रकार उन्हें इतना तो अवश्य मालूम हो जाना चाहिए कि इस इन्द्रिय की रक्षा करना तथा इसे साफ रखना अत्यन्त आवश्यक है। इसके उपयोग की शिक्षा उन्हें आगे चल कर यौवन के आरम्भ में ही मिलनी चाहिए। वही इसका उपयुक्त समय है।

सहगमन

समस्त सृष्टि का सञ्चालन इसी सहगमन पर अवलम्बित है। प्रकृति ने अपूर्व कौशल से अपनी सन्तान में इस प्रकार का भावावेश—काम-सञ्चार का प्रादुर्भाव कर रक्खा है कि समय पाकर प्रत्येक स्त्री पुरुष की ओर तथा प्रत्येक पुरुष स्त्री की ओर स्वाभाविक आकर्षण का अनुभव करता है और नई सृष्टि की रचना मे प्रवृत्त होता है। यह काम-सञ्चार हमारे लिए इतना सहज, स्वाभाविक एवं साधारण है कि हम इसके महत्व को समझने का प्रयत्न तक नहीं करते. उस पर हमारा ध्यान तक आकर्षित नहीं होता।

यह काम-सञ्चार आखिर है क्या बला? प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं का कथन है कि यह एक प्रकार की मानसिक

अवस्था है, जिसमे मज्जा, ज्ञान-तन्तु, मस्तिष्क तथा जनने-
न्द्रियो पर तनाव पड़ने लगता है। उस समय हमार
मस्तिष्क, हमारी स्नायु तथा हमारी जननेन्द्रियाँ इस तना
को मिटाने तथा इस तनाव से उनमे जो उत्तेजना आती
उन्हे शान्त करने की इच्छुक हो जाती हैं। अस्तु, हमा
सहज ज्ञान (Instinct) हमे सहगमन के लिए प्रेरि
करता है। जिस प्रकार भूख लगने पर हम भोजन का
तलाश करने में व्याकुल हो जाते हैं, उसी प्रकार स्वा-
भाविक रूप से ही हम कभी-कभी सहगमन के लिए भी
व्याकुल हो उठते हैं। शायद यह सहगमन की भौतिक
परिभाषा है।

सारी प्रकृति हमे इस बात की शिक्षा दे रही है। कीड़ो-
मकोड़ो से लेकर पशु-पक्षी तक सभी मे यह स्वाभाविक
क्रिया पाई जाती है। केवल यही नही, वृक्ष तथा पौधों मे
भी स्त्री-रज तथा पुरुष-वीर्य के सम्मेलन का कार्य निरन्तर
चलता रहता है।

जब सारी प्रकृति हमे इस बात के लिए प्रेरणा करती
एवं आदेश देती है, तब इसे लज्जाजनक, निषिद्ध एवं त्याज्य
बताना युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ता।

अवश्य ही प्रत्येक नियम का अपवाद होता है। इस-
लिए खास परिस्थितियो मे खास-खास मनुष्य इस सहगमन-
कार्य से अलग रह सकते है। लेकिन अधिकांश लोगो के

लिए, सर्व-साधारण के लिए यह कार्य कभी वर्जनीय या लज्जास्पद नहीं हो सकता।

किन्तु प्रकृति के इस रहस्य को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण कुछ लोगों ने इस कार्य को वर्जित, त्याज्य तथा दूषित क़रार देकर शरीर तथा आत्मा के लिए इसको हानिकारक क़रार दे रक्खा है तथा इसे पाशविक प्रवृत्ति कहा है।

यह आंशिक-रूप मे सत्य भी है। वास्तव में इसके दूसरे अंश को न बताने से या न समझने से ही सारा अनर्थ खड़ा हुआ है। इस कार्य के दो हिस्से है—भौतिक एवं आत्मिक, जिन्हे अलग नहीं किया जा सकता। इसके अलग कर देने तथा इसके आत्मिक अंश को भुला देने में ही लोगो ने गलती की है।

केवल शारीरिक क्रिया न होकर यह एक प्रकार का आत्मिक मिलन भी है। लेकिन जिस प्रकार अन्य बातों के दुरुपयोग हुए है, उसी प्रकार इस विषय का भी दुरुपयोग हुआ है। यही दुरुपयोग नजर के सामने रहने के कारण लोगों के ध्यान मे इसका आत्मिक अंश नहीं आता।

अधिक भोजन करने से रोग की उत्पत्ति होती है, जो अन्त मे मनुष्य की मृत्यु का कारण होता है, लेकिन इसीलिए भोजन को कोई व्यक्ति दूषित, घृणित एवं वर्जित क़रार नहीं दे सकता।

इसे त्याज्य ठहराने वालों को इससे त्राण मिल जाय, सो बात नहीं है। इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाले दो-चार महात्मा अवश्य हुए हैं, इसे हम अस्वीकार नहीं करते तथा यह भी मानते हैं कि मनुष्य के लिए असम्भव कुछ भी नहीं है, लेकिन यह नियम सर्व-साधारण के लिए लागू नहीं होता।

इन्द्रियो पर विजयी होना अप्राकृतिक एवं असम्भाव्य है। इस दिशा में चलने वाले बाल-ब्रह्मचारियो में अधिकांश के विचार बड़े गन्दे होते हैं। ऊपर से चाहे वे कुछ भी कहें, भीतर ही भीतर वे काम-ताप से पीड़ित होते रहते हैं, और बहुतों को तो बुरी तरह से पतित होना पड़ता है। कुछ लोग हिस्टोरिया आदि के शिकार होते हैं तो कुछ हस्त-मैथुन या पर-स्त्री-गमन के। बहुत कम लोग ऐसे है, जो इस मार्ग पर चल कर स्वस्थ रहते हुए सदाचार की रक्षा करने में समर्थ होते हैं।

प्रकृति के कुछ ऐसे ही नियम हैं कि पुरुप तथा स्त्री अलग-अलग रह कर पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते। दोनों अपने में किसी अपूर्णता का अनुभव करते है, दोनों को यह कमी खटकने लगती है और इसी कमी को पूरी करने एवं पूर्णता तक पहुँचने के लिए वे स्वभावतः ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। एक ऐसी अवस्था आती है, जब पुरुप स्त्री के प्रति तथा स्त्री पुरुप के प्रति विद्युत्-आकर्षण

का अनुभव करने लगते हैं, एक को देख कर दूसरे की हृत्तन्त्री बज उठती है। प्रत्येक तार किसी अज्ञात कोमल आघात से झङ्कृत हो उठता है।

हमारी यह अवस्था उस समय आती है, जब हमारी कुमारावस्था का अन्त तथा यौवन का प्रारम्भ होता है। इस समय हममें कई प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होने लगते हैं। बालक को मूँछ-दाढ़ी आ जाती हैं तथा स्त्रियों के स्तन उठने लगते हैं। स्त्रियों का मासिक स्राव भी इसी समय प्रारम्भ होता है।

किन्तु केवल शारीरिक परिवर्त्तन से ही अन्त नहीं होता, शरीर के साथ-साथ मन भी पुष्ट होता है और मन तथा शरीर दोनो में एक प्रकार का तेज भरने लगता है। ऐसा बोध होता है, मानो हममे कोई नई शक्ति आकर भर रही हो। पुरुषों में वीर्य-वृद्धि तथा स्त्रियो में रज-पुष्टि का यह परिणाम है। इसीलिए इस अवस्था में नए अनुभव के कारण हमारी इन्द्रियाँ विशेष चञ्चल एवं सक्षम हो उठती हैं और मनोभाव में भी सहसा परिवर्त्तन आ जाता है।

बालक-बालिकाएँ पहले-पहल अपने इस परिवर्त्तन, इस चञ्चलता और इस तेज से चकित हो उठते हैं। वे लोग सोचते हैं, सहसा यह क्या हो गया? यह उलट-फेर कैसा? हमारा मन किसे खोज रहा है? यह नई कमी कहाँ से पैदा हो गई? लोग अपने मनोभावों को कितना ही छिपाएँ,

किन्तु यदि वे रोगी या पुंसत्वहीन नहीं हैं, तो इस अवस्था
पहुँच कर एक सङ्गी के लिए उनका मन अवश्य ही पाग
हो उठता है।

दो युवक-युवती के आपस के चुम्बन में कैसी विद्यु
है, कैसा जादू है, भोक्ता ही जान सकते हैं। जब वे ए
दूसरे को देखते हैं, तब उन्हें एक-दूसरे में सारे संसार
सौन्दर्य केन्द्रीभूत दिखाई देता है। इस स्वर्गीय उल्लास
आवेश तथा इसकी पूर्ति में उन्हे जो सुख मिलता है, उसमें
विचारपूर्वक देखने पर केवल शारीरिक परितृप्ति ही नहीं,
वरन् यथेष्ट आध्यात्मिक आनन्द छिपा मिलता है।

किन्तु इस अवस्था में विशेष सतर्कता की आवश्यकता
है। किशोरावस्था में चञ्चलता बहुत रहती है। इसमें पैर
फिसलने का बड़ा डर रहता है। इस अपरिपक्व अवस्था में,
इस अविकसित दशा में मनोवृत्तियों को संयमपूर्वक चलाने
एवं उन्हे एक लक्ष्य के सामने रख कर परिचालित करने
की क्षमता किशोर-किशोरी में नहीं रहती।

यही समय है, जब हमें अपनी जीवन-यात्रा की तैयारी
तेजी से करनी चाहिए। अपने जीवन को दुखमय या सुख-
मय बनाने के लिए यही सबसे नाजुक समय है।

इसी अवस्था मे हम पर सङ्गति तथा वातावरण का
ऐसा प्रभाव पड़ता है, जो चिरस्थायी होता है। इस समय
की ज़रा सी गलत सलाह या उत्तेजना से हमारा जीवन

बन या बिगड़ सकता है। इसी समय माता-पिता तथा अभिभावकों को अपना कार्य विशेष सतर्क होकर करना चाहिए।

यही समय हमारे लिए ब्रह्मचर्य निभाने का है। यदि इस समय हम अपनी शक्तियों को नष्ट करने से बच जायँ, यदि इस समय हमारी शक्तियो का अपव्यय न होकर, वे हमारी पुष्टि में खर्च की जा सकें तो हमारा विकास स्वाभाविक -पूर्णता को प्राप्त हो और हम सफल-गृहस्थ तथा नागरिक बन सकें, और देश से रोग, शोक, कलह एवं अशान्ति का साम्राज्य उठ जाय।

ब्रह्मचर्य

ह्मचर्य की परिभाषा करना एक प्रकार से अनावश्यक है, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा साक्षर व्यक्ति हो जो इस शब्द से परिचित न हो; लेकिन बहुधा लोग इस शब्द का आंशिक अर्थ लगाते हैं। लोगों का ख्याल है कि स्त्री तथा पुरुष के शारीरिक मिलन मात्र से अपने को रोक लेना ही ब्रह्मचर्य धारण करना है; किन्तु यह एक भारी भ्रम है, जिसके कारण लोगों में स्वप्न-दोष आदि विकार पैदा हो जाते हैं।

यह तो साधारण-सी बात है कि शरीर का स्वामी हमारा मन है। शास्त्रों में भी शरीर को रथ और मन को सारथी कहा गया है। पहले कोई बात हमारे मन में आती है। इसके बाद मन के आदेशानुसार शरीर उस काम को

ब्रह्मचर्य

ह्मचर्य की परिभाषा करना एक प्रकार से अनावश्यक है, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा साक्षर व्यक्ति हो जो इस शब्द से परिचित न हो; लेकिन बहुधा लोग इस शब्द का आंशिक अर्थ लगाते हैं। लोगों का ख्याल है कि स्त्री तथा पुरुष के शारीरिक मिलन मात्र से अपने को रोक लेना ही ब्रह्मचर्य धारण करना है; किन्तु यह एक भारी भ्रम है, जिसके कारण लोगों में स्वप्न-दोष आदि विकार पैदा हो जाते हैं।

यह तो साधारण-सी बात है कि शरीर का स्वामी हमारा मन है। शास्त्रों में भी शरीर को रथ और मन को सारथी कहा गया है। पहले कोई बात हमारे मन में आती है। इसके बाद मन के आदेशानुसार शरीर उस काम को

करता है। यदि हमारा मन आदेश न दे तो शरीर हिल नहीं सकता।

ऐसी दशा में यह बात एकदम साफ हो जाती है कि शारीरिक ब्रह्मचर्य से मानसिक ब्रह्मचर्य का महत्व कहीं ज्यादा है। सबसे आवश्यक बात मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन है।

शरीर से पवित्र रहने पर भी यदि आप स्त्री-चिन्तन में रत रहिए, तो निश्चय ही आपके लिए ब्रह्मचर्य धारण करना कठिन हो जायगा। शरीर को बाँध रखने पर भी आप स्वप्न-दोष से नहीं बच सकते।

अब इस बात पर विचार करना चाहिए कि किशोरा-वस्था में ब्रह्मचर्य धारण करने से क्या लाभ है, तथा यह सम्भव है या नहीं?

मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है। इसीलिए वह प्रकृति से शिक्षा तो लेता है, किन्तु उसके सामने एकदम सिर नहीं झुकाता; वह सदैव अपनी बुद्धि का उपयोग करता है। मानव-सभ्यता का सारा इतिहास इस बात का साक्षी है।

स्त्री-पुरुष के सहगमन के विषय में भी उसने प्रकृति से शिक्षा लेकर अपनी इस बुद्धि का प्रयोग किया और उस समय यह ज्ञात हुआ कि ज्योंही सहगमन की इच्छा का सञ्चार मन में हो, त्योंही इस कार्य में रत नहीं हो पड़ना चाहिए। जिस समय इस सञ्चार का प्रादुर्भाव होता है,

ब्रह्मचर्य

ह्मचर्य की परिभाषा करना एक प्रकार से अनावश्यक है, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा साक्षर व्यक्ति हो जो इस शब्द से परिचित न हो; लेकिन बहुधा लोग इस शब्द का आंशिक अर्थ लगाते हैं। लोगों का ख्याल है कि स्त्री तथा पुरुष के शारीरिक मिलन मात्र से अपने को रोक लेना ही ब्रह्मचर्य धारण करना है; किन्तु यह एक भारी भ्रम है, जिसके कारण लोगों में स्वप्न-दोष आदि विकार पैदा हो जाते हैं।

यह तो साधारण-सी बात है कि शरीर का स्वामी हमारा मन है। शास्त्रों में भी शरीर को रथ और मन को सारथी कहा गया है। पहले कोई बात हमारे मन में आती है। इसके बाद मन के आदेशानुसार शरीर उस काम को

करता है। यदि हमारा मन आदेश न दे तो शरीर हिल नहीं सकता।

ऐसी दशा में यह बात एकदम साफ हो जाती है कि शारीरिक ब्रह्मचर्य से मानसिक ब्रह्मचर्य का महत्व कहीं ज्यादा है। सबसे आवश्यक बात मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन है।

शरीर से पवित्र रहने पर भी यदि आप स्त्री-चिन्तन में रत रहिए, तो निश्चय ही आपके लिए ब्रह्मचर्य धारण करना कठिन हो जायगा। शरीर को बाँध रखने पर भी आप स्वप्न-दोष से नहीं बच सकते।

अब इस बात पर विचार करना चाहिए कि किशोरावस्था में ब्रह्मचर्य धारण करने से क्या लाभ है, तथा यह सम्भव है या नहीं?

मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है। इसीलिए वह प्रकृति से शिक्षा तो लेता है, किन्तु उसके सामने एकदम सिर नहीं झुकाता; वह सदैव अपनी बुद्धि का उपयोग करता है। मानव-सभ्यता का सारा इतिहास इस बात का साक्षी है।

स्त्री-पुरुष के सहगमन के विषय में भी उसने प्रकृति से शिक्षा लेकर अपनी इस बुद्धि का प्रयोग किया और उस समय यह ज्ञात हुआ कि ज्योंही सहगमन की इच्छा का सञ्चार मन में हो, त्योंही इस कार्य में रत नहीं हो पड़ना चाहिए। जिस समय इस सञ्चार का प्रादुर्भाव होता है,

उस समय से लेकर स्त्रियों के लिए कम से कम तीन वर्ष और पुरुषों के लिए पाँच वर्ष का समय इसलिए अलग कर देना चाहिए कि जिसमें उनकी यह प्रवृत्ति तथा तत्सम्बन्धी अवयव परिपक्व हो जायँ।

जिस प्रकार भूख लगते ही खा लेना ठीक नहीं, जिस प्रकार भूख को पकने के लिए—इस बात का निश्चय कर देने के लिए कि वास्तव में यह भूख है या भूख का आभास मात्र—कुछ समय लगता है, उसी प्रकार काम-सञ्चार के आरम्भ होने के बाद कुछ समय इस बात के लिए देना पड़ता है कि वह पुष्ट हो जाय। कच्ची भूख में भोजन हानिकर होता है।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि काम-सञ्चार का प्रधान उद्देश्य है सन्तानोत्पत्ति; और जिस अवस्था में काम-सञ्चार प्रारम्भ होता है, उस अवस्था में पुरुष तथा स्त्री दोनों की जननेन्द्रियाँ एवं वीर्य और रज कच्चे तथा अपूर्ण रहते हैं। उनसे पुष्ट सन्तान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह तो उस शक्ति की—सन्तानोत्पादन शक्ति के आगमन की सूचना मात्र है। उसके विकसित होने में कुछ समय लगना स्वाभाविक ही है। अस्तु—

अब यह देखना चाहिए कि इस समय ब्रह्मचर्य धारण कैसे किया जाय? यह सम्भव है या नहीं?

हमें फिर दुहराना पड़ता है कि यदि हमने केवल

शारीरिक पवित्रता पर ही ध्यान दिया तो हम केवल असफल ही नहीं होंगे, वरन् हमें हानि भी होगी।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि काम-सञ्चार से हमारी जननेन्द्रियाँ तनाव में आ जाती हैं। यदि इनको आराम न मिला और बहुत देर तक इन्हे तनाव की हालत में रहना पड़ा तो इससे हमारी नसे ढीली पड़ जायँगी। फल-स्वरूप बहुमूत्र, स्वप्न-दोष, शिथिलता आदि कई प्रकार के शारीरिक तथा हिस्टीरिया, उन्माद, कामोन्माद आदि मानसिक रोग हो जाने की सम्भावना है। इसलिए ब्रह्मचर्य का श्रीगणेश सदैव मन से होना चाहिए।

आपने कई आदमी जरूर ऐसे देखे होंगे, जो अतिकामी होते हैं और कई अल्पकामी। इसका क्या कारण? मानसिक संस्कृति। मन को संस्कृत करने से हम अपनी कामवासना को कम कर सकते है, संयमित कर सकते हैं। हाँ, उसे नष्ट नहीं कर सकते।

बहुत से लोग किसी खास विषय से प्रेम हो जाने पर अपना अधिकांश समय उसी विषय की चिन्ता में लगाया करते हैं, उस समय उन्हें और बातों की, यहाँ तक कि खाने-पीने की भी सुधि नहीं रहती। वैज्ञानिक, कवि और लेखक इसी श्रेणी के लोग होते हैं। ऊँचे दर्जे के वैज्ञानिकों, कवियों तथा लेखकों में आपको अतिकामी कम मिलेंगे। क्यों? इसीलिए कि वे काम-चिन्ता में अपना सारा समय नहीं व्यतीत करते।

उस समय से लेकर स्त्रियों के लिए कम से कम तीन वर्ष और पुरुषों के लिए पाँच वर्ष का समय इसलिए अलग कर देना चाहिए कि जिसमें उनकी यह प्रवृत्ति तथा तत्सम्बन्धी अवयव परिपक्व हो जायँ।

जिस प्रकार भूख लगते ही खा लेना ठीक नहीं, जिस प्रकार भूख को पकने के लिए—इस बात का निश्चय कर देने के लिए कि वास्तव में यह भूख है या भूख का आभास मात्र—कुछ समय लगता है, उसी प्रकार काम-सञ्चार के आरम्भ होने के बाद कुछ समय इस बात के लिए देना पड़ता है कि वह पुष्ट हो जाय। कच्ची भूख में भोजन हानिकर होता है।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि काम-सञ्चार का प्रधान उद्देश्य है सन्तानोत्पत्ति; और जिस अवस्था में काम-सञ्चार प्रारम्भ होता है, उस अवस्था में पुरुष तथा स्त्री दोनों की जननेन्द्रियाँ एवं वीर्य और रज कच्चे तथा अपूर्ण रहते हैं। उनसे पुष्ट सन्तान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह तो उस शक्ति की—सन्तानोत्पादन शक्ति के आगमन की सूचना मात्र है। उसके विकसित होने में कुछ समय लगना स्वाभाविक ही है। अस्तु—

अब यह देखना चाहिए कि इस समय ब्रह्मचर्य धारण कैसे किया जाय? यह सम्भव है या नहीं?

हमें फिर दुहराना पड़ता है कि यदि हमने केवल

शारीरिक पवित्रता पर ही ध्यान दिया तो हम केवल असफल ही नहीं होंगे, वरन् हमें हानि भी होगी।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि काम-सञ्चार से हमारी जननेन्द्रियाँ तनाव में आ जाती हैं। यदि इनको आराम न मिला और बहुत देर तक इन्हें तनाव की हालत में रहना पड़ा तो इससे हमारी नसें ढीली पड़ जायँगी। फल-स्वरूप बहुमूत्र, स्वप्न-दोप, शिथिलता आदि कई प्रकार के शारीरिक तथा हिस्टीरिया, उन्माद, कामोन्माद आदि मानसिक रोग हो जाने की सम्भावना है। इसलिए ब्रह्मचर्य का श्रीगणेश सदैव मन से होना चाहिए।

आपने कई आदमी ज़रूर ऐसे देखे होंगे, जो अतिकामी होते हैं और कई अल्पकामी। इसका क्या कारण? मानसिक संस्कृति। मन को संस्कृत करने से हम अपनी कामवासना को कम कर सकते हैं, संयमित कर सकते हैं। हाँ, उसे नष्ट नहीं कर सकते।

बहुत से लोग किसी ख़ास विषय से प्रेम हो जाने पर अपना अधिकांश समय उसी विषय की चिन्ता में लगाया करते है, उस समय उन्हें और बातों की, यहाँ तक कि खाने-पीने की भी सुधि नहीं रहती। वैज्ञानिक, कवि और लेखक इसी श्रेणी के लोग होते हैं। ऊँचे दर्जे के वैज्ञानिकों, कवियो तथा लेखकों में आपको अतिकामी कम मिलेंगे। क्यों? इसीलिए कि वे काम-चिन्ता में अपना सारा समय नहीं व्यतीत करते।

उस समय से लेकर स्त्रियों के लिए कम से कम तीन वर्ष और पुरुषों के लिए पाँच वर्ष का समय इसलिए अलग कर देना चाहिए कि जिसमें उनकी यह प्रवृत्ति तथा तत्सम्बन्धी अवयव परिपक्व हो जायँ।

जिस प्रकार भूख लगते ही खा लेना ठीक नहीं, जिस प्रकार भूख को पकने के लिए—इस बात का निश्चय क[र] देने के लिए कि वास्तव में यह भूख है या भूख का आभा[स] मात्र—कुछ समय लगता है, उसी प्रकार काम-सञ्चार आरम्भ होने के बाद कुछ समय इस बात के लिए [दे]ना पड़ता है कि वह पुष्ट हो जाय। कच्ची भूख में भोजन हानि-कर होता है।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि काम-सञ्चार का प्रधान उद्देश्य है सन्तानोत्पत्ति; और जिस अवस्था में काम-सञ्चार प्रारम्भ होता है, उस अवस्था में पुरुष तथा स्त्री दोनो की जननेन्द्रियाँ एवं वीर्य और रज कच्चे तथ[ा] अपूर्ण रहते हैं। उनसे पुष्ट सन्तान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह तो उस शक्ति की—सन्तानोत्पादन शक्ति के आगमन की सूचना मात्र है। उसके विकसित होने में कुछ समय लगना स्वाभाविक ही है। अस्तु—

अब यह देखना चाहिए कि इस समय ब्रह्मचर्य धारण कैसे किया जाय? यह सम्भव है या नहीं?

हमें फिर दुहराना पड़ता है कि यदि हमने केवल

शारीरिक पवित्रता पर ही ध्यान दिया तो हम केवल असफल ही नहीं होंगे, वरन् हमें हानि भी होगी।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि काम-सञ्चार से हमारी जननेन्द्रियाँ तनाव में आ जाती हैं। यदि इनको आराम न मिला और बहुत देर तक इन्हें तनाव की हालत में रहना पड़ा तो इससे हमारी नसें ढीली पड़ जायँगी। फल-स्वरूप बहुमूत्र, स्वप्न-दोष, शिथिलता आदि कई प्रकार के शारीरिक तथा हिस्टीरिया, उन्माद, कामोन्माद आदि मानसिक रोग हो जाने की सम्भावना है। इसलिए ब्रह्मचर्य का श्रीगणेश सदैव मन से होना चाहिए।

आपने कई आदमी जरूर ऐसे देखे होंगे, जो अतिकामी होते हैं और कई अल्पकामी। इसका क्या कारण? मानसिक संस्कृति। मन को संस्कृत करने से हम अपनी कामवासना को कम कर सकते हैं, संयमित कर सकते हैं। हाँ, उसे नष्ट नहीं कर सकते।

बहुत से लोग किसी खास विषय से प्रेम हो जाने पर अपना अधिकांश समय उसी विषय की चिन्ता में लगाया करते हैं, उस समय उन्हें और बातों की, यहाँ तक कि खाने-पीने की भी सुधि नहीं रहती। वैज्ञानिक, कवि और लेखक इसी श्रेणी के लोग होते हैं। ऊँचे दर्जे के वैज्ञानिकों, कवियों तथा लेखकों में आपको अतिकामी कम मिलेंगे। क्यों? इसीलिए कि वे काम-चिन्ता में अपना सारा समय नहीं व्यतीत करते।

अब यह स्पष्ट हो जायगा कि अपने विचारों को संस्कृत कर हम किस प्रकार उचित ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं। शरीर-विज्ञान के विशेषज्ञों की राय है कि उचित समय तक ब्रह्मचर्य पालन करने वाले पुरुष ही आगे चल कर विवाहित जीवन में सदाचारी होते हैं। सांसारिक होने के लिए तैयार होने का नाम ही ब्रह्मचर्य है।

प्राचीन काल मे जिस समय आश्रम-धर्म प्रचलित था, उस समय हमारी इस तैयारी के लिए, ब्रह्मचर्य की साधना के लिए यथेष्ट प्रयत्न किया जाता था; किन्तु आज हम हिन्दू होते हुए भी हिन्दू-धर्म के प्रधान तत्व वर्णाश्रम धर्म को भूल गए हैं। देश में अनाचार, रोग और अशान्ति फैलने का यही कारण है।

यदि किशोर किशोरी को कुल बातें इस प्रकार साफ-साफ समझा कर यह भी दिखा दिया जाय कि ब्रह्मचर्य धारण करना उनके आगामी जीवन को सुखी बनाने के लिए तथा दाम्पत्य आनन्द की प्राप्ति के लिए कितना आवश्यक और कितना महत्वपूर्ण है, तो अधिकांश व्यक्ति इस व्रत का पालन करने के प्रयत्न में तो लग ही जायँ; यह सम्भव है कि उनमें सबको सफलता न मिले।

जिस प्रकार दूध का सार-अंश घी है, उसी प्रकार रक्त का सार-अंश वीर्य है। इस बात से यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के
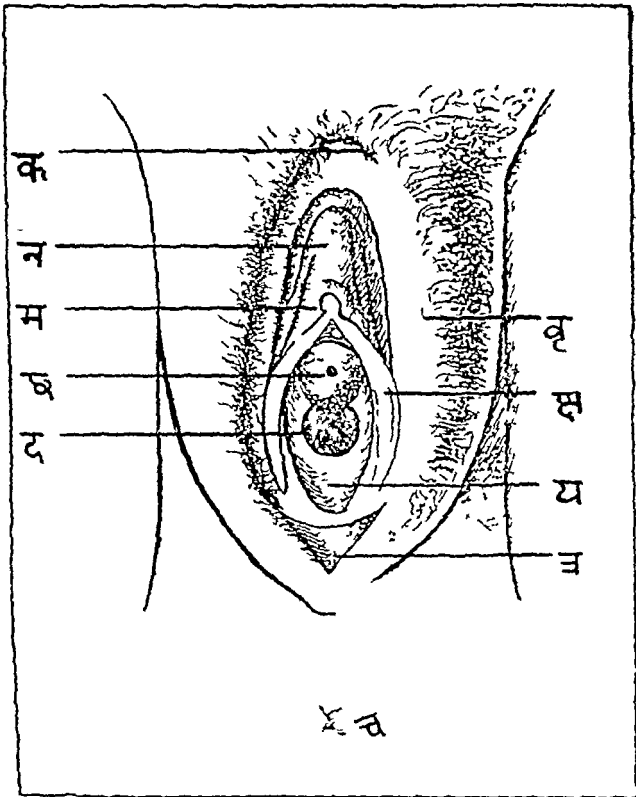
स्त्री-योनि

क = कामेन्द्रि	न = भगनासा
म = भगनासाग्रं	छ = मूत्र बहिर्द्वार
द = योनि-द्वार	य = योनिच्छद
क्ष = क्षुद्र भगोष्ट	वृ = वृहत् भगोष्ट

लिए—इसलिए कि हम में तेज पैदा हो, शौर्य, बढ़े, ब्रह्मचर्य धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके हमारे जीवन में संयम न आएगा, हम सदाचारी न बन सकेंगे, स्त्री-मात्र के दर्शन से हमारा पतन हो जाया करेगा।

लेकिन केवल मन पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश-मात्र से काम न चलेगा। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, मन की संस्कृति पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है; पर इसके साथ ही साथ और कई बातों पर ध्यान देना होगा।

भोजन, रहन-सहन, सङ्गति तथा वातावरण का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संस्कृत मन भी ख़राब सङ्गति में पड़ कर नीचे गिर जाता है। भोजन की गड़बड़ी से भी आदमी के मन में गहरा परिवर्त्तन होते देखा गया है। इन बातों पर ध्यान देते हुए ब्रह्मचारी के लिए उत्तम भोजन, सदाचारी जीवन एवं सत्सङ्गति की व्यवस्था की गई है।

उन्हें सादा सात्विक भोजन ही करना चाहिए। वह भी इतनी मात्रा में, जिसे वे सरलता से पचा सकें और उनका कोठा भारी न होने पाए। पेट का भारी रहना—विशेष कर रात के समय—स्वप्न-दोष का प्रधान कारण है। भोजन को ठीक-ठीक पचाने के लिए व्यायाम भी अत्यन्त आवश्यक है।

भोजन के बाद विचारों की पवित्रता के लिए सादा रहन-सहन तथा उत्तम सङ्गति का स्थान आता है। यदि किसी

का रहन-सहन विलासी हो, उसके साथी दुराचारी हों, तो
किसी युवक का ब्रह्मचर्य-पालन असम्भव हो उठेगा। अत
ब्रह्मचर्य के लिए भोजन, सङ्गति, विचार तथा वातावरण
पवित्रता पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

चौथा परिच्छेद

विवाह
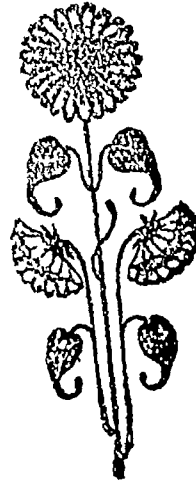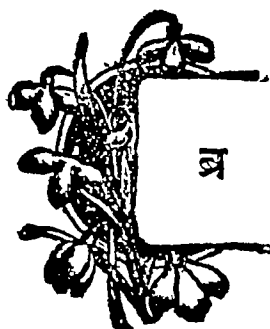
ब्रह्मचर्य के बाद विवाह करना ही साधारणतया लोगों का कर्त्तव्य है। इसके विपरीत चलने से सृष्टि-क्रम में बाधा आएगी, इसलिए वह अधर्म, अनीति के नाम से पुकारा गया है। मनुष्य के ऊपर ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण तथा देव-ऋण—तीन ऋण रहते है। इन तीनो ऋणो से छुटकारा पाए बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य धारण कर विद्याध्ययन करने से ऋषि-ऋण, विवाह करके योग्य सन्तान की उत्पत्ति करने से पितृ-ऋण और यज्ञादि धार्मिक कार्यों के सम्पादन से देव-ऋण अदा हो सकता है। इसीसे आप समझ सकते हैं कि सहगमन को गर्हित ठहराने वाले कितनी ग़लती कर रहे हैं। जिस कार्य के सम्पादन के बिना मुक्ति मिल ही नहीं सकती, वह क्या कभी अधर्म कहा जा सकता है ?

यह तो हुई शास्त्र की बात। लेकिन आजकल शास्त्र की बात मानता कौन है ? यह विज्ञान का युग है। प्रत्येक बात को सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। अस्तु—

सन्तानोत्पत्ति विवाह का अन्तिम उद्देश्य होते हुए भी उसका तात्कालिक महदुद्देश्य है शुद्ध, सत्य एवं सात्विक प्रेम· पिपासा की शान्ति ; जो उत्तेजना उसकी समस्त आत्मा को व्याप्त कर रही है, जिससे उसकी रग-रग प्रकम्पित हो रही है, जिससे उसकी आँखें उद्दीप्त हो उठी हैं, जो उसके मुख पर साफ प्रकट हो रही है, जिससे उसके स्नायु और उसका मस्तिष्क आन्दोलित हो उठे हैं, उसका शमन।

प्राणि-शास्त्रज्ञों का कथन है कि मनुष्य सामाजिक जन्तु है। यों तो अधिकांश पशु भी गिरोह या झुण्ड में हैं, किन्तु इस मनुष्य-जन्तु को यह खासियत है कि वह अकेला रह नहीं सकता।

जेल में यह एक साधारण नियम है कि किसी भी क़ैदी को एकान्त-वास का दण्ड दो या चार दिनों से अधिक के लिए नहीं दिया जा सकता। जब-जब इस नियम की अवहेलना की गई है—विशेष कर राजनीतिक क़ैदियों के साथ—तब-तब परिणाम भयङ्कर हुआ है, अधिकांश क़ैदी इस एकान्त-वास में पागल हो गए हैं।

यह तर्क करने की चीज़ नहीं, अनुभव की चीज़ है।

जिन लोगों को घर छोड़ कर बाहर रहने का—विशेष कर विदेश जाने का मौक़ा आया है, वे इस बात को अच्छी तरह महसूस कर सकते हैं कि अपरिचित स्थान में पहुँच कर, ऐसे स्थान में पहुँच कर, जहाँ की भाषा से वे परिचित न हों, जहाँ वे किसी से बात न कर सकते हों, किसी की बात समझ न सकते हों, घर के लिए—चाहे उस घर में उन्हें कितना ही कष्ट क्यों न रहा हो—उनके प्राण किस तरह रो पड़ते हैं ; घर पहुँचने के लिए, परिचितों में बैठ कर बातचीत करने के लिए किस तरह वे व्याकुल हो जाते हैं।

मनुष्य का यह स्वभाव है। वह प्रत्येक चीज़ ऐसी चाहता है, जिसे वह सम्पूर्ण रूप से अपनी कह सके—केवल कह ही नहीं, अपनी समझ भी सके। जब तक किसी चीज़ पर उसका पूरा अधिकार नहीं हो जाता है, तब तक वह उससे खुल कर प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम मनुष्य-हृदय का एक आवश्यक एवं प्रधान तत्व है। जब तक वह सफल नहीं होता, जब तक उसके हृदय से प्रेम-धारा निर्झर की भाँति अबाध गति से नहीं वह निकलती, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता—शान्ति नहीं मिलती।

किराए के मकान में रहने वाले किसी गृहस्थ के मन की बात अगर आपको मालूम हो सके तो पता चलेगा कि उसका हृदय एक ऐसे मकान की खोज में है, जिसे वह अपना कह

सके। हज़ार कोशिश कर, पेट काट कर वह अपने लिए एक मकान बनाने की फिक्र में है।

लोग सन्तान के लिए क्यों व्याकुल रहते हैं? क्या ऐसे अनाथ बच्चे उन्हें नहीं मिल सकते, जिन्हे वे अपने पास रख कर सन्तान की तरह लालन-पालन करें? पचासों ऐसे यतीम बच्चे मिलेंगे, लेकिन हृदय को इससे सन्तोष नहीं होता। आखिर है तो यह दूसरे का ही बच्चा। हज़ार पालने-पोषने पर भी इसे हम अपना तो नहीं कह सकते।

किसी ऐसे व्यभिचारी या वेश्यागामी व्यक्ति से पूछिए, जिसके घर में घरनी न हो। आप देखिएगा—अनुपम रूप-लावण्य वाली युवती वाराङ्गनाओं से घिरे रहने पर भी एक साधारण सुन्दरी घरनी के लिए उसका मन लालायित है। क्यो? इन वाराङ्गनाओ पर उसका पूरा अधिकार नहीं है। ये उसकी जीवन-सङ्गिनी नहीं वन सकतीं। स्त्रियाँ भी इसी प्रकार एक जीवन-सङ्गी की खोज में व्याकुल रहती हैं।

प्रत्येक प्राणी अपने लिए घर चाहता है; और चाहता है एक साथी—ऐसा साथी, जो उसकी कमी को पूरा करे। पुरुष में जो नैसर्गिक कमी है उसे स्त्री, तथा स्त्री में जो कमी है उसे पुरुष ही पूरी कर सकता है। इसलिए विवाह द्वारा पुरुष तथा स्त्री दोनो आजीवन के लिए एक होकर घर बनाते और कुटुम्ब की रचना करते हैं; यही विवाह का उद्देश्य है। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण, सन्तानो-

त्पत्ति की अव्यक्त प्राकृतिक लालसा तथा सुरति-क्रिया एवं सन्तान लालन-पालन के लिए घर की आवश्यकता—ये तीन बातें ऐसी हैं, जो मनुष्य को विवाह के लिए प्रेरित करती हैं। क्योंकि बिना विवाह के न तो वह पूर्ण सन्तोष के साथ अपनी काम-पिपासा को चरितार्थ कर परस्पर के स्वाभाविक आकर्षण को ही शान्त कर सकता है, न सन्तानोत्पत्ति तथा उसके लालन-पालन की सुविधा प्राप्त कर सकता है; और न सुखमय गृहस्थी की रचना में ही सफल हो सकता है।

किन्तु यह संसार का परिवर्त्तन-काल है। लोगों का दिल प्रत्येक पुरानी चीज़ से ऊब उठा है; और है भी यह स्वाभाविक। मनुष्य का स्वभाव परिवर्त्तनशील है। वह नवीनता का प्रेमी है, लेकिन इस नवीनता अर्थात् प्रेम के पीछे उसे अपनी बुद्धि को न खो देना चाहिए। नई चीज़ ग्रहण करते समय यह अवश्य देख लेना चाहिए कि यह हमारी पुरानी चीज़ से अच्छी है या बुरी। सिर्फ नई होने के कारण किसी बुरी चीज़ को ग्रहण करने से क्या लाभ? आज बर-नर्डशॉ सरीखे प्रसिद्ध लेखक कहने लगे हैं—Home is the girl's prison and woman's work house.

अर्थात्—"स्त्रियों को घर का सारा काम-काज करते रहने से अपना सारा समय, समस्त जीवन घर में ही बिताना पड़ता है, ग़रज़ यह कि घर उनके लिए एक प्रकार से कारागार बन गया है।"

डब्ल्यू० एल० जॉर्ज अपनी 'वोमन एण्ड टुमारो' (Woman and Tomorrow) नामक पुस्तक में कहते हैं—"गृह स्त्री के विकास का प्रधान बाधक है। उसे आश्रय देने के बजाय वह उसका दलन कर रहा है। वह स्त्री का क़िला है तो ज़रूर, लेकिन क़िले के अन्तःपुर से निकाल कर स्त्री अब उस क़िले के कारागार में पहुँचा दी गई है।"

इन विद्वानों का कथन अधिकांश में सत्य है। स्त्रियों के साथ पुरुष भारी अत्याचार कर रहे हैं। स्त्रियों के अधिकार बहुत कम कर दिए गए हैं।

यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन इनमें से अधिकांश लोग इस दशा-सुधार के लिए जिस उपाय का अवलम्बन करना चाहते हैं, वह ठीक नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानों में कई लोगों की राय यह है कि विवाह-प्रथा का मूलोच्छेद किया जाय। स्त्रियों की गिरी हुई दशा का कारण विवाह ही है। उन्हें विवाह के बाद अपनी उन्नति का मौका ही नहीं मिलता तथा पुरुष उनकी इस कमज़ोरी एवं अनुन्नत दशा का अनुचित लाभ उठा कर उन्हें दिन पर दिन दबाते जा रहे हैं। ये लोग यह नहीं सोचते कि नाक में घाव होने पर नाक काट डालना बुद्धिमानी नहीं है। ऐसी दशा में वाञ्छनीय तो यही है कि नाक भी न काटनी पड़े और घाव भी दूर हो जाय।

इन लोगों का कहना है कि स्त्री-पुरुष के सहगमन में
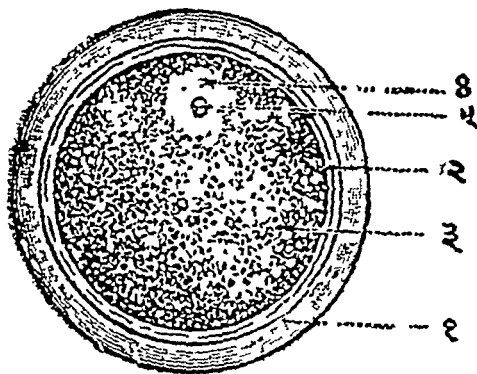
रजोकोष

हाथ डाल कर आँवल निकालना

हमें प्रकृति से शिक्षा लेनी चाहिए, और जिस प्रकार सम्भोग के बाद नर-मादे अलग-अलग होकर अपना-अपना प्रबन्ध आप कर लेते हैं, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए। इस संयोग से यदि गर्भ रह जाय, तो उनका प्रबन्ध सरकारी अस्पतालों से होगा। ये बालक-बालिका राष्ट्र की संरक्षकता में रहेंगे—माता-पिता से इनका कोई सम्बन्ध न होगा।

बात ऊपर से देखने पर तो अच्छी जँचती है। किसी तरह का झगड़ा-झाँसा नहीं, किसी तरह की ज़िम्मेदारी नहीं, अपनी ज़रूरत पूरी की और छुट्टी हुई। फिर मनमाने नए-नए फूलों का रसास्वादन! कैसा आदर्श समाज होगा वह!

आगे हम जो लिख आए हैं कि मनुष्य क्यों तथा किन कारणों से विवाह की बेड़ी अपने पैरों में डालने के लिए लालायित हो उठता है, उस पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जायगा कि यह कुछ विकृत स्वभाव वालों की कल्पना मात्र है। समाज का यह आदर्श, जो पाश्चात्य विद्वान् हमारे सामने रख रहे हैं, व्यावहारिक नहीं है, तथा इसे अधिकांश स्त्री-पुरुष कभी स्वीकार न करेंगे। संसार का आज तक का अनुभव तथा इतिहास उन्हें इसके विपरीत शिक्षा दे रहे हैं तथा एक पत्नी एवं पतिव्रत पर क़ायम रहने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

नवम्बर सन् १९२६ के 'चाँद' में 'स्त्री-समाज पर इस्लाम' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें अरब-निवासियों की सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है :—

"अरब में एक स्त्री से दस पुरुष तक समागम करते थे। सन्तान होने पर वे सब पुरुष बुलाए जाते थे और सब के आने पर—क्योंकि इस बुलाहट पर आने के लिए वे लोग नियमबद्ध थे—वह स्त्री उस बच्चे को उनमें से जिसकी सन्तान कह देती थी, उसे पिता बनने की ज़िम्मेदारी क़बूल करनी पड़ती थी।"

ग़रज़ यह कि प्राचीन समय में सभी जातियों में बहुपत्नी एवं बहुपतिवाद जारी था। कम से कम आजकल भारत में पतिव्रत की परिभाषा जितनी कड़ी हो गई है, उतनी तो प्राचीन भारत में भी न थी। स्वामी दयानन्द का प्रसिद्ध 'नियोग' महाभारत-काल में ख़ूब प्रचलित था। धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा पञ्च पाण्डव नियोग-सन्तान ही थे। महर्षि वेदव्यास एवं दानी कर्ण तो कुमारियों की सन्तान थे; लेकिन इससे इनकी माताओं की या इनकी किसी तरह की अप्रतिष्ठा न हुई। रामायण-काल की मन्दोदरी, तारा, और अहल्या का नाम आदर्श-नारियों की श्रेणी में बड़े आदर से लिया जाता है।

तात्पर्य यह कि पाश्चात्य विद्वान् जो कुछ करना चाहते

हैं, वे जिस आदर्श को आज हमारे सामने रख रहे हैं, वह एकदम नवीन नहीं है। किसी न किसी रूप में संसार ने इन बातों का अनुभव कर लिया है।

पहले पहल जब पुरुषों को यह पारस्परिक सम्भोग, स्वाधीनता या अनाचार खटका, तो उस समय केवल स्त्रियों के लिए ही नियम बनाए गए, क्योंकि व्यवस्थापक पुरुष ही थे। व्यवस्थापक तो अपने लिए कुछ न कुछ सुविधा रख ही लेता है; लेकिन आगे चल कर इस नीति से काम चलना कठिन हो गया। स्त्री के लिए पतिव्रत और पुरुष के लिए बहुपत्नीवाद अधिक दिनों तक न चल सका।

प्रकृति ने संसार में पुरुष तथा स्त्रियों की संख्या में विशेष अन्तर नहीं रक्खा है। फलतः जोड़ा लगा देने पर ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ बच जायँगी, जो पुरुषों की अनुचित काम-लालसा की पूर्ति कर सकें। पहले पुरुषो का ध्यान इस बात पर नहीं गया, लेकिन बाद में उन्होंने देखा कि प्रत्येक पुरुष अपनी अनुचित वासना-पूर्ति के लिए किसी दूसरे के हिस्से की स्त्री को काम में लाता है। आगे चल कर स्वयं उसकी घरनी की नौबत आएगी, जो आज दूसरे की स्त्री पर आँख लगा रहा है। दूसरा पुरुष उसकी पत्नी पर भी इसी तरह आँख लगावेगा।

मनुष्य के इसी ज्ञान ने उसे यह सिखाया कि अपनी

स्वाभाविक काम-लालसा की पूर्ति के लिए स्त्री तथा पुरुष एक-दूसरे के प्रति सचाई का बर्ताव करते हुए आजीवन वैवाहिक सम्बन्ध में बँध कर काल-यापन करें। इस प्रकार बहुपत्नी तथा पतिवाद के विरुद्ध लोग सजग होते गए और इसीलिए यह नवीन आदर्श लोगों को स्वीकार भी न हुआ।

यह तो हुई अपनी बात, अब सन्तान को लीजिए। यदि वैवाहिक जीवन के स्थान में पशु-सम्बन्ध प्रचलित हो जाय तो दूसरी दिक़्क़त उससे यह होगी कि उत्तम सन्तान की देश में भारी कमी पड़ जायगी।

वैवाहिक जोड़ों में जो नैसर्गिक प्रेम होता है, कामचलाऊ (Temporary) जोड़ों में वह बात कभी नहीं आ सकती। यदा-कदा दो-चार उदाहरणों को छोड़ कर आज तक तो यही नियम रहा है। आगे ऐसा न होगा, इसे मानने के लिए कोई कारण नहीं दिखाई देता।

यह भी मानी हुई बात है कि योग्य सन्तान की उत्पत्ति के लिए सम्भोग-लिप्त जोड़े में प्रेम का होना—केवल प्रेम का होना ही नहीं, बल्कि प्रेमवश उस समय अज्ञानावस्था को जा पहुँचना नितान्त आवश्यक है। अस्तु, इस प्रकार पशु-सम्बन्धवाद के प्रचलन से सारी जाति हीन हो जायगी।

सन्तान-पालन की बात लेकर देखिए कि देश की सरकार के हाथ में जाकर यह काम कहाँ तक सफल

होगा। यह जरूर है कि वहाँ बच्चों की देख-रेख के लिए विशेषज्ञ एवं ऊँची शिक्षा-प्राप्त धाएँ रहेंगी ; किन्तु सन्तान के लिए क्या केवल वैद्यक ही सब कुछ है। उसे माता का प्रेम कहाँ मिलेगा ? बिना मातृ-प्रेम की छत्र-छाया के क्या कभी वह बढ़ कर मनुष्य हो सकेगा ? इससे बालकों की मृत्यु-संख्या घट सकती है, लेकिन वे बढ़ कर मनुष्य होंगे क्या ? वे उसी तरह के मनुष्य होंगे, जिस तरह की अनाथ मातृत्यक्त सन्तानें हमारे यहाँ इङ्गलैण्ड से फ़ौज के लिए भेजी जा रही हैं। इन फ़ौजी गोरो को तथा इनकी अमानुषिकता एवं हृदयहीनता को जिन लोगों ने एक बार भी देखा है, वे इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि विशेषज्ञों द्वारा परिचालित अस्पतालों से किस प्रकार के हृदयहीन मानवों की सृष्टि हो सकती है !

इन युवक गोरों के लिए ६०-६५ वर्ष की बुढ़िया पर अत्याचार करना—सो भी उस समय तक, जब तक कि शरीर से उसके प्राण आघातों के मारे निकल न जाएँ—कोई कठिन बात नहीं है। नशे में आकर आदमी के सिर को फुटबॉल समझ कर खेलने में इनको जरा भी सङ्कोच नहीं होता। विशेषज्ञों की इन सन्तानों से परमात्मा बचाए !

फिर यौवन रहते तक तो यह बात ठीक भी हो सकती है; बुढ़ापे में जब पुरुष को स्त्री के लिए तथा स्त्री को पुरुष के लिए स्वाभाविक खिंचाव नहीं रह जाता, तब इस प्रेम-

शून्य और पशु-भाव प्रचालित समाज के सदस्यों की कौन रक्षा करेगा? राष्ट्र द्वारा उनके खान-पान, परिचर्या एवं शुश्रूषा आदि ऐहिक बातो का प्रबन्ध तो सरकार कर सकती है, किन्तु उसकी नैतिक तथा मानसिक कमियों को कौन पूरी करेगा? मनुष्य पशु तो नहीं है, उसके पास नाना प्रकार की कोमल प्रवृत्तियाँ एवं भावनाएँ भी तो हैं।

सन्तान ही एक ऐसी चीज़ है, जो मनुष्य को समाज से बाँधती है। समाज और मनुष्य के बीच की वह कड़ी है। सन्तान से अलग होकर मनुष्य समाज से भी अपना बन्धन तोड़ देगा। सन्तान द्वारा उसके मन का त्याग, निस्स्वार्थ प्रेम, कर्त्तव्य-ज्ञान आदि कोमल प्रवृत्तियाँ प्रसव पातीं तथा फूलती-फलती हैं। सन्तान से अलग होने पर ये प्रवृत्तियाँ सर्वथा नष्ट हो जायँगी और तब मनुष्य एक प्रकार का स्वेच्छाचारी पशु बन जायगा।

यह सन्तान-प्रेम ही है, जो दो स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक अनुचित प्रेम को रोकता है। वे सोचते हैं—हमारे इस प्रेम में जो फल लगेगा—सन्तान होगी, उसका क्या होगा। यदि यह भय मिट जाय तो आपके सारे सामाजिक नियम भी एक दिन मे मिट जायँ।

सन्तान की चिन्ता से मुक्त हो जाने पर लोग प्रत्येक सामाजिक नियम को तोड़ कर समाज से अलग हो जायँगे। इसीलिए समाज के विरुद्ध आचरण करने वाले स्त्री-पुरुष

की अपेक्षा हमारा समाज उनकी सन्तान को अधिक दण्ड देता है। कई अंशों में निर्दोष शिशु को इस प्रकार दण्डित करना अन्याय है; किन्तु समाज के अस्तित्व की दृष्टि से यह दण्ड बहुत आवश्यक है।

लेकिन केवल समाज का ही नाश होकर रह जाय तो भी कुशल है, परिणाम तो इससे भी भयङ्कर होगा। विवाह-प्रथा के नष्ट हो जाने तथा सन्तान-प्रेम से वञ्चित हो जाने पर मनुष्य-जाति नष्ट हो जायगी।

प्रकृति का कौशल विलक्षण है। वह अपनी सन्तान से काम लेना अच्छी तरह जानती है। सन्तानोत्पत्ति सृष्टि के लिए आवश्यक है, इसलिए प्रकृति ने सहगमन में पारस्परिक आनन्द का पुट दिया है। प्रकृति जानती है कि बिना स्वार्थ की मात्रा के मनुष्य किसी काम में अग्रसर नहीं होता।

अब देखना यह चाहिए कि मनुष्य के सन्तान-प्रेम की जड़ में कौन-सी बात छिपी हुई है। सन्तान आगे चल कर मनुष्य के लिए वही काम करती है, जो माता-पिता सन्तान के लिए करते हैं; वृद्धावस्था में जब मनुष्य सामर्थ्य-हीन होकर कमाने लायक़ एवं चलने-फिरने के लायक नहीं रह जाता, तब सन्तान अपने माता-पिता की सेवा करती है।

जब सरकार द्वारा यह काम होने लगेगा तथा जब

सन्तान की आवश्यकता ही न रह जायगी, तब मनुष्य सन्तान उत्पन्न करना एकदम बन्द कर देगा। इस प्रकार के उपाय निकल ही चुके हैं तथा इस दिशा में अभी खोज जारी ही है। असम्भव नहीं कि मनुष्य ऐसा उपाय ढूँढ़ निकाले, जिससे सन्तान होना निश्चित रूप से रोका जा सके। ऐसा उपाय निकल आने पर वह सोचेगा, विशेष कर मातृत्व पद से गिरी हुई स्त्रियाँ सोचेंगी कि जब सन्तान से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं, तब गर्भ-धारण तथा जनन की पीड़ा उठाने से क्या लाभ? केवल कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर काम करने वाले लोग इस संसार में बहुत कम हैं। अस्तु—

सन्तानोत्पत्ति की ज़िम्मेदारी से अलग होकर वह ख़ूब मौज करेगा। एक पुरुष ऐसी दशा में एक स्त्री से कब सन्तोष पा सकता है तथा कोई स्त्री ही किसी ख़ास पुरुष की आजीवन चेरी बनना क्यों स्वीकार करेगी। परिणाम-स्वरूप व्यभिचार का बाज़ार गरम होगा। प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष जननेन्द्रिय के रोग से आक्रान्त होंगे। बल-वीर्य घटेगा और हमारी सभ्यता का—इस प्राचीन मानव-सभ्यता का—अन्त हो जायगा।

कई वैज्ञानिकों का कथन है कि जिस प्रकार वाराह, नृसिंह आदि कई सभ्यताओं के नाश पर मानव-सभ्यता की भित्ति खड़ी हुई है, उसी प्रकार एक दिन मानव-सभ्यत
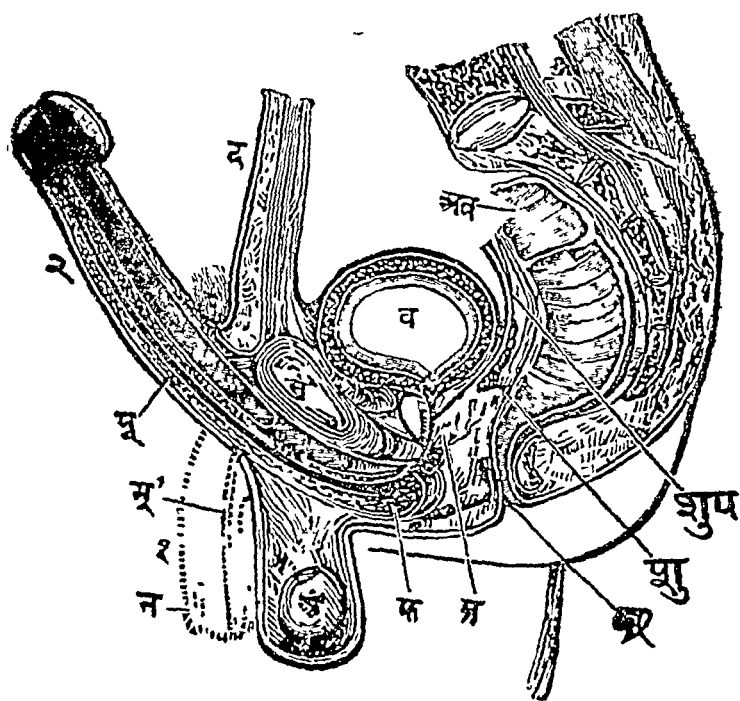
नर-वस्ति-गह्वर

द = उदर की दीवार ; व = वस्ति या मूत्राशय ; शुप = शुक्र-प्रनाली ; शु = शुक्राशय ; छ = मल-द्वार ; प्र = प्रोस्टेट ; फ = मूत्र-मार्ग का स्थूल भाग , अं = अण्ड , त = शिश्नाग्र-त्वचा ; मू = मूत्र-मार्ग ; १ = शिश्न की शिथिलावस्था ; २ = शिश्न की दृढ़ावस्था (प्रहृष्ट शिश्न) ; सं = विटप-सन्धि (कटी हुई) ।

का अन्त होगा। यदि हमारे ये ही दिन नज़दीक हैं, तो इसके बुलाने का सबसे अच्छा तरीक़ा विवाह को बन्द कर पशु-समागमवाद का प्रचार करना ही है।

आदर्श विवाह

आदर्श बहुत ऊँचा होता है। बल्कि यह भी कहना अनुचित न होगा कि यह साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर की या केवल कल्पना-जगत् की बात है। तब इतने ऊँचे आदर्शों की रचना ही क्यों हुई? स्वभावतः योंही यह प्रश्न हमारे मन में उठने लगता है।

मनुष्य का स्वभाव निम्नगामी है। उसकी दिशा, उसका झुकाव या बहाव नीचे की ओर है। यदि नाना प्रकार के अङ्कुश न लगे रहें तो न जाने यह किस पाताल मे जाकर दम ले। इसीलिए मानव-स्वभाव के ज्ञाताओं ने बड़े ऊँचे आदर्श बना रक्खे हैं। इस पर ध्यान रख कर बढ़ने से वह कुछ भी ऊँचाई पर तो पहुँचेगा। हीन आदर्श सामने रखने से मनुष्य के प्रयत्न में शिथिलता आ जायगी और वह ऊपर उठने में प्रयत्न भी उतना न करेगा।

इसीलिए आदर्श तक पहुँचना कठिन है; किन्तु अपनी ओर से कमी क्यों की जाय? आदर्श को सामने रख कर वहाँ तक पहुँचने के लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए।

हमारे सभी आदर्शों का ध्येय है हमें सुखी करना और

का अन्त होगा। यदि हमारे ये ही दिन नज़दीक हैं, तो इसके बुलाने का सबसे अच्छा तरीक़ा विवाह को बन्द कर पशु-समागमवाद का प्रचार करना ही है।

आदर्श विवाह

आदर्श बहुत ऊँचा होता है। बल्कि यह भी कहना अनुचित न होगा कि यह साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहर की या केवल कल्पना-जगत् की बात है। तब इतने ऊँचे आदर्शों की रचना ही क्यों हुई? स्वभावतः योंही यह प्रश्न हमारे मन में उठने लगता है।

मनुष्य का स्वभाव निम्नगामी है। उसकी दिशा, उसका झुकाव या बहाव नीचे की ओर है। यदि नाना प्रकार के अङ्कुश न लगे रहें तो न जाने यह किस पाताल में जाकर दम ले। इसीलिए मानव-स्वभाव के ज्ञाताओं ने बड़े ऊँचे आदर्श बना रक्खे है। इस पर ध्यान रख कर बढ़ने से वह कुछ भी ऊँचाई पर तो पहुँचेगा। हीन आदर्श सामने रखने से मनुष्य के प्रयत्न में शिथिलता आ जायगी और वह ऊपर उठने में प्रयत्न भी उतना न करेगा।

इसीलिए आदर्श तक पहुँचना कठिन है; किन्तु अपनी ओर से कमी क्यों की जाय? आदर्श को सामने रख कर वहाँ तक पहुँचने के लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए।

हमारे सभी आदर्शों का ध्येय है हमें सुखी करना और

इस व्यक्तिगत सुख की वृद्धि द्वारा समाज में तथा देश में शान्ति, सन्तोष, स्थिरता तथा दृढ़ता का आरोप करना। क्योंकि व्यक्ति ही मिल कर समाज बनाते हैं। जब व्यक्तियों मे सुख, सन्तोष तथा शान्ति का आरोप न होगा, तब समाज में ये बातें कहाँ से आएँगी ?

किन्तु मानव-सुख का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं व्यापक है कि हम बहुधा अपने सुख को समझने में ग़लती कर बैठते हैं। क्षणिक आनन्द को ही सुख समझ कर हम बहुधा चोरी, डकैती, वेश्यागमन आदि बहुत से अनाचार कर बैठते हैं। हमारी परिमित दृष्टि में वहाँ उस समय 'सुख' होता है। हम भूल जाते हैं कि मनुष्य सामाजिक जन्तु है। सामूहिक सुख-शान्ति के नाश होते ही उसका व्यक्तिगत सुख भी नष्ट हो जायगा। इसीलिए व्यक्तिगत सुख की लालसा में पड़ कर हमें ऐसा कोई भी काम न करना चाहिए जिसमें किसी दूसरे का स्वत्वापहरण होता हो।

दूसरी बात जो हम भूलते हैं, वह यह है कि सुख को ही हम परिमित कर डालते हैं। मनुष्य के अन्दर जितनी प्रवृत्तियाँ, जितने मनोभाव तथा जितने सूक्ष्मतर तत्व भरे हैं, जब तक उन सबको सामूहिक रूप से शान्ति न मिलेगी, तब तक हमें सुख नहीं हो सकता। कोई भी कार्य करते समय इस बात का विचार कर लेना अतीव आवश्यक है कि हमारे इस कार्य से हमारे अन्दर की किसी चीज़ को

व्याघात तो नहीं पहुँच रहा है। इन सब में सामञ्जस्य लाने पर ही हम सुखी हो सकते हैं। इसीलिए वास्तव में हमारा सुख क्या है, इसका निर्णय प्रत्येक प्राणी नहीं कर सकता। इसके लिए हमें विद्वानों की शरण लेनी चाहिए और ढूँढ़ना चाहिए कि किस प्रकार के आचरण से हमें सुख मिलेगा।

अगर सुख का ढूँढ़ निकालना इतना कठिन न होता और इस मार्ग में हमसे पग-पग पर ग़लतियाँ न हुआ करतीं, तो आज संसार में इतना दुख न दिखाई देता। क्या जान-बूझ कर कोई आदमी दुख उठाना मञ्जूर करेगा? सुख ढूँढ़ता तो प्रत्येक व्यक्ति है, लेकिन प्रत्येक को वह मिलता नहीं। सुख के पीछे संसार पागल है, लेकिन सुख है कहाँ?

विवाह की भी यही दशा है। कौन नहीं चाहता कि वह विवाह करके सुखी हो और शान्ति से काल-यापन करे? लेकिन आँख उठा कर देखिए तो कितने लोग सुखी हैं?

हाल ही में हमने किसी पत्र में एक मज़ाक़ पढ़ा था :—

पत्नी—क्यों जी, तुम बड़े बेवकूफ मालूम होते हो। इतनी साधारण सी बात तुम्हारी मोटी अक़ल में न आई।

पति—यदि बेवक़ूफ न होता तो विवाह क्यो करता? बुद्धिमान् लोग भी कहीं विवाह करते हैं?

बात है तो काल्पनिक मज़ाक, लेकिन इस छोटे से प्रहसन में न जाने कितने सुख के लिए लालायित, असफल दम्पतियों की अव्यक्त वेदना भरी हुई है। यह कलियुग है,

इसमें दुख की अधिकता तो होनी ही चाहिए। लेकिन इस समय हम सबसे अधिक दुखी हैं अपने वैवाहिक जीवन की असफलता से।

अपने देश की बात ही लेकर देखिए। 'अष्ट वर्षा भवेत् गौरी' का क्या परिणाम हुआ है। सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार विवाहितों की संख्या इस प्रकार है :—

आयु		विवाहित पुरुषों की संख्या		विवाहित स्त्रियों की संख्या
१ वर्ष से कम	...	६,९२१	...	९,०६[illegible]
१ ,, २ तक	...	३,६८७	...	११,५९[illegible]
२ ,, ३ ,,	...	१६,४८४	...	३२,११[illegible]
३ ,, ४ ,,	...	२८,९१५	...	६०,७५[illegible]
४ ,, ५ ,,	...	५१,६७७	...	१,८४,८५[illegible]
५ ,, १० ,,	...	७,५७,४०५	...	२०,१६,६८[illegible]
१० ,, १५ ,,	...	२३,४४,०६६	...	६३,३०,२०[illegible]
१५ ,, २० ,,	...	४,७७,४००	...	××[illegible]
		७२,७६,२५५		८६,४५,३५[illegible]

एक वर्ष से कम उमर के बच्चों की प्रति सहस्र पीछे मृत्यु-संख्या :—

प्रान्त			मृत्यु-संख्या
युक्तप्रान्त	...	...	... ३५[illegible]
बम्बई	...	...	... ३२[illegible]

बर्मा	३०४
पञ्जाब	३०६
बङ्गाल	२७०
मद्रास	१९९

अब इन अङ्कों पर विचार कर देखिए कि इस अभागे, आदर्शवादी, आध्यात्मिक भारत की सन्तान को विवाह द्वारा कितना सुख मिल रहा है ! इस देश में लगभग ७३ लाख पुरुषों का विवाह २० वर्ष से कम उम्र में तथा ८७ लाख कन्याओं का १५ वर्ष से कम उम्र में, अर्थात् उस समय, जब कि वे प्रजनन-कार्य के सर्वथा अयोग्य रहती हैं, हो जाता है।

इसके परिणाम की ओर ध्यान दीजिए। आज इस देश में १५ साल से कम उम्र की ३० लाख विधवाएँ अपनी आहों से हमें भस्मसात करने के लिए तैयार हैं। फ़ी हज़ार बच्चों में औसतन् २६२ की एक वर्ष की अवस्था के भीतर ही मृत्यु हो जाती है।

इसी का परिणाम है कि भीम तथा अर्जुन की सन्तान होकर भी हम आज कीट-पतिङ्गों से भी बल-वीर्यहीन हो रहे हैं। देश के बच्चे-बच्चियों का शारीरिक विकास नहीं हो पाता। असमय में ही प्रजनन कार्य करने के कारण नाना प्रकार के रोग आकर उन्हें धर दबाते हैं। उनकी सन्तान रोगी, दुर्बल होती है, और दुख का कारण बन जाती है।

केवल यही नहीं, आज जहाँ न्यूज़ीलैण्ड आदि के
देशवासियों की औसत आयु ६० वर्ष की है, वहाँ
की आयु प्राप्त भारतीयों की आयु घटते-घटते
वर्ष की ही रह गई है। विचार कर देखिए, हमारी
कैसी असफल हो रही है।

तब सोचना चाहिए कि हमारे विवाह का
क्या हो ?

विवाह का उच्चतम आदर्श तो है युवक-युवती का
बहुधा ऐसा होता है कि किसी खास आदमी को देख
हमारे मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है। हमें कई ऐसे
भी मिलते हैं, जिनकी ओर देखते ही हम आकर्षित
पड़ते हैं, लेकिन केवल प्रथम आकर्षण को ही हमें
न समझ लेना चाहिए। जीवन में आकर्षण तो हम क
के प्रति महसूस करते हैं, लेकिन ऐसा आदमी हमें का
ही मिलता है, जिसके साथ हम सम्पूर्ण एकता का अनु
करते हैं—हममें-उसमें किसी प्रकार का दुराव नहीं
जाता। यदि जीवन में कभी किसी पुरुष को कोई ऐसी
मिले या स्त्री को कोई ऐसा पुरुष मिले, जिसके साथ
ऐसे निष्कपट एकात्म-भाव का अनुभव कर स तो उन
समझ लेना चाहिए कि यही उनका जीवन-सङ्गी है। य
बात ध्यान में रहे कि इस पुरुष या स्त्री को पहचानने व
क्षमता मनुष्य में उस समय ... है, जब वह संसार व

अनुभव प्राप्त कर अपने को भी पहचान लेता है। पुरुष के लिए यह अवस्था २६-२७ और स्त्री के लिए २० वर्ष के पहले हर्गिज़ नहीं आ सकती।

इसके अलावा इस एकात्म-भाव का अनुभव हम एक-दूसरे को देखते ही नहीं कर सकते, वरन् कुछ दिनों के परिचय के बाद ही हम एक-दूसरे के प्रति इस प्रकार की एकात्मता का अनुभव कर सकते हैं। यह भी बहुत सम्भव है कि इस परिचय-काल में हमसे कई भद्दी ग़लतियाँ हो जायँ और इन ग़लतियों के बाद तब कहीं हमें पता चले कि हम एक-दूसरे से नहीं मिलते। फिर अधिकतर लोगों में ऐसा अवसर पहचानने की क्षमता नहीं रहती और इस अवधि तक पहुँचने के पहले ही वे पतित होकर अपने जीवन को बिगाड़ डालते हैं। इसलिए सर्व-साधारण को इस सम्बन्ध में उनके पूर्वज तथा विद्वान् जो आदर्श बता गए हैं, उसे ध्यान में रख कर काम चलाना चाहिए। ऐसा न कर यदि इस नाज़ुक विषय में प्रत्येक वर-कन्या को स्वच्छन्द अधिकार—केवल अपने मन के मुताबिक़ चलने का अधिकार दे दिया जाय तो नतीजा वही होगा, जो आज पश्चिमी देशों की तलाक़-अदालतों में हो रहा है, और जिनकी संख्या इस हद पर पहुँच गई है कि उदारवादी पश्चिमी वैज्ञानिक तक घबड़ा उठे हैं।

वर-कन्या का जोड़ा मिलाते वक़्त नीचे लिखी बातों

पर ध्यान रखना चाहिए, चाहे यह काम युवक-युवती या उनके माता-पिता अथवा अभिभावक करें :—

१—दोनों का स्वास्थ्य ठीक हो।

२—दोनों विवाह की अवस्था में पहुँच चुके हों, याने युवक-युवती हो चुके हों।

३—दोनों शरीर-विज्ञान तथा स्त्री-पुरुष की शारीरिक, मानसिक तथा नैसर्गिक आवश्यकताओं तथा विशेषताओं से परिचित हों।

४—दोनों में प्रेम है या नहीं, यदि यह ठीक-ठीक न मालूम हो सके तो कम से कम इतना तो अवश्य मालूम हो जाय कि वे एक-दूसरे से घृणा तो नहीं करते हैं।

५—उनकी प्रकृति में—विशेष कर कामुकता में—विशेष अन्तर न रहे। यदि किसी विशेष कामुक स्त्री के साथ क्षीण-कामी पुरुष का या इसके विपरीत अतिकामी पुरुष का किसी ऐसी युवती से, जिसके मन में बहुत कम काम-सञ्चार होता है, सम्बन्ध कर दिया जायगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी।

६—उनकी रुचि में—खान-पान, रहन-सहन, शिल्प-कला, धर्म तथा झुकावों में—भी जहाँ तक हो सके, समानता होनी चाहिए। किन्तु सभी बातों में समानता की भी कोशिश न करनी चाहिए। देखना यह चाहिए कि कोई ऐसी असमानता तो नहीं है, जिससे उनमें घोर कलह उप-

नर-पृष्ठ की रक्त-वाहिनी शिराएँ
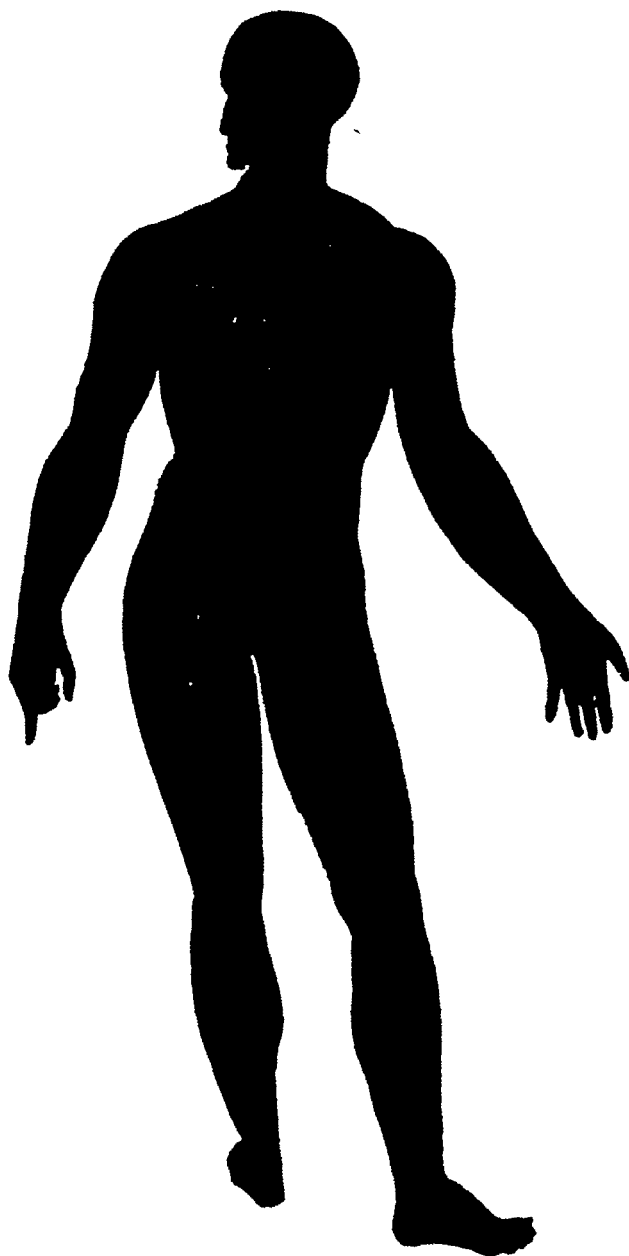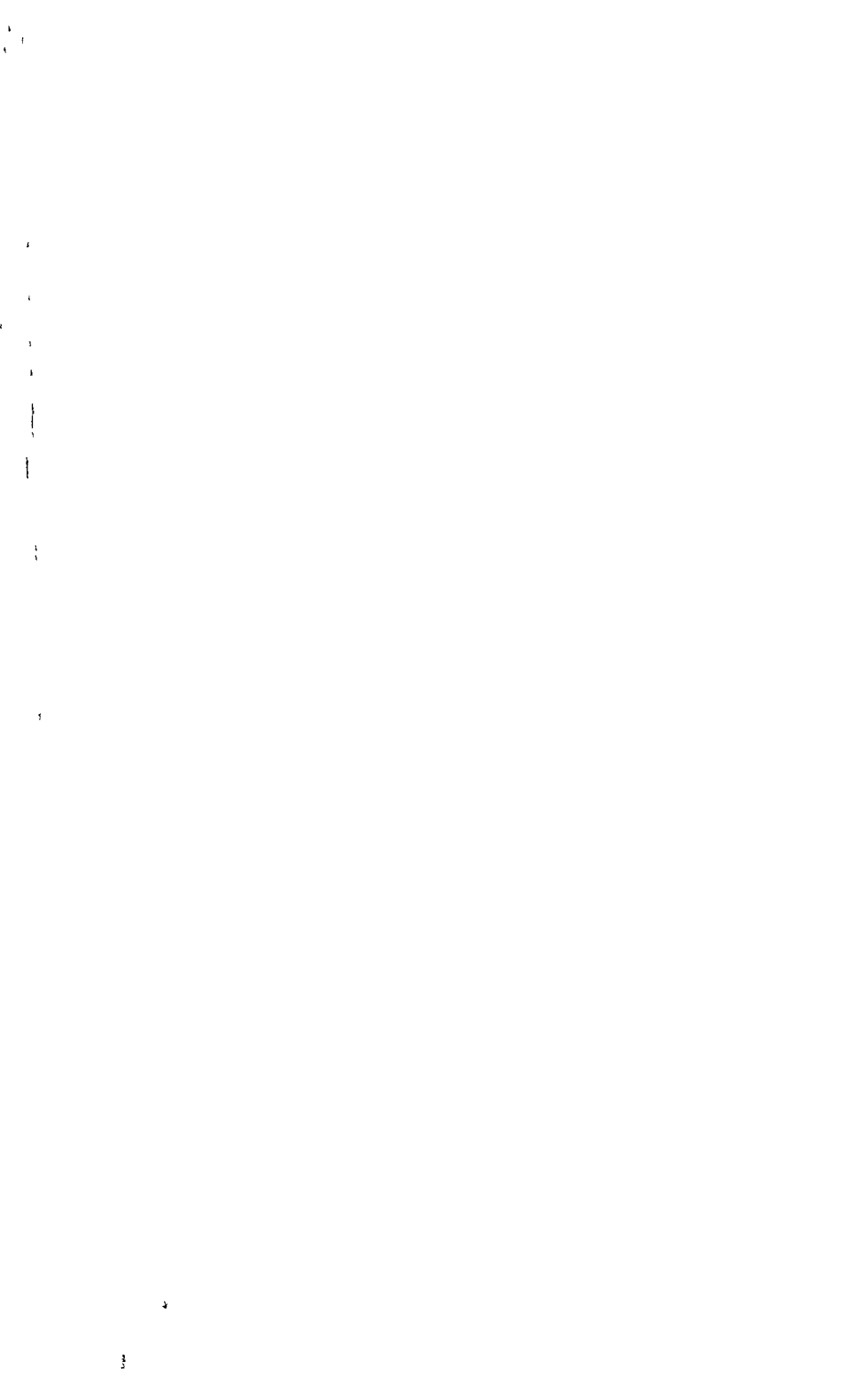
स्थित हो जायगी। साधारण असमानता या कलह से तो प्रेम में तरङ्गें आती हैं, उत्तेजना मिलती है तथा दीर्घकालीन समीपता के कारण जो शिथिलता आगई रहती है, वह दूर हो जाती है।

देश की वर्त्तमान परिस्थिति को देखते हुए विवाह को सफल बनाने के लिए एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। देश की ग़रीबी और बेकारी दिन-ब-दिन बढ़ रही है। एक ग़रीब अथवा किसी बेकार व्यक्ति के लिए विवाह आनन्द की वस्तु नहीं, वरन् एक भारी बोझ हो जाता है। कइयों को तो अब आत्मघात की जरूरत भी पड़ रही है। फलतः वर्तमान समय को देखते हुए विवाह उन्हीं को करना चाहिए, जिनकी आय उस बोझ को सँभालने के योग्य हो। सभी को आँख मूँद कर गृहस्थी के गह्वर में न कूद पड़ना चाहिए। माता-पिता का भी फर्ज़ होना चाहिए कि वे समय के पूर्व ही अपनी सन्तानों के गले में विवाह का बोझ लटका कर उनके लिए कष्ट और आत्मघात का मार्ग साफ करने से अपना हाथ खींच लें। समय जैसा बदले, अपने आचार-विचार को भी हमें तदनुरूप ही बना लेना चाहिए; अन्यथा कभी भारी हानि का सामना हो जाता है।
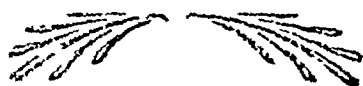
स्त्री-जननेन्द्रिय और रोग
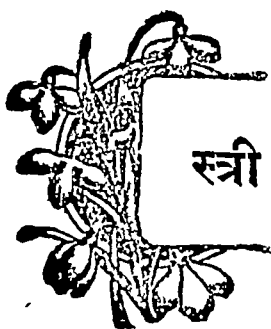
स्त्री और पुरुष की शारीरिक बनावट में तो भेद है ही, इसके अलावा उनकी प्रकृति तथा स्वभाव में भी अन्तर रहता है। इनमें कुछ अन्तर तो जन्म से होते हैं और कुछ संस्कारदत्त हैं।

छोटी अवस्था के बालक-बालिकाओं के विचार और रुचि आदि मे बहुत कम अन्तर रहता है; किन्तु धीरे-धीरे उनकी शिक्षा तथा रहन-सहन में अन्तर पड़ने लगता है। बालको में पौरुष तथा बालिकाओं मे कोमलता आने लगती है।

किन्तु शिक्षा के अलावा प्रकृति का भी इस अन्तर के लाने में काफी हाथ रहता है। सन्तान के लालन-पालन में पुरुप का काम बहुत जल्दी समाप्त हो जाता है। बीजारोपण के बाद वह एक प्रकार से इस दिशा में स्वतन्त्र हो

हो जाता है; लेकिन स्त्रियों को इसमें बहुत परिश्रम एवं शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है। अपने शरीर के रासायनिक द्रव्यों से उन्हें गर्भस्थित शिशु के शरीर की रचना करनी पड़ती है। बालक के जन्म के समय भी उन्हें काफी शारीरिक यातना तथा क्षति सहनी पड़ती है और वे बहुत कमज़ोर हो जाती हैं। इस समय भी उन्हें पूर्ण विश्राम करने का अवकाश नहीं मिलता। उन्हें बालक को दूध पिलाना पड़ता है और इस प्रकार भी उनके शरीर का रासायनिक द्रव्य ख़र्च होता रहता है। फलतः उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक आराम तथा पुष्टि की आवश्यकता पड़ती है।

पुरुष की शारीरिक बलिष्ठता एवं अधिक काल तक यौवन प्राप्त रहने का यह एक प्रमुख कारण है। इसीलिए पुरुष स्वभावतः ऐसे कामों के योग्य होता है, जिसमें अधिक बल तथा परिश्रम की आवश्यकता रहती है तथा स्त्री घर में रह कर उन हलके कामों में भाग लेती है, जिनमें न तो बहुत परिश्रम पड़ता और न अधिक समय लगता है।

स्त्रियों को आर्थिक स्वाधीनता दिलाने वाले इस प्रधान बात को भूल जाते हैं। स्त्री—वह स्त्री, जिसे सन्तानोत्पत्ति का काम करना हो—कभी कमाने-धमाने के झगड़े में नहीं पड़ सकती। ऐसा करने से उसकी मातृत्व-शक्ति पर कुठाराघात होने की प्रबल आशङ्का रहती है।

लेकिन सब स्त्रियाँ माता बनने के लिए मजबूर ही क्यों

की जायँ ? आजकल बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ मिलेंगी, जो माता बनने की इच्छा नहीं रखतीं। बहुत सी ऐसी हैं जिनके हाथों से माता बनने का सुयोग निर्दयतापूर्वक छीन लिया गया है, जैसे भारतीय विधवाएँ। इन लोगों को पुरुषों के सदृश काम में लगने की स्वाधीनता रहने से कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है। अस्तु—

वैवाहिक जीवन के सुख के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हम आपस के इस प्राकृतिक एवं संस्कार-जनित खूबियों को समझें। बिना इनके समझे हम बहुधा बहुत सी ऐसी बातें करते रहते हैं, जिनसे एक-दूसरे के मन पर कठोर आघात लगता है और कलह का सूत्रपात हो जाता है।

हमारी दूसरी बाधा है शरीर-विज्ञान-सम्बन्धी अज्ञानता। शरीर-रचना को बिलकुल न समझ सकने के कारण अपनी जननेन्द्रियों से इस प्रकार के अस्वाभाविक काम लेते हैं कि हमें व्यक्तिगत हानि तो होती ही है, हमारे जोड़े पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ता है और दोनों को नाना प्रकार के रोग धर दबाते हैं। केवल दोनों ही नहीं, उनकी सन्तान पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

गुदा के ऊपर और पेड़ (कोथा) के नीचे जो अङ्ग स्त्री के सामने दिखाई देता है, उसे भग कहते हैं। भग के बीचो-बीच एक दरार है, जिसके दोनों ओर मांस के दो मोटे-मोटे पट हैं, जिन्हें भगोष्ठ—भग के लिए ओष्ठ या अधर

कहते हैं। इनका काम है कोमल गुह्येन्द्रियो को ढके रहना। इन बाहरी भगोष्ठों को हटा देने पर दो और बहुत बारीक ओष्ठ दिखलाई देंगे। इनको हटा देने पर अन्दर दो छिद्र दिखलाई पड़ेंगे। जो बड़ा और नीचे है, वह मैथुन के काम में आता है, मासिक स्राव भी इसी से निकलता है और बच्चा भी इसी से बाहर आता है। इस छिद्र को योनि-द्वार कहते हैं। यह छिद्र आवश्यकता के समय बहुत बढ़ कर अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है। इससे लगभग आध इञ्च के फ़ासले पर ऊपर की ओर एक छोटा सा छिद्र होता है, जो मूत्र बाहर करने के काम में आता है। इसका जननेन्द्रिय से बहुत सम्बन्ध नहीं है।

कुमारी कन्याओं के योनि-द्वार पर एक प्रकार की झिल्ली या परदा लगा रहता है, जिसे कुमारीच्छद (*Hymen*) कहते हैं। इस पर्दे में छोटा सा छिद्र रहता है, जिसके ज़रिए रज-स्राव होता है। प्रथम वार कुमारी-प्रसङ्ग करते समय पुरुष को इस बात का ख़ूब ध्यान रखना चाहिए। कभी-कभी कामी पुरुषों की लापरवाही से नई वधुओं को, कुमारीच्छद बहुत ज़ोर से या अचानक फट पड़ने के कारण भारी कष्ट होता है तथा रुधिर भी निकलता है।

किसी-किसी स्त्री का कुमारीच्छद इतना कड़ा रहता है कि पुरुषेन्द्रिय का प्रवेश असम्भव हो जाता है। ऐसी दशा में किसी कुशल डॉक्टर से इसे चिरवा कर अलग कर

डालना चाहिए। यह ऑपरेशन न तो बहुत खतरनाक है और न इसमें बहुत पीड़ा ही होती है।

बहुत से लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि प्रत्येक कुमारी का योनिच्छद (Hymen) पुरुष-संयोग के पहले साबित ही रहना चाहिए। कोई-कोई पति कुमारीच्छद के अभाव में अपनी पत्नी को पतिता समझ बैठते हैं, यह एक भारी भ्रम है। सबका कुमारीच्छद एक-सा नहीं रहता ; किसी का बहुत कोमल तथा किसी का अति कठोर होता है। इसीलिए किसी का कुमारीच्छद साधारण धक्के या चोट से फट सकता है और किसी का कई बार पुरुष-समागम करने पर भी साबित रह सकता है। कुमारीच्छद का होना या न होना कुमारीपने का प्रमाण नहीं है।

ऊपर की ओर भगोष्ठ जिस जगह पर जाकर मिलते हैं, वह स्थान कुछ उभरा सा रहता है, जो कामाद्रि कहलाता है। कामाद्रि के नीचे, भगोष्ठों के बीच में तथा मूत्र-द्वार के ऊपर एक छोटा सा अङ्कुर होता है, जो भगाङ्कुर कहलाता है। मैथुन के समय यह भी दृढ़ हो जाता है और पुरुष की जननेन्द्रिय से रगड़ खाता है। इससे स्त्री को आनन्द प्राप्त होता है।

यह तो बाहरी चित्र हुआ ; अब इसके भीतर का वर्णन भी आवश्यक है। योनि-द्वार से लेकर बच्चेदानी के मुख तक एक लचीली नली लगी रहती है, जिसकी लम्बाई लग-

भग तीन-चार इञ्च की होती है। यह ऊपर की ओर होती है। यही योनि है; इसके पिछले सिरे में बच्चेदानी का मुख घुसा रहता है। मैथुन के समय पुरुष-जननेन्द्रिय इसी में होकर बच्चेदानी में जाता और वीर्य वपन करता है। योनि की दीवारें आपस में मिली रहती हैं। धक्का पड़ने या किसी सख़्त चीज़ के प्रवेश से वे अलग हो जाती हैं और मार्ग निकल आता है। इन दीवारों में ग्रन्थियाँ रहती हैं, जिनसे मैथुन के समय एक प्रकार का रस निकलता है, जो उस कार्य को सरल बनाता और योनि तथा पुरुष-जननेन्द्रिय को रगड़ खाने या छिलने से बचाता है। बहुत से लोग इसे ही स्त्री का स्खलित होना समझते हैं, लेकिन यह उनकी ग़लती है। हाँ, इस द्रव्यस्राव से स्त्री को किञ्चित् आनन्द ज़रूर आता है। स्त्रियों के स्खलित होने में काफ़ी समय लगता है और पुरुष की शक्ति तथा कौशल की आवश्यकता पड़ती है।

गर्भाशय

यह योनि से सटा हुआ रहता है। इसका आकार नाशपाती जैसा, लम्बाई लगभग तीन इञ्च, चौड़ाई दो इञ्च और मुटाई एक इञ्च रहती है, तथा इसका मुख योनि के अन्दर घुसा रहता है। इसमें गर्भ की स्थिति होती है और यहीं रह कर वह वृद्धि पाता है। गर्भ के साथ-साथ यह भी

बढ़ जाता है और गर्भ के निकल जाने पर अपने साधारण आकार में फिर आ जाता है। मनुष्य को सबसे बड़ी उँगली डाल कर यह छुआ जा सकता है। यह कई बन्धनों द्वारा अपने स्थान पर बँधा रहता है। कभी-कभी बन्धनों के ढीले पड़ने से यह स्थानच्युत हो जाता है, जिससे स्त्रियों को पीड़ा होने लगती है, मासिक-धर्म में गड़बड़ी आ जाती है तथा गर्भ नहीं रहता।

डिम्ब-प्रणाली

गर्भाशय के ऊपर के भाग में दो नलियाँ दाईं और बाईं ओर आकर घुसती हैं, जो डिम्ब-प्रणाली कहलाती हैं। गर्भाशय से शुरू होकर ये दोनो ओर चार-चार इञ्च तक जाकर डिम्ब-ग्रन्थियो के पास ख़तम हो जाती हैं। यहीं इनका मुख रहता है, जिसमें झालर सी लगी रहती है, जो अण्डाकृत डिम्बों को अपने में लेने के विशेष उपयुक्त होती हैं। इसमें से होकर डिम्ब गर्भाशय में पहुँचता और वहाँ ठहर कर वीर्य की प्रतीक्षा करता रहता है।

डिम्ब-ग्रन्थियाँ

ये ग्रन्थियाँ भी दो होती हैं, जो गर्भाशय की दाहिनी और बाईं ओर डिम्ब-प्रणालियो के ऊपर रहती हैं। इनका रूप अण्डे के समान और आकार (Size) छिलके-रहित बादाम के बराबर होता है। इनके अन्दर डिम्ब (Ova)
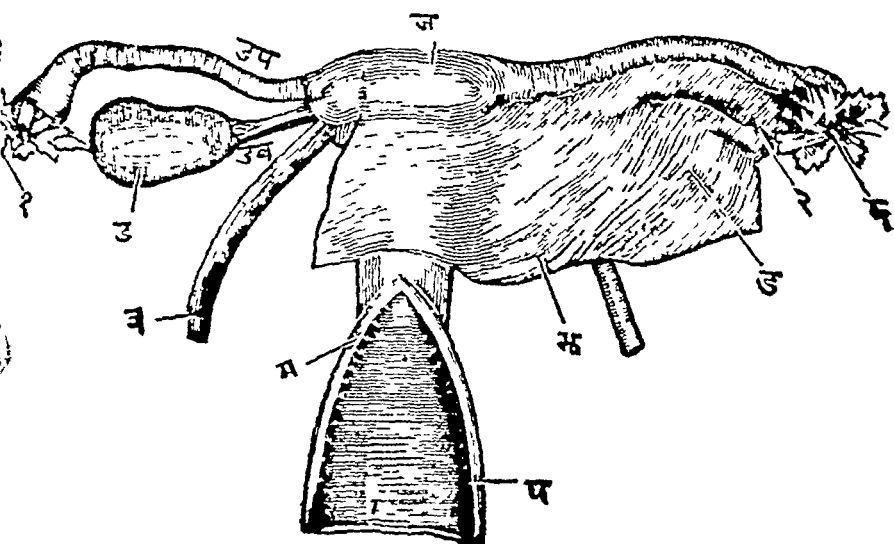
गर्भाशय, डिम्ब-प्रनाली, डिम्ब-ग्रन्थि

ज = जरायु या गर्भाशय ; झ = चौड़ा बन्धन, यह बन्धन केवल एक ही ओर दर्शाया गया है ; डप = डिम्ब-प्रनाली ; डव = डिम्ब-ग्रन्थि का बन्धन; व = जरायु का गोल बन्धन; ड = डिम्ब-ग्रन्थि, यह ग्रन्थि चौड़े बन्धन की पिछली तह में रहती है, जैसे कि चित्र में दाहिनी ओर दर्शाई गई है ; १ = डिम्ब-प्रनाली के मुख की झालर ; छ = छिद्र, जिसके द्वारा डिम्ब डिम्ब-प्रनाली में पहुँचता है ; म = जरायु का बहिर्मुख ; य = योनि ।

बन कर पुष्ट होते हैं। हर मास एक डिम्ब पक कर डिम्ब-ग्रन्थि की दीवार को फाड़ता और डिम्ब-प्रणाली की झालर में गिर कर नली की राह से गर्भाशय में पहुँचता है। वहाँ वह लगभग १६ दिन तक ठहर कर वीर्य की प्रतीक्षा करता है। यदि वीर्य से उसका संयोग न हुआ तो योनि-मार्ग से होकर बाहर चल देता है।

स्तन

इन्हें दुग्ध-ग्रन्थियाँ (Kaunuary glands) कहते हैं। दुग्ध-ग्रन्थियों का जननेन्द्रिय से तथा गर्भ से घनिष्ट सम्बन्ध है। मासिक स्राव के बन्द होने पर इनमें दूध बनने का काम प्रारम्भ हो जाता है। इनके ऊपर जो काला हिस्सा रहता है, उसमें छिद्र रहते हैं, जिनसे दूध निकल कर बालक के मुख में जाता है। इस काले भाग को मसलने से वह सख़्त हो जाता है और स्त्री उत्तेजित हो जाती है तथा उसे आनन्द भी आता है। जब तक इसमें दूध भरा रहता है, तब तक इसका आकार बड़ा हो जाता है, किन्तु दूध सूख जाने पर यह पुनः छोटा हो जाता है। कई बार ऐसा होते-होते यह ढीला हो जाता है। इस अङ्ग का पुरुषों की नादानी से बहुत दुरुपयोग होता है। वे इस समूचे भाग को बुरी तौर से मसला करते हैं, जो अनावश्यक है। आनन्द के लिए केवल काले भाग को हलके हाथों मसलने से काम चल सकता है

और हानि भी बचाई जा सकती है। बहुधा यह पुरुषों के अत्याचार के कारण कुसमय ही ढीला पड़ जाता है। बच्चा होने के बाद शीघ्र ही संयोग शुरू कर देने से दूध बहुत जल्द सूख जाता है।

रज-स्राव (Mensturation)

इस देश में प्रायः बारह से चौदह वर्ष तक की अवस्था में स्त्रियो को रजोदर्शन होता है। यह यौवन का प्रारम्भ है लेकिन भ्रमवश लोग यह समझ लेते हैं कि स्त्री अब अभि-गमन तथा जनन के योग्य हो गई है। कम से कम जब ३ बार रज-स्राव हो जाता है, तब कहीं जाकर स्त्री की जननेन्द्रियाँ प्रौढ़ होती हैं। इसके पूर्व जननेन्द्रियों को स्वाभाविक या अस्वाभाविक किसी भी रीति से छेड़ना या उत्तेजित करना रोग तथा अनुचित कामुकता का कारण होता है।

रज-स्राव गरम देशों में कुछ जल्दी तथा शीत-प्रधान देशो में कुछ देर में, याने लगभग सोलह वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होता है; लेकिन नियम के अपवाद सभी जगह देखे जाते हैं। तीन वर्ष की वालिका तक के रज-स्राव होते देखा गया है तथा ऐसी स्त्रियाँ भी पाई गई हैं, जिन्हे अठारह वीस की अवस्था में रज-स्राव आता है या जिन्हें कभी आता ही नहीं। जिनके रज-स्राव नहीं होता, वे स्त्रियाँ वन्ध्या होती हैं।

साधारणतया यह मासिक-धर्म चौदह वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होकर पैंतालीस वर्ष की अवस्था तक जारी रहता है। मिताचारी स्त्रियों को यह इस अवस्था के बाद भी दो-चार वर्ष तक आता रहता है तथा अनियमित जीवन व्यतीत करने वाली महिलाओं का रज-स्राव पैंतालीस वर्ष के पहले भी बन्द हो जाता है। चालीस वर्ष के पूर्व अक्सर रज-स्राव बन्द नहीं होता।

यदि स्त्री स्वस्थ है तो प्रत्येक बार २८ दिन में मासिक-धर्म प्रकट होता और चार दिनों तक जारी रहता है, किन्तु किसी को दो दिन तथा किसी को आठ दिन तक भी आता रहता है। एक ही स्त्री को स्वास्थ्य के अनुसार कम या बेश भी हो जाता है। इस स्राव में प्रति बार तीन-चार छटाँक रक्त जाता है। डिम्ब-ग्रन्थियों, डिम्ब-प्रणाली, गर्भाशय तथा योनि में रक्त-सञ्चय होना ही रज-स्राव का कारण है। स्तन भी इस कार्य में भाग लेते हैं। रक्त-सञ्चय होने से उस स्थान की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ (Capillaries) तन जाती हैं और कुछ फूट पड़ती हैं, जिससे रक्त-स्राव जारी हो जाता है। इस रक्त के साथ मूत्र-मार्ग का मल तथा जननेन्द्रिय के ऊपरी उभड़े हिस्सों के कुछ गिरे हुए अंश (मांस के छिछड़े) मिले रहते हैं। रक्त का रङ्ग कुछ काला रहता है। मासिक-धर्म के अवसर पर स्त्रियों का मन कुछ उदास सा रहता है और बदन में साधारण वेदना एवं सुस्ती भी मालूम होती है।

किन्तु यदि पीड़ा अधिक मालूम हो और रक्त-स्राव भी अधिक या कम हो या तीस से ज़्यादा या पन्द्रह दिन में ही होता हो तो यह रोग का लक्षण है। इसमें किसी डॉक्टर की सलाह शीघ्र लेनी चाहिए।

मासिक स्राव का सम्बन्ध निश्चय ही डिम्ब से है; क्योंकि मासिक स्राव उसी समय होता है, जब डिम्ब डिम्ब-ग्रन्थि में पक कर निकलने लगता है। रजोदर्शन बन्द होते ही डिम्ब गर्भाशय में पहुँच जाता है। इस स्राव का एक कार्य यह भी मालूम होता है कि वह गर्भाशय की दीवारों को गर्भ के चिपकने के योग्य बना दे। जब गर्भ-सञ्चार होकर डिम्ब का पकना और निकलना बन्द हो जाता है, तब रज-स्राव भी रुक जाता है। जब तक बालक दूध पीता रहता है और रक्त नीचे न आकर ऊपर जाता तथा बनने में सहायता करता है, तब तक डिम्ब नहीं निकलता और मासिक स्राव भी बन्द रहता है। अस्तु, यह निश्चय है कि गर्भ-सञ्चार, रज-स्राव, डिम्ब का पकना और स्तन के कार्यों में घनिष्ट सम्बन्ध है।

स्त्रियों के स्वास्थ्य का रज-स्राव से बहुत गहरा सम्बन्ध है। अस्तु, इस विषय में उन्हें बहुत सतर्क रहना चाहिए। सबसे पहले उन कारणों पर ध्यान देना चाहिए, जिससे बहुधा मासिक-धर्म में गड़बड़ी हो जाया करती है। जैसे :—

१—किसी तरह का काम-धाम करना, व्यायाम न करना और शुद्ध वायु का न मिलना।

२—गरिष्ट भोजन, मादक द्रव्यों का सेवन, अपच।

३—कड़े वस्त्रादि, जिनसे रक्त-सञ्चार में बाधा पड़े।

४—रात का जागरण, कम सोना तथा थिएटर आदि की उत्तेजना।

५—कामोद्दीपक विचारों की अधिकता, भद्दे, अश्लील ग्रन्थों का अवलोकन, अधिक क्रोध, घृणा एवं उत्तेजना।

६—अस्वाभाविक उत्तेजना और जननेन्द्रिय का अत्यधिक उपयोग। अत्यधिक उपयोग से जीवन-शक्ति क्षीण होती है, रोग बढ़ते हैं और अन्त में मृत्यु धर दबाती है। अतिकामी पतियों से भी बहुत हानि होती है।

रोग

गर्भाशय का सबसे भयानक रोग है प्रदर; और यह इस अभागे देश की १०० में लगभग ९९ स्त्रियों को सता रहा है।

गर्भाशय की झिल्ली, उसका मुख तथा उसके भीतर से प्रायः श्वेत तथा कभी-कभी मैला, लाल, पीला, नीला स्राव निकलने लगता है। इसकी दवा यदि समुचित रूप से न की जाय तो यह धीरे-धीरे गाढ़ा होने लगता है और अन्त में पीब की तरह का हो जाता है, जिससे योनि के मुख में तथा भीतर घाव हो जाते हैं।

इस रोग के साथ-साथ अन्य व्याधियाँ भी उठ खड़ी

होती हैं। क़ब्ज़ होना, भूख न लगना, साँस फूलना, सुस्ती, मूर्च्छा, दिल की धड़कन, कमज़ोरी, रक्तदोष, कमर तथा जङ्घों में दर्द आदि कई व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। हिस्टीरिया, राजयक्ष्मा आदि भयानक रोगों को भी यह भारी सहायता पहुँचाता है और इस स्राव के साथ-साथ कभी-कभी जलन भी होने लगती है।

प्रदर के कारण

१—परिपक्व अवस्था के पहले जननेन्द्रिय का उपयोग में लाया जाना तथा गर्भ-सञ्चार।

२—मानसिक उत्तेजना का अधिक आना, और शारीरिक उत्तेजना का अधिक देर तक क़ायम रहना तथा अन्त में स्वाभाविक शान्ति का न मिलना, याने सम्भोग का न हो पाना। इन कारणों से अधिक देर तक इन्द्रियाँ खिचाव मे रहती हैं, जिससे स्नायु में दुर्बलता पैदा होती है।

३—मैथुन से पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों को कम हानि नहीं होती। बहुत से लोगों में यह ग़लत ख़्याल फैला हुआ है कि समागम से स्त्रियों को उतना परिश्रम नहीं होता तथा उन्हें हानि भी नहीं होती, जितनी कि पुरुषों को होती है।

४—मासिक स्राव के समय मैथुन करने से भी बहुधा प्रदरादि कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, रक्त अशुद्ध तथा स्नायु-जाल दुर्बल हो जाते हैं।

५—गर्भपात से भी स्नायु-जाल दुर्बल होकर गर्भाशय में विकार उत्पन्न करते हैं।

६—बार-बार गर्भ रहना।

७—मैथुन के बाद तुरन्त ही योनि को जल से न धोना चाहिए। घर्षण के कारण योनि उस समय गर्म रहती है, अचानक ठण्ढक मिलने से उसमें स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता पैदा होती है, जिससे प्रदरादि का सूत्रपात हो सकता है।

८—सम्भोग के समय आनन्द का न आना या शोक, लज्जा, भय या घृणा का भाव मन में पैदा होना। बाज़ारू औरतो को जननेन्द्रिय रोग अधिक होने का यही कारण है।

९—मासिक स्राव का अंश गर्भाशय के भीतर रह जाने से भी हानि होती है; इसलिए मासिक-धर्म का समय खतम हो जाने पर गुनगुने पानी में साबुन मिला कर पिच-कारी से योनि तथा गर्भाशय को धो डालना चाहिए। विवाहिता स्त्रियों को तो प्रतिदिन एक बार गर्म पानी से योनि धो डालना चाहिए।

गर्भाशय का हट जाना या स्थान-भ्रष्ट होना

यह रोग बहुधा उन रमणियों को होता है, जिन्हे काम कम करना होता और घर की बन्द हवा में समय बिताना पड़ता है। ग्रामीण स्त्रियों को यह रोग बहुधा कम होता है। शहर मे रहने वाली अर्द्ध-शिक्षिता महिलाओं को उनकी

काहिली से यह रोग अधिक दबाता है। इस रोग के निम्न-लिखित प्रधान कारण हैं :—

१—पेड़ू के पट्ठों में स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता के कारण ढीलापन का आ जाना। स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता के कारण प्रदर-प्रकरण में बताए जा चुके हैं, उन्हें फिर से दुहराना व्यर्थ है।

२—योनि का प्रदर या अन्य किसी कारण से इतना दुर्बल हो जाना कि वह गर्भाशय को ठीक स्थान में न रख सके।

३—कमर या स्तनों को बहुत कस कर बाँधना।

४—क़ब्ज़ के कारण अँतड़ी का हरदम मल से भरा रहना और गर्भाशय पर उसका दबाव पड़ना।

५—गर्भपात।

६—मैथुन के समय अनुचित उछल-कूद या धरा-पकड़ी।

इसका सबसे पहला परिणाम तो यह होता है कि जब तक गर्भाशय स्थान में न आए, तब तक गर्भ नहीं रह सकता। इससे प्रदर की भी उत्पत्ति होती और यदि प्रदाह तथा सूजन आ जाय या रक्त इकट्ठा होकर दर्द होने लगे, तब तो बड़ी तकलीफ़ होने लगती है।

साधारण व्यायाम या परिश्रम शुरू कर देने से कुछ आराम मिल सकता है। लेकिन इसी के भरोसे न रह कर शीघ्र किसी डॉक्टर को दिखलाना चाहिए।
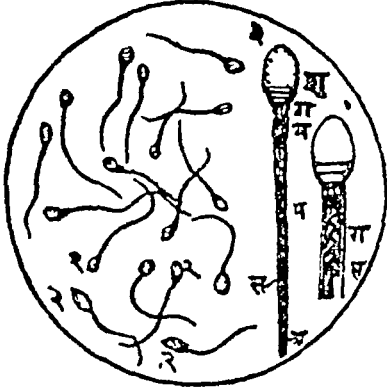
वीर्य-जन्तु
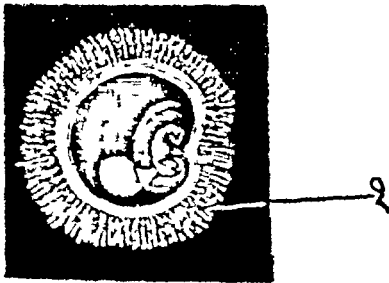
असली आकार
(प्रथम मास)

गर्भाशय में कभी-कभी गाँठ (Tumour) पड़ जाती है, लोग इसे बहुधा गर्भ समझ लेते हैं। अधिक दिन तक इलाज न होने से यह गाँठ असाध्य रोग बन जाता है और स्त्री वन्ध्या हो जाती है।

जरायु-प्रदाह

बहुत जाड़ा लगना, प्रबल ज्वर तथा पेडू में दर्द का होना इसके प्रधान लक्षण हैं। प्रायः गन्दगी से यह रोग होता है, खास कर देशी दाइयो के गन्दे हाथों की छुआछूत से यह रोग हो जाता है। बार-बार गर्भपात होने से भी यह रोग हो जाता है। गर्भाशय बढ़ कर कड़ा हो जाता है और उसमें दर्द होने लगता है, स्तन और कमर में दर्द शुरू हो जाता है, रज-स्राव मे गड़बड़ी होने लगती है और संसर्ग में भी पीड़ा बोध होती है। अगर उचित दवा न की गई तो इससे हिस्टीरिया हो जाता है। मिर्च-मसाला न खाना चाहिए, अधिक परिश्रम तथा शोक से बचना चाहिए और जननेन्द्रिय को दिन में दो-तीन बार धोकर खूब साफ करना चाहिए तथा किसी डॉक्टर की सलाह से दवा भी करनी चाहिए।

गर्भाशय में जल-सञ्चय

घाव आदि के सूखने पर कभी-कभी गर्भाशय का मुख बन्द हो जाता है। कभी किसी के गर्भाशय का मुख ज-

से ही बन्द रहता है। ऐसी दशा में भीतर विकार उत्पन्न होने लगता है। झिल्ली से निकल कर रक्त-मिश्रित जल इकट्ठा होता है, जिससे गर्भाशय बढ़ जाता है और उसमें से पीब निकलने लगती है। वैद्य या डॉक्टर लोग इस रोग को पहचानने में भी कभी-कभी भारी ग़लती करते हैं और इसकी प्रारम्भिक दशा में इसे गर्भ समझ लेते हैं। चिकित्सकों से ऐसी ग़लती हो जाने का प्रधान कारण यह है कि बहुधा स्त्रियाँ अपने जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोगों में पहले तो किसी से उसका ज़िक्र ही नहीं करतीं। जब बीमारी ज़ोर पर हो जाती है और वेदना असह्य होने लगती है, तब कहीं जाकर वे अपने घर वालों को बताती हैं। चिकित्सक के आने पर उसे वे अपने अङ्गों की ठीक से परीक्षा नहीं करने देतीं, इसलिए बहुधा अच्छे चिकित्सकों से भी ग़लती हो जाती है।

योनि-प्रदाह

इस रोग में योनि लाल हो जाती और गरमी सी मालूम पड़ती है। सूजन आ जाती है, दर्द होने लगता है। पेशाब के समय जलन होती है और खुजलाहट भी मालूम होती है। इस पर ध्यान न देने से योनि की झिल्ली में फुन्सियाँ निकल आती हैं और पीव आने लगती है तथा योनि ढीली पड़ जाती है। इसका प्रधान कारण है रक्त-दोष; लेकिन

प्रमेह की पीब लगने, अति-मैथुन, बलात्कार, प्रसव-काल में चोट या सर्दी लग जाने से भी यह रोग हो जाता है।

योनि-आक्षेप

योनि का मुख बहुत छोटा होने एवं कुमारी झिल्ली के बहुत सचेतन (Sensitive) होने से पेशियों में ऐंठन होने लगती है और सहवास में बड़ी पीड़ा होती है, यहाँ तक कि कभी-कभी बेहोशी तक आ जाती है। गरम पानी के टब मे कमर तक बैठना लाभकारी है, किन्तु डॉक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए। कुमारीच्छद में छेद न होने के कारण भी रज-स्राव रुक जाता है और बड़ी वेदना पैदा करता है। उस दशा में उसे फौरन चिरवा डालना चाहिए।

योनि में खुजली

अक्सर यह रोग गन्दगी के कारण होता है; क्योंकि इसे धोना न तो आवश्यक समझा जाता है और न इसकी स्त्रियों को ज़रा भी चिन्ता रहती है। लेकिन रक्त-दोष या छूत से भी यह रोग होता है। अधिक दिन तक टाल रखने तथा दवा न करने से योनि में दाने-से निकल आते हैं और कुछ दिनों में यही घाव बन जाते हैं, जिसमें पीव पड़ जाती है। अतएव योनि को रोज़ धोकर साफ़ रखना चाहिए तथा खुजली की हालत में उसे फिटकिरी के पानी से धोना चाहिए।

योनि का बाहर निकलना

योनि-प्रदाह या खुजली के कारण गर्भाशय के हटने से तथा गर्भपात या कष्टपूर्ण प्रसव के समय योनि बाहर निकल आती है। जिस समय योनि बाहर आ जाय, उस समय बैठ जाना चाहिए और थोड़ी देर बैठने के बाद तकिए के सहारे आहिस्ता से लेट रहना चाहिए। दस-पन्द्रह मिनट तक शराब मिले पानी में बैठने से भी लाभ होता है।

डिम्ब-कोष के रोग

इस रोग में सदैव डॉक्टर या वैद्य से सलाह लेनी चाहिए। साधारण मनुष्य इसे न तो पहचान ही सकता है और न कुछ इलाज कर सकता है। अनाड़ी की तरह काम करने पर हानि होने की सम्भावना है।

[illegible]न-दोष

यह रोग आ [illegible] बढ़ रहा है,
किन्तु स्त्रियों की [illegible] सताता है,
इस [illegible] में
करे [illegible]
कार [illegible]

मजाक [illegible]

बहुधा ऐसा होता है कि विवाह तो हो गया है, लेकिन गौना नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में यह ग़ैर-मुमकिन है कि लड़कियों के मन में काम-सञ्चार न हो। धीरे-धीरे उनकी यह भावना प्रबल हो जाती है। विधवाओं के लिए तो ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है। दिन को यह प्रबल उत्तेजना रात को स्वप्न में सफल होती है और वे स्खलित हो पड़ती हैं। लेकिन बहुत सी लड़कियों को उपर्युक्त स्थिति में पड़ कर हस्त-मैथुन (Masturbation) की आदत लग जाती है। कोमल मुख को यदि आप बर्तन साफ करने के ब्रश से रगड़ें तो क्या दशा होगी? मलमल को यदि आप सूजे से सीना चाहें तो क्या होगा? ठीक वही दशा जननेन्द्रियों की हस्त-मैथुन से होती है। इससे स्नायु में दुर्बलता आती है और स्वप्न-दोष निश्चय ही होने लगता है। स्वप्न में सम्भोग का आभास होता है, स्नायु-मण्डल उत्तेजित होता है, बिजली दौड़ती है, स्खलन होता है; किन्तु दूसरी ओर पुरुष के उत्तेजित स्नायु तथा विद्युत का सङ्घर्ष न मिलने के कारण इस स्खलन से हानि ही हानि होती है—लाभ कुछ भी नहीं होता।

आपने कभी देखा होगा, ज़ोर से आते हुए गेंद पर डण्डा चलाया या पैर मारा, लेकिन गेंद ज़ोर से निकल गया और आपके डण्डे या पैर से उसकी भेंट न हुई। ऐसी दशा में हाथ या पैर में ज़रूर मोच आ जाती है।

उत्तेजित शक्ति की मुलाक़ात जब तक किसी विपरीत उत्ते-
जित शक्ति से नहीं होती, तब तक उसकी शान्ति नहीं
होती। वार करने वाले को उलटे हानि होती है। ठीक उसी
प्रकार स्वप्न-संयोग में बार-बार झटके खाकर स्नायु-मण्डल
निर्बल होने लगता है और स्वास्थ्य भी दिन-ब-दिन बिगड़ने
लगता है।

इससे एक हानि और होती है। जो योनि कोमल पुरुष-
जननेन्द्रिय के लिए बनी है, वह कठिन चीज़ से रगड़ खाते-
खाते कुछ दिनों में भोथरी और चेतना-शून्य हो जाती है और
उसे पुरुष-सहवास में आनन्द नहीं आता।

कामोन्माद

इस रोग के वर्णन करने के पहले यह समझाना आव-
श्यक है कि उन्माद है क्या? तथा उन्माद में होता क्या है?

यदि किसी पागल को आपने ग़ौर से देखा हो तो आपको
विदित होगा कि पागल को चौबीसों घण्टे एक ही धुन
रहती है, उसे और बातो का ज्ञान नहीं रहता। उसे एक
ही चीज़ दिखाई देती है, वही सुनाई देती और उस खास
चीज़ के सिवाय उसके दिमाग़ में दूसरी कोई चीज़ आती
ही नहीं।

कारण ढूँढ़ने पर आपको पता लगेगा कि सारी मान-
शक्ति तथा प्रवृत्तियों के एक ख़ास विषय, व्यक्ति या

चीज पर इस प्रकार एकत्रित हो जाने से कि फिर वे वहाँ से हट न सकें, व्यक्ति पागल हो जाता है।

कामोन्माद में भी यही बात होती है। बढ़ता हुआ व्यभिचार या अतिमैथुन ही इसका प्रधान कारण है। जब सब तरफ से हट कर किसी की सारी मानसिक शक्तियाँ कामोपभोग या सहवास मे केन्द्रीभूत हो जाती हैं, तब व्यक्ति कामान्ध हो जाता है। रात-दिन उसे सम्भोग की ही लालसा लगी रहती है। इस कार्य से उसे सन्तोष कभी होता ही नहीं। यही तबीयत चाहती है कि फिर सम्भोग करें। रात-दिन सम्भोग करते ही रह जायँ।

कुछ डॉक्टरो का मत है कि योनि में एक प्रकार के कीटाणु घुस जाने से उसमें दिन-रात उत्तेजना होने लगती है, इसलिए मनुष्य कामान्ध हो जाता है। यह रोग पुरुष तथा स्त्री दोनो को हो सकता है।

पुंसत्वहीनता और वन्ध्यापन

बहुत से लोगों का यह ख्याल है कि केवल पुरुष ही पुंसत्वहीन होते हैं तथा केवल स्त्रियाँ ही वन्ध्या होती हैं, यह बात गलत है। पुंसत्वहीनता का मतलब है संसर्ग की क्षमता का अभाव, याने ऐसी जननेन्द्रियाँ जिनमे सम्भोग का कार्य न हो सके। इस परिभाषा के मुताबिक़ कई स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी, जिनकी जननेन्द्रिय सम्भोग करने के योग्य

नहीं है, जिनमें पुरुषेन्द्रिय प्रवेश कर ही नहीं सकता। इस कोटि में वे स्त्रियाँ भी आ जाती हैं, जिनके मन में इस कार्य के प्रति पूर्ण विराग हो, याने जिन्हें कभी सम्भोग की इच्छा ही न हो या जिनको सम्भोग करने पर आनन्द न आता हो और स्नायु सम्भोग के समय उत्तेजित न होते हों।

वन्ध्यापन का अर्थ है पुरुष के वीर्य एवं स्त्री के रज में जीवन-शक्ति का अभाव एवं पुरुष-वीर्य को ग्रहण करने की क्षमता का न होना। किन्तु पुंसत्वहीन नारियों की संख्या बहुत कम है। कुमारी-परिच्छद का अत्यधिक कड़ा होना भी इसका कारण होता है। किसी-किसी स्त्री को योनि होती ही नहीं, किसी को होती तो है, किन्तु वह इतनी छोटी होती है कि पुरुषेन्द्रिय का प्रवेश उसमें नहीं हो सकता। किसी को पहले तो ठीक रहता है, लेकिन बाद में चोट लगने, फोड़ा आदि होने या सूजन के कारण मार्ग बन्द हो जाता है और दीवारें आपस में जुट जाती हैं। ऐसी स्त्री वन्ध्या नहीं है, लेकिन सम्भोग की क्षमता से हीन है।

इन बातों को न जानने से बहुधा वन्ध्या स्त्रियाँ नाना प्रकार के झाड़-फूँक में लगी रहती हैं और फकीरों तथा साधुओं के पीछे पागल बनी घूमा करती हैं। कभी-कभी उन्हें भारी धोखा होता है। गँवारों के हाथ से दवाई लेने पर लाभ के बदले बहुधा हानि हो जाती है, और साधुओं
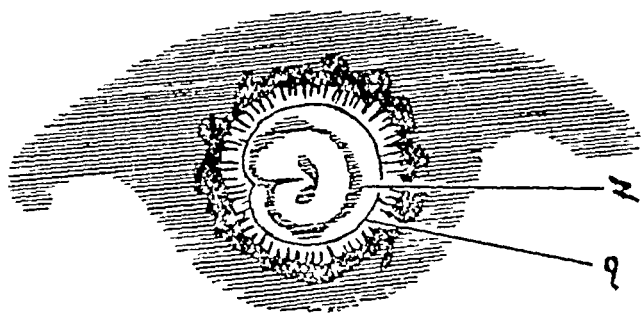
(बढ़ाया हुआ आकार)

वृद्धि-क्रम—दूसरे सप्ताह की समाप्ति पर
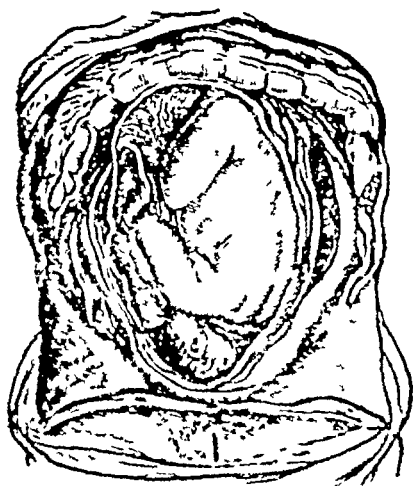
(घटाया हुआ आकार)

वृद्धि-क्रम—आठवां महीना

तथा फ़क़ीरों द्वारा तो बहुधा कुल बधुओं के पवित्र सतीत्व में कलङ्क लग जाया करता है।

इसलिए उन्हें बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। गर्भ रहने की सबसे उपयुक्त अवस्था है उन्नीस से छब्बीस वर्ष तक। इसी अवस्था में अधिकांश स्त्रियों को बच्चा होता है। यदि इसके पूर्व ही विवाह हो गया हो तो इस अवस्था तक राह देखनी चाहिए। जब इस अवस्था में आकर भी बालक न हो तब किसी कुशल चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। वयस्क स्त्रियों को भी पति से मिलते ही गर्भ नहीं रह जाता, अक्सर विवाह के दूसरे या तीसरे वर्ष में स्त्रियों को गर्भ रहता है। यदि उन्नीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी, तीन वर्ष तक पति-सहवास में रहने के बाद गर्भ न रहे तो इसका कारण खोजना चाहिए। इस सम्बन्ध में लोग अक्सर यह ग़लती करते हैं कि वे स्त्री को ही वन्ध्या समझ लेते हैं। नहीं; पुरुष के वीर्य की भी परीक्षा करनी चाहिए। शायद उसी का वीर्य जीवनशक्ति-हीन हो, जिससे स्त्री के सब प्रकार योग्य होते हुए भी गर्भ-सञ्चार न होता हो।

आम तौर पर नीचे लिखे कारणों से गर्भ रहने में रुकावट पैदा होती है :—

१—अधिक काम, स्वास्थ्यकर भोजन की कमी या किसी रोग के कारण वीर्य या रज में जीवन-शक्ति की हीनता।

२—दीर्घकालीन तथा प्रबल उदासीन भाव या उत्ते-

जना—चिन्ता, भय, मानसिक वेदना, सन्देह, ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिहिंसा आदि का गर्भ-सञ्चार पर बड़ा असर पड़ता है। मासिक स्राव भी इनसे बिगड़ जाता है।

३—कुमारीच्छद में छिद्र का अभाव, जननेन्द्रिय के किसी अंश का सर्वथा अभाव या अविकसित रहना।

४—योनि का ऐसा रहना कि या तो पुरुष-चिह्न का प्रवेश ही न हो सके या हो भी तो वह अपना वीर्य गर्भाशय तक न पहुँचा सकता हो।

५—गर्भाशय का स्थान से हट जाना या उलट जाना।

६—गर्भाशय की दीवार का ऐसा होना या उस दीवार में किसी ऐसे द्रव्य का पैदा होना या पहुँचना कि उसमें डिम्ब वीर्य से गर्भित होने के बाद फँस या अटक तथा चिपक न सके।

७—डिम्ब का गर्भाशय में रज-स्राव से पूर्व ही पहुँचना जिससे वह रज-स्राव के साथ बह जाया करे।

८—गर्भाशय में किसी ऐसे द्रव्य का सञ्चय होना जिससे वीर्य वहाँ पहुँचते ही निर्जीव हो जाय और डिम्ब से मिल न सके।

९—बहुधा लोग कोकशास्त्र के आसनों के फेर में पड़ जाते हैं। इससे उन्हें बचना चाहिए। सम्भोग पुरुष को ही ऊपर रह कर करना चाहिए। स्त्री को ऊपर रखने से सन्तान या तो होती ही नहीं, यदि होती है तो नपुंसक।

१०—सम्भोग में स्त्री को जितना अधिक आनन्द आएगा, गर्भ की सम्भावना उतनी ही अधिक रहेगी।

११—प्रदरादि रोग के रहने तक गर्भ रहना कठिन है, और हानिकर भी है।

१२—मुटाई के कारण—चर्बी या बादी के कारण—पेड़ू मोटा हो जाने पर भी गर्भ नहीं रहता। यदि रहा भी तो गिर जाता है।

१३—गर्मी, प्रमेह आदि बीमारी के होने पर गर्भ नहीं रहता। यदि रहा तो असमय में ही गिर जाता है। यदि इत्तिफ़ाक़ से प्रसव हुआ तो बालक उसी रोग से या पेट के अन्दर से ही रोगी आता है या पैदा होने के कुछ ही दिनों बाद उस रोग से आक्रान्त होकर मृत्यु के मुख में पतित हो जाता है।

छठा परिच्छेद

पुरुष-जननेन्द्रिय तथा उसके रोग

रुष की जननेन्द्रियों का वर्णन करने के पहले मूत्राशय का वर्णन करना जरूरी है, क्योंकि मूत्र तथा वीर्य दोनों का मार्ग पुरुष की जननेन्द्रिय में एक ही है।

इस स्थान के अङ्ग इस प्रकार हैं:—

(१) दो वृक या गुर्दे (२) दो मूत्र-प्रणाली (३) एक मूत्राशय (४) एक मूत्र-मार्ग।

गुर्दा

गुर्दे का काम है मूत्र बनाना। हमारे शरीर में दो गुर्दे हैं—एक दाहिनी ओर तथा दूसरा बाईं ओर। ये इन्द्रियाँ उदर में उसकी पिछली दीवार से लगी हुई रीढ़ की दाहिनी तथा बाईं ओर रहती हैं। सामने का

गाल रहता है। उसकी लम्बाई चार इञ्च और चौड़ाई ाई इञ्च तथा मुटाई एक इञ्च होती है। रङ्ग उसका ागनी होता है।

जिस स्थान पर रीढ़ की ओर के किनारे में गड्ढा होता है, वहीं से गुर्दे की धमनी भीतर घुसती है और शिरा बाहर आता है। वहीं मूत्र-प्रणाली का फूला हुआ प्रारम्भिक अंश गुर्दे से जुड़ा रहता है। गुर्दे के ऊपर एक झिल्ली चढ़ी रहती है, जिसे वृक-कोष कहते हैं।

गुर्दे का मध्य-भाग कई मीनार-जैसे भागो में बँटा रहता है। इन मीनारों के शिखर मूत्र-प्रणाली की ओर रहते हैं और उनकी नलियाँ पृष्ठों की ओर। इन शिखरों पर अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, ये छिद्र गुर्दे की बड़ी-बड़ी नलियो के मुख हैं।

वृक

वृक वास्तव में अनेक पतली नलियो का समूह है। ये नलियाँ लम्बी तो बहुत होती हैं, परन्तु चौड़ी बहुत कम। मीनारों के शिखरो में जो छिद्र रहते हैं, मूत्र इन्हीं छिद्र से निकल कर मूत्र-प्रणाली में आता है।

वृकों में धमनियो द्वारा जो रक्त आता है, उसी से वृक मूत्र बना लेता है। यह मूत्र शिखर-छिद्रो से झर कर मूत्र-प्रणाली से होता हुआ मूत्राशय में आता है। इसी मूत्र-

प्रणाली में कभी-कभी पथरी अटक जाने से असह्य पीड़ा होती है।

मूत्राशय

इसमें मूत्र आकर इकट्ठा होता है। यह अङ्ग नितम्बा- स्थियों के पीछे रहता है। पुरुषों को उसके पीछे दो शुक्रा- शय रहते हैं, मलाशय इसके पीछे होता है। स्त्रियों को मूत्राशय के पीछे गर्भाशय और उसके पीछे मलाशय रहता है। मूत्र इकट्ठा होने पर मूत्राशय के द्वार पर दबाव पड़ता है और हमें पेशाब लगता है। हमारे जोर करने पर इसका द्वार खुल जाता है और मूत्र-मार्ग द्वारा होता हुआ बाहर चला जाता है।

इतना समझ लेने पर अब हमें जननेन्द्रिय की ओर बढ़ना चाहिए।

अण्ड

जिस प्रकार गुर्दे में धमनियों द्वारा रक्त पहुँच कर मूत्र बनता है, उसी प्रकार अण्ड में जाकर वीर्य बनता है या यों कहें कि जिस प्रकार गुर्दा रक्त का अम्लयुक्त भाग ले लेता है, उसी प्रकार अण्ड भी खून से वीर्य खींच लेते हैं। ये पुरुषों को रहते हैं, स्त्रियों को नहीं। ये दो होते हैं और एक थैले में मढ़े रहते हैं, जिसे अण्ड-कोष कहते हैं। शुक्र पहले शुक्र-प्रणाली (मूत्र-प्रणाली की तरह एक नली) द्वारा

होता हुआ ऊपर चढ़ता है और शुक्राशय में जाकर इकट्ठा होता है। मैथुन के समय या किसी अस्वाभाविक रूप से उत्तेजना पाने पर वह मूत्र-मार्ग या नली से होकर बाहर निकलता है।

जननेन्द्रिय

पुरुष-जननेन्द्रिय मूत्र के लिए एक आवश्यक अङ्ग है। इसका एक प्रधान कार्य है सम्भोग करना तथा वीर्य को योनि से होकर गर्भाशय तक पहुँचाना। यह ऐसी पतली नसों से बना है, जिसमें बहुत जल्द खून उतर आता है, जिससे वह फूल उठता और कड़ा हो जाता है। इसके इस कार्य के लिए तथा इसकी उत्तेजना के लिए खून स्नायु की प्रणाली से मिलता है। यद्यपि बाह्य कारणों से भी यह तन सकता है, किन्तु अधिकांश मे उसको उत्तेजना देना हमारी इच्छा-शक्ति या मनोबल पर निर्भर है; क्योंकि हमारे स्नायु की प्रणाली पर केवल इच्छा-शक्ति का ही असर हुआ करता है। ब्रह्मचर्य-प्रकरण में हम जो बातें लिख चुके हैं, पाठक यदि उस पर ध्यान देंगे तो उन्हें पता चलेगा कि अपने मनोबल द्वारा किस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह किया जा सकता है।

इस शरीर-रचना पर ध्यान देने से एक बात का पता और चलेगा कि मन में उत्तेजना आने से इन्द्रियाँ अवश्य

उत्तेजित होंगी और वीर्य को खींच कर बाहर लाने की कोशिश करेंगी। इस प्रकार कई बार होते रहने से कुछ वीर्य का बाहर निकलना अत्यावश्यक हो जाता है और स्वाभाविक मार्ग न रहने पर वीर्य स्वप्न की दशा में या मूत्र बाहर निकलते समय बाहर हो जाता है। अस्तु, वीर्य-रक्षा का सबसे सफल तथा उत्तम मार्ग है—मानसिक पवित्रता।

मनुष्य जिस समय यौवन को प्राप्त होने लगता है, उस समय कभी-कभी अज्ञात भाव से उसकी इन्द्रिय उत्तेजित हो पड़ती है और सम्भोग की लालसा इतनी प्रबल हो जाती है कि उसका रोकना कठिन हो जाता है और शान्ति के लिए उसका मन पागल हो उठता है।

इस समय युवक कई बातों से अनभिज्ञ रहता है और उसमें इतनी हिम्मत या तमीज़ नहीं रहती कि वह अपनी शान्ति के लिए किसी स्त्री की तलाश करने में समर्थ हो सके। ऐसी दशा में यदि उसे इस बात का पता चल जाय कि अपने हाथ से ही—बिना किसी की सहायता के, बिना पकड़े जाने या लज्जित होने के भय के—बड़ी सहूलियत से वह अपनी गरमी उतार सकता है या शान्त कर सकता है, तो वह बड़ी जल्दी उस उपाय को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जायगा। यही कारण है कि आज न जाने कितने युवक इस दुर्व्यसन के पञ्जे में फँस गए हैं। केवल युवक ही नहीं, युवतियाँ भी हस्त-मैथुन के जाल में फँस जाती हैं
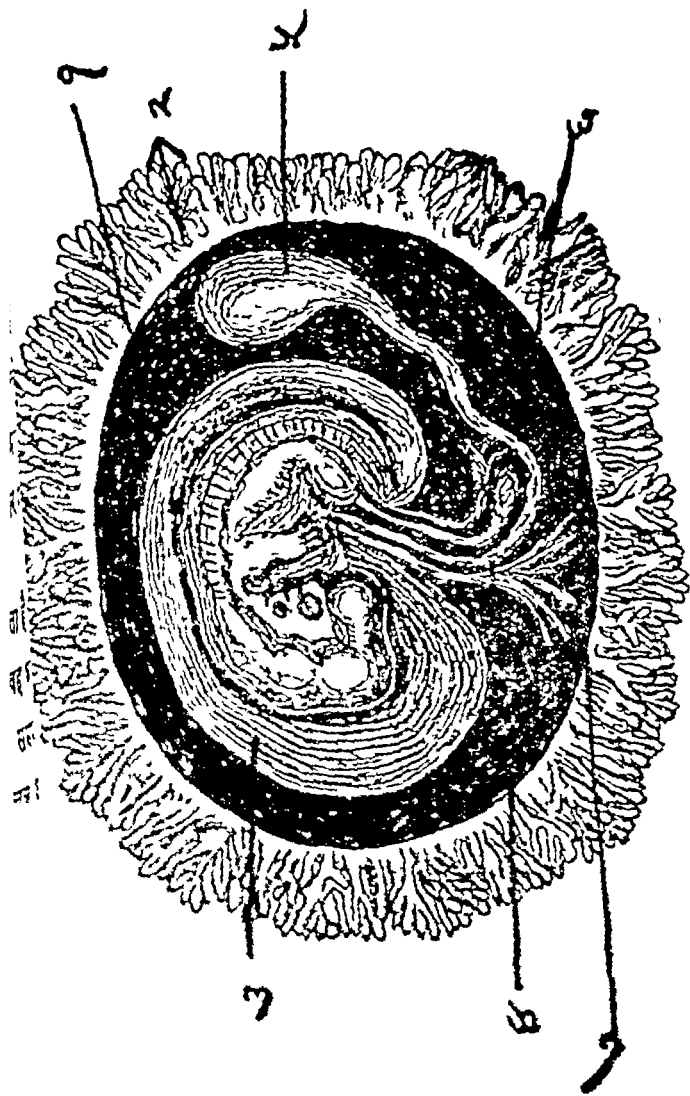
छः सप्ताह का गर्भ

१ = भ्रूणबाह्यावरण ; २ = अङ्कुर ; ३ = अन्तरावरण ; ४ = नाल ; ५ = पोषक पदार्थ की थैली ; ६ = नाभिपुट (अन्नपुट) ; ७ = कमल के बनने का स्थान ।

और बड़ी हानि उठाती हैं। किन्तु स्त्रियों की अपेक्षा यह दुर्व्यसन पुरुषों में बहुत अधिक है।

इससे सबसे बड़ी हानि तो यह होती है कि इसमें किसी प्रकार की रुकावट नही रहती, दिनभर में कई बार यह किया जा सकता है; क्योंकि किसी प्रकार के बाह्य साधन एकत्रित करने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं रहती। इसके अलावा स्त्री-संसर्ग मे मन तथा इन्द्रिय के तैयार होने की आवश्यकता होती है; क्योंकि जब तक पुरुष-जननेन्द्रिय उत्तेजित होकर कड़ा न हो जाय, तब तक स्त्री-सम्भोग प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। इन्द्रिय अपनी शक्ति के अनुसार ही कड़ी होगी। दिन में दस बार, जब आप चाहें, तभी आपकी इन्द्रिय स्त्री-सम्भोग के लिए तैयार नही हो सकती; किन्तु हस्त-मैथुन में इन्द्रिय के इस प्रकार कड़ा होने की आवश्यकता नहीं होती। आप उसे हिलाना-डुलाना प्रारम्भ कर देते हैं और थोड़ी देर के बाद देखते हैं कि वह आप से आप उत्तेजित हो गया है। कभी-कभी बिना पूर्ण उत्तेजना को प्राप्त हुए भी स्खलन हो जाता है और इससे आपकी दिली मन्शा पूरी हो जाती है।

इस प्रकार जरूरत से ज्यादा जोर पड़ते-पड़ते नसें एकदम ढीली पड़ जाती हैं, और यदि आदत न छूटी तो अन्त में व्यक्ति पुंसत्वहीन हो जाता है। रोगी की स्मरण-शक्ति क्षीण होने लगती है और नेत्रों की ज्योति भी मन्द पड़ जाती है। मन्दाग्नि की शिकायत भी होने लगती है।

इस रोग में सबसे बुरी बात तो यह होती है कि जब तक पूर्ण सर्वनाश न हो जाय, तब तक मनुष्य चेतता नहीं। स्वाभाविक स्त्री-संयोग में वीर्यपात से जो शक्ति का ह्रास होता है, वह पारस्परिक सङ्घर्ष से पुनः प्राप्त हो जाता है; किन्तु इस क्रिया में तो केवल नुकसान ही हाथ लगता है, जैसा कि स्त्रियों के सम्बन्ध में पिछले परिच्छेद मे बता आए हैं।

जो लोग किशोरावस्था में इस दुर्व्यसन मे फँस जाते हैं, उन्हे युवावस्था में प्रकृति-सुख से वञ्चित रहना पड़ता है; क्योंकि उस समय तक यदि वे पूर्णतया पुंसत्वहीन नहीं हो गए रहते तो उनकी नसें इतनी कमज़ोर तो अवश्य हो गई रहती हैं कि उनमें पूरी उत्तेजना नहीं आती तथा उनके संसर्ग से स्त्री को पूरा क्या, किञ्चित् आनन्द भी नहीं होता। इस आदत में फँसे हुए लोगों को स्त्री के सम्मुख बहुत लज्जित होना पड़ता है। ऐसे लोगों का दाम्पत्य जीवन बहुत ही निराशाजनक एवं दयनीय होता है।

खून की गति मन्द पड़ जाने से स्वास्थ्य तो ख़राब होता ही है, साथ ही स्त्री-संयोग के समय जननेन्द्रिय उत्तेजित होने के बाद कुछ ही देर में, समय के पूर्व ही, शिथिल हो जाती है। उत्तेजित अवस्था में भी ढीलापन रहता है। पेशाब बार-बार आने लगता है तथा पेशाब और पाख़ाने के साथ ज़ोर करने पर वीर्य निकल पड़ता है। युवावस्था

में ही बुढ़ापा आ घेरता है और जीवन दूभर हो उठता है। रोगी का स्वभाव इतना सङ्कोचशील तथा भीरु हो जाता है कि वह किसी से आँख तक नहीं मिला सकता।

स्वप्न-दोष

आजकल डॉक्टरों का मत है कि जिन लोगों को वयस्क होने पर भी स्त्री-प्रसङ्ग करने का अवसर नहीं मिलता, उनके लिए एक हद तक स्वप्न-दोष होना स्वाभाविक है। डॉक्टरों के मतानुसार मास में दो बार तक स्वप्न-दोष होना अधिक हानिकर नहीं होता।

आजकल लोगों का खान-पान, विचार और रहन-सहन जिस प्रकार का है या जिस प्रकार के कामोत्तेजक, अश्लील वातावरण में उन्हें रहना पड़ता है, उसे देखते हुए इस बात की उम्मीद करना कि स्त्री-प्रसङ्ग का अवसर न मिलने पर भी उन्हें मुतलक़ स्वप्न-दोष न हो, भ्रम है। इस बात को ध्यान में रखने से डॉक्टरों का उपर्युक्त कथन किसी क़दर ठीक ही मालूम होता है; लेकिन फिर भी यह न भूलना चाहिए कि यह अवस्था सर्वथा स्वाभाविक (Normal) या स्वास्थ्य-कर नहीं है। जैसा कि पिछले परिच्छेद में लिख आए हैं, इसका प्रधान कारण मानसिक उत्तेजना है। उत्तेजना के स्वाभाविक रीति से सफल न होने पर हमारा दुर्बल स्नायु स्वप्न में शान्त होने की कोशिश करता है, जब कि इन्द्रियों

पर मन का दबाव कम हो गया रहता है। इसे दूर करने के लिए नाना प्रकार की दवाइयों के विज्ञापन गजटों में तथा हैण्डबिल के रूप में निकला करते हैं। लेकिन जब तक मन पर क़ब्ज़ा न हो, स्नायु स्वस्थ न हो तथा जब तक मानसिक पवित्रता न आ जाय, तब तक इस रोग का दूर होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। अविवाहित पुरुषों का यह रोग विवाह होने पर शीघ्र ही दूर हो जाता है या यों कहा जाय कि वीर्यस्राव का स्वाभाविक मार्ग मिल जाने के कारण यह रोग बन्द हो जाता है।

लेकिन अधिक बढ़ जाने पर यह रोग हानिकारक हो उठता है; आखिर रोग ही तो ठहरा! बहुत अधिक समय उत्तेजना में बिताने, गन्दे वातावरण तथा भद्दे हँसी-मज़ाक़ में लगे रहने और अश्लील साहित्य के अवलोकन से यह रोग भीषण हो उठता है और एक रात में तीन-तीन बार तक स्खलन होने लगता है।

रोग बढ़ जाने पर मानसिक पवित्रता के साथ साथ रात को कम भोजन करने तथा कोठे को हलका रखने से लाभ होता है।

यदि उचित व्यवस्था द्वारा इस रोग को दबाया न जाय तो फिर दिन को बैठे बैठे ज़रा सी उत्तेजना से या पेशाब तथा पाख़ाने के वक्त, वीर्यस्राव होने लगता है, धोती में दाग पड़ने लगते हैं या प्रमेह की बीमारी हो जाती है।

यह रोग आगे चल कर आदमी को नपुंसक बना देता है या शीघ्रपतन की बीमारी पैदा करता है। ऐसी दशा में किसी योग्य चिकित्सक से दवा करानी चाहिए। विज्ञापन की दवाइयों से बहुधा लाभ के स्थान पर हानि होती है और रोग दूर होने के बजाय एक साल में पुंसत्व खोने वाला व्यक्ति तीन मास में ही एकदम शक्तिहीन हो जाता है।

शीघ्रपतन को दूर करने वाली जो दवाइयाँ बिका करती हैं, उन्हें बहुत सोच-समझ कर काम में लाना चाहिए।

मनुष्य में बहुत सी सुपुप्त (Latent) शक्तियाँ मौजूद रहती हैं। मनुष्य जब स्वभाव से विपरीत या अधिक शक्ति काम में लाने लगता है, तब वह इस सुप्त-कोष से खर्च करता है। ये दवाइयाँ इसी कोष से अनाप-शनाप, बेएहते-याती से खर्च करती हैं, जिनसे हमें क्षणिक आराम तो मिल जाता है, लेकिन हमारे ये शक्ति-भण्डार अक्षय तो हैं नहीं, शीघ्र ही हमारा कोष रिक्त हो जाता है और हम एक-दम बेकाम हो जाते हैं।

दवा का सिद्धान्त है नई शक्ति उत्पन्न करना। इसलिए दवा वही अच्छी है, जो हमारे भोजन आदि से इस तरह नई शक्ति सञ्चय करे कि जो पदार्थ हमारे शरीर की साधारण खपत से बच कर रह जाते हैं, उन्हीं को काम में लाए और ताक़त पैदा करे—हमारे सुपुप्त-भण्डार को न छुए। ऐसी दवा से हमें लाभ हो सकता है।

विचित्र रोग

आजकल नवयुवकों में एक नया रोग बढ़ रहा है, वह है लड़कों के साथ व्यभिचार। मेरे एक विद्यार्थी-मित्र तो, जो खुद इस फ़न के सक्रिय (Active) भाग लेने वालों में से हैं, यहाँ तक कहने के लिए तैयार हैं कि यह कार्य ईसवी सदी के प्रारम्भ से ही जारी है। खैर, कुछ भी हो; यह रोग या नई संस्कृति (Culture) आजकल जोरों पर है। दूसरे देशों में तो यह बात शायद इतनी नहीं सुनने में आती, लेकिन इस देश के कई बड़े शहरों में तो वेश्याओं की तरह इसके लिए भी दुकानें हैं, जहाँ सर्व-साधारण माक़ूल फ़ीस देकर जा सकते हैं। स्कूल तथा कॉलेज के विद्यार्थियों में यह रोग बड़ी भयानक रीति से फैल रहा है। लेखक को कॉलेज-विद्यार्थियो के साथ रहने का बहुत अवसर मिला है और उनके बहुत नज़दीक की जो मित्र-मण्डली होती है उसमें भी जाने का अवसर आया है। लेखक के विचार में स्कूल तथा कॉलेज के विद्यार्थियों में ५० प्रतिशत लोग इस रोग से आक्रान्त हैं। कॉलेज तथा स्कूल का वातावरण ही ऐसा हो गया है कि वहाँ पहुँच कर अपने को रोकना कठिन हो जाता है। अपने जिस मित्र का मैंने ज़िक्र किया है, वे । लेज आने के पूर्व बड़ी सात्विक प्रवृत्ति के आदमी थे। देश की हीन दशा पर ध्यान देकर उन्होंने यह तय कर रक्खा था कि वे अब अविवाहित ही रहेंगे; लेकिन कॉलेज

में भर्ती होने के एक वर्ष वाद ही उनकी दशा में कितना परिवर्त्तन हो गया है, इसका वर्णन उन्हीं के मुँह से सुन लीजिए। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा :—

"भाई, अव अधिक दिनों तक अपने को रोक रखना कठिन है। यहाँ का वातावरण ही ऐसा है कि तबीयत मचल उठती है। इसके अलावा इससे कई फ़ायदे भी हैं। अगर इत्तिफाक़ से कोई धनी सन्तान फँस गया तो पाँचों उँगली घी में समझो। खाने को माल मिले और भोग के लिए......! व्याकुल चित्त को इससे वहुत शान्ति मिलती है। लोग जिस समय अपना अनुभव वताने लगते हैं, मुँह से पानी निकल पड़ता है। साथ में लेकर पढ़ने से वड़ा आनन्द आता है। विजली मिलती रहती है और पढ़ने में खूब मन लगता है। मेरी मानसिक अवस्था तो अव ऐसी हो गई है कि स्त्रियों की तरफ देखने की तवीयत नहीं होती। उन पर तो मैं माता का सा भाव रखता हूँ। वस, लड़कों को देख कर मैं वेक़ावू हो जाता हूँ।"

इस विषय पर अभी वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं गया है। वल्कि यों कहा जाय कि इस विषय पर अभी तक किसी ने लेखनी ही नहीं उठाई है। मैंने वहुत चाहा कि इस विषय पर वैज्ञानिक रायों को पढ़ कर इसका कुछ वैज्ञानिक विश्लेषण करूँ, लेकिन मुझे इस विषय पर कोई पुस्तक न मिली।

लेकिन अब अधिक दिनों तक इस विषय को अश्लील समझ कर ज़बान बन्द रखने से काम न चलेगा—चुप रहने से धीरे-धीरे यह कीड़ा समाज की जड़ खोद डालेगा और समाज के अधिकांश पुरुष ज़नाने बन जायँगे। शिक्षा-विभाग के अधिकारियो को भी इस विषय में सतर्क हो जाना चाहिए; क्योंकि इस रोग का निवास अधिकांश में स्कूल तथा कॉलेज के छात्रावास ही हैं। माता-पिताओं को, ख़ास कर उन माता-पिताओं को, जिनकी सन्तानें भाग्य-वश ख़ूबसूरत हैं, खूब सतर्क रहना चाहिए; क्योंकि बहुत छोटी अवस्था से ही उनको बिगाड़ने की कोशिश होने लगती है। स्कूल के शिक्षक तक इसमें भाग लेने लग गए हैं। उनके कारण या उनके दबाव में आकर लड़के बहुत जल्द बिगड़ जाते हैं।

इस कार्य से दुगुनी ही नहीं, बल्कि चौगुनी हानि होती है। प्रत्येक कार्य के लिए दो पुरुष की आवश्यकता पड़ती है और प्रत्येक कार्य में दुगुनी हानि होती है। सक्रिय (Active) भाग लेने वाले को तो हानि होती ही है, क्योकि अस्वाभाविक तरीक़ा होने के कारण स्नायु जल्दी ढीले पड़ जाते हैं। इसके अलावा स्त्री की ओर से उसका मन फिर जाता है, और इस प्रकार हमारे समाज मे एक पुरुष की कमी हो जाती है। अब निष्क्रिय (Passive) रहने वाले को देखिए, उसका पुंसत्व चला जाता है और उसमे स्त्री के हाव-भाव

आ जाते हैं। वह हमारे समाज के किसी काम का नहीं रहता।

हो सकता है कि ये दोनों सर्वथा नपुंसक न हों, लेकिन यह तो निश्चित बात है कि ये लोग किसी भी स्त्री को पूर्ण सन्तोष देने में असमर्थ रहते है। याने की दो पुरुषों के साथ दो स्त्रियो का जीवन भी खराब हो जाता है। इस प्रकार एक कार्य में चौगुनी हानि हुई। लेकिन बारीकी से हिसाब लगाने पर और भी हानि दिखाई देगी। बहुत सम्भव है कि इन असन्तुष्ट स्त्रियों का चाल-चलन बिगड़ जाय। कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि निष्क्रिय व्यक्तियो का विवाह हो गया है, लेकिन उनसे तो कुछ करते-धरते बनता नहीं, ऐसी दशा में वे खुद अपनी स्त्रियों से अपने सक्रिय मित्रों की जान-पहचान कराते देखे गए हैं। अपने जिस मित्र का मैंने ऊपर ज़िक्र किया है, उनके साथ भी एक नहीं, दो-तीन बार ऐसी घटनाएँ हो चुकी है। अस्तु—

सङ्कोच छोड़ कर हमें इस विषय मे लोगों को सचेत करना चाहिए और देश के पुरुपत्व को अस्वाभाविक, मातृत्व-हीन स्त्रीत्व मे पतित होने से बचाना चाहिए।

लेकिन अब अधिक दिनों तक इस विषय को अश्लील समझ कर ज़बान बन्द रखने से काम न चलेगा—चुप रहने से धीरे-धीरे यह कीड़ा समाज की जड़ खोद डालेगा और समाज के अधिकांश पुरुष ज़नाने बन जायँगे। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को भी इस विषय में सतर्क हो जाना चाहिए; क्योंकि इस रोग का निवास अधिकांश में स्कूल तथा कॉलेज के छात्रावास ही हैं। माता-पिताओं को, ख़ास कर उन माता-पिताओं को, जिनकी सन्तानें भाग्य-वश ख़ूबसूरत हैं, ख़ूब सतर्क रहना चाहिए; क्योंकि बहुत छोटी अवस्था से ही उनको बिगाड़ने की कोशिश होने लगती है। स्कूल के शिक्षक तक इसमें भाग लेने लग गए हैं। उनके कारण या उनके दबाव में आकर लड़के बहुत जल्द बिगड़ जाते हैं।

इस कार्य से दुगुनी ही नहीं, बल्कि चौगुनी हानि होती है। प्रत्येक कार्य के लिए दो पुरुष की आवश्यकता पड़ती है और प्रत्येक कार्य में दुगुनी हानि होती है। सक्रिय (Active) भाग लेने वाले को तो हानि होती ही है, क्योंकि अस्वाभाविक तरीक़ा होने के कारण स्नायु जल्दी ढीले पड़ जाते हैं। इसके अलावा स्त्री की ओर से उसका मन फिर जाता है, और इस प्रकार हमारे समाज में एक पुरुष की कमी हो जाती है। अब निष्क्रिय (Passive) रहने वाले को देखिए, उसका पुंसत्व चला जाता है और उसमें स्त्री के हाव-भाव

आ जाते हैं। वह हमारे समाज के किसी काम का नहीं रहता।

हो सकता है कि ये दोनों सर्वथा नपुंसक न हों, लेकिन यह तो निश्चित बात है कि ये लोग किसी भी स्त्री को पूर्ण सन्तोष देने में असमर्थ रहते हैं। याने फी दो पुरुषों के साथ दो स्त्रियों का जीवन भी खराब हो जाता है। इस प्रकार एक कार्य में चौगुनी हानि हुई। लेकिन बारीकी से हिसाब लगाने पर और भी हानि दिखाई देगी। बहुत सम्भव है कि इन असन्तुष्ट स्त्रियो का चाल-चलन बिगड़ जाय। कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि निष्क्रिय व्यक्तियों का विवाह हो गया है, लेकिन उनसे तो कुछ करते-धरते बनता नहीं, ऐसी दशा में वे खुद अपनी स्त्रियों से अपने सक्रिय मित्रों की जान-पहचान कराते देखे गए हैं। अपने जिस मित्र का मैंने ऊपर ज़िक्र किया है, उनके साथ भी एक नहीं, दो-तीन बार ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं। अस्तु—

सङ्कोच छोड़ कर हमें इस विषय में लोगों को सचेत करना चाहिए और देश के पुरुषत्व को अस्वाभाविक, मातृत्व-हीन स्त्रीत्व में पतित होने से बचाना चाहिए।

नपुंसकत्व

इस शब्द की व्याख्या पिछले प्रकरण में कर आए हैं। यह रोग पुरुषों में ही अधिक होता है, क्योंकि सम्भोग क्रिया में पुरुष सक्रिय तथा स्त्री निष्क्रिय रहती है। स्त्री का मन तैयार न रहने पर भी शरीर तैयार रह सकता है या यों कहिए कि उसके शरीर के तैयार होने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। किन्तु पुरुष के लिए यह बात नहीं है, उसे इस क्रिया में संलग्न होने के पहले मन तथा शरीर दोनों से तैयार होना पड़ता है।

कई कारणों से यह रोग हो सकता है, जिसमें सबसे प्रबल है कामशास्त्र-सम्बन्धी अज्ञानता। कितने ही पुरुषों में स्तम्भन-शक्ति बहुत ही कम होती है और कितने ही को बहुत कम मात्रा में वीर्यपात होता है ; इतना कम कि उन्हें

अनुभव तक नहीं होता। ये सब नपुंसकता के प्रारम्भिक लक्षण हैं। इस समय लोग अक्सर ऐसे विज्ञापनबाजों के चक्कर में आ जाते हैं जिनमें से कई का दावा तो यहाँ तक रहता है कि उनकी पहली खुराक रोग को जड़ से हटा देगी और पूर्ण आनन्द का अनुभव होगा। लेकिन इन दवाइयों का परिणाम बुरा होता है। चार दिन तक आनन्द लेने के बाद मरीज़ नपुंसक हो जाता है।

वैद्यक ग्रन्थों के रचयिताओं ने इसका जो विभाजन किया है, उसीको हम देते हैं। चरक-संहिता में वर्णित नपुंसकों के नाम व लक्षण इस प्रकार हैं :—

बीजोपघात नपुंसक

बासी, रूखी और खट्टी चीज़ों के खाने से, अजीर्ण होने पर भी भोजन करने से, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, विषय-लम्पटता और स्त्री की इच्छा न होने पर भी उसके साथ सम्भोग करने से, वात-दोष से, शारीरिक क्षीणता से, उपवासादि कठिन व्रत करने से और अत्यन्त परिश्रम से पुरुषों का वीर्य क्षय होता है। ऐसे पुरुष के सम्भोग से सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। उसे सहवास से रुचि भी नहीं रह जाती और कभी-कभी कामला, पाण्डु या श्वास-रोग भी हो जाते हैं।

ध्वजभङ्ग नपुंसक

प्रकृति-विरुद्ध भोजन से, मन्दाग्नि से, गरिष्ठ पदार्थों के

खाने से, बहुत जल पीने से, व्याधि-जनित दुर्बलता से, कन्या अर्थात् जिसे मासिक-स्राव प्रारम्भ न हुआ हो, उससे सम्भोग करने से, गुदा-मैथुन से, हस्त-मैथुन से, जिस स्त्री की जननेन्द्रिय पर बड़े-बड़े बाल हों तथा जिसने बहुत दिनों तक सम्भोग न किया हो, ऐसी स्त्रियों से सम्भोग करने से, जिस स्त्री के शरीर या गुह्येन्द्रिय से दुर्गन्ध आती हो तथा जो प्रदरादि व्याधि से ग्रस्त हो, उससे मैथुन करने से, पशु-योनि-मैथुन से, जननेन्द्रिय पर भारी चोट लगने से उसे साफ न रखने से, उसे बढ़ाने या अधिक उत्तेजित करने के लिए लेप, तिलादि के सेवन से तथा स्खलित होते समय वीर्य रोक रखने से नसें कमजोर पड़ जाती हैं और पुरुष नपुंसक हो जाता है।

जरासम्भव नपुंसक

वृद्धावस्था में धीरे-धीरे शक्ति क्षय होने से अथवा अति-मैथुन से क्षय होकर जो नपुंसकता आती है, उसे जरास-म्भव नपुंसकता कहते हैं।

क्षयज नपुंसक

अत्यन्त चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या और उद्वेग से, रुक्ष औषधियों के सेवन से, दुर्बल शरीर रहने पर भी सम्भोग करने से एवं भोजन की कमी से क्षयज नपुंसकत्व की सृष्टि होती है।

भावप्रकाश में भी सात प्रकार के नपुंसक वर्णित हैं, जिनके नाम क्रमशः निम्न-लिखित हैं :—

मानस नपुंसक

सहवास के समय भय, शोक, क्रोध, लज्जा किंवा ग्लानि उत्पन्न होने से तथा मैली-कुचैली और हाव-भाव विहीन स्त्री के साथ सहवास करते समय अप्रसन्नता उत्पन्न होने से काम-वृत्ति नष्ट होकर जो शिथिलता प्राप्त होती है, उसे मानस-नपुंसकत्व कहते हैं।

पित्तज नपुंसक

कड़वी, खट्टी, नमकीन और गरम तासीर वाली चीज़ों के अधिक सेवन से पित्त बढ़ कर पुरुष का वीर्य क्षय करता है, जिसे पित्तज नपुंसकत्व कहते हैं।

शुक्रक्षय नपुंसक

अति-मैथुन से जो शिथिलता आती है, वह शुक्रक्षय नपुंसकत्व कहलाता है।

लिङ्ग-रोगज नपुंसक

गुह्येन्द्रिय में गरमी-सूज़ाक प्रभृति रोग होने के कारण जो पुरुष नपुंसक हो जाता है, उसे लिङ्ग-रोगज नपुंसक कहते हैं।

वीर्यवाही-शिराच्छेद नपुंसक

जिन शिराओं में वीर्य रहता है, उनमें छेद हो जाने के

कारण जो लोग नपुंसक हो जाते हैं, उन्हें इस श्रेणी में स्थान मिलता है।

शुक्रस्तम्भज नपुंसक

सहवास करने की प्रबल इच्छा और सामर्थ्य होने पर भी जो लोग सहवास न कर, स्त्री-प्रसङ्ग से अलग रहते हैं, उनकी काम-प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है और शरीर भी ढीला पड़ कर बेकाम हो जाता है। ये लोग शुक्रस्तम्भज नपुंसक कहे जाते हैं।

सहज नपुंसक

जिस पुरुष में जन्म से ही सहवास करने की शक्ति नहीं होती, उसे सहज नपुंसक कहते हैं।

जन्म से ही जो लोग नपुंसक रहते हैं, उनमें पुंसत्व लाना असम्भव है। किन्तु अपने कर्म से जो लोग शक्ति खो बैठते हैं, उनका रोग—अगर वह बहुत पुराना तथा असाध्य न हो गया हो तो—समुचित उपचार से दूर हो सकता है; लेकिन समुचित उपचार करने के पूर्व ही लोग विज्ञापनबाज़ों के चक्कर में पड़ कर रोग को असाध्य बना चुके रहते हैं।

उनके ऐसा करने का कारण है उनकी लज्जा। किसी परिचित डॉक्टर से अपनी अवस्था बताने में लोग घबराते हैं। विज्ञापन की दवाइयों के लिए उनके पास बड़ा सरल मार्ग है। एक कार्ड में लिख दिया—"महाशय, मेरे एक

अति घनिष्ट मित्र को ऐसी-ऐसी शिकायत हो गई है। वे खुद लज्जावश अपने नाम से पार्सल मँगाने में असमर्थ हैं, अतएव मेरे नाम से, अपनी अक्सीर नं०......भेज दीजिए।"

यह लज्जा ही उनका काल बन जाती है। अतः शर्म छोड़ कर किसी वैद्य या डॉक्टर से चिकित्सा करानी चाहिए।

जन्म की नपुंसकता का सबसे प्रधान कारण विपरीत रति बतलाया गया है। स्त्री को ऊपर रख कर रति करने को 'विपरीत रति' कहते हैं। इस प्रकार की रति से जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसमें विपरीत गुण—पुरुष में स्त्री के तथा स्त्री में पुरुष के गुण—पाए जाते हैं।

इन सब बातों पर ध्यान देकर प्रत्येक व्यक्ति को खान-पान, शयन-विहार—सभी कामों में सदाचार तथा संयम का पालन करना चाहिए। दो दिन के आनन्द के लिए जीवन नष्ट कर डालने तथा जीवन भर पश्चात्ताप करने से क्या लाभ?

अति-मैथुन

ति-मैथुन का बाज़ार भी उतना ही गरम है, जितना कि व्यभिचार का। विवाहित दम्पति रोग, शोक, रज-स्राव, गर्भ आदि किसी भी बात की चिन्ता न करके सम्भोग को अपना दैनिक क्रम बना चुके हैं—केवल दैनिक क्रम ही नहीं, दिन में कई बार इसका अवसर आ जाता है। उनके मतानुसार अपनी पत्नी का सम्भोग किसी भी सीमा तक सर्वथा जायज़ है। जिन्हें विवाहित होने पर अपनी पत्नी से अलग रहना पड़ता है, उनमे तो यह बात और भी अधिकता से पाई जाती है। मेरे एक विद्यार्थी वयस्क मित्र ने खुद मुझसे इस सम्बन्ध में अपनी बात बताई थी। वे कॉलेज में पढ़ते थे और साल में उन्हे अधिक से
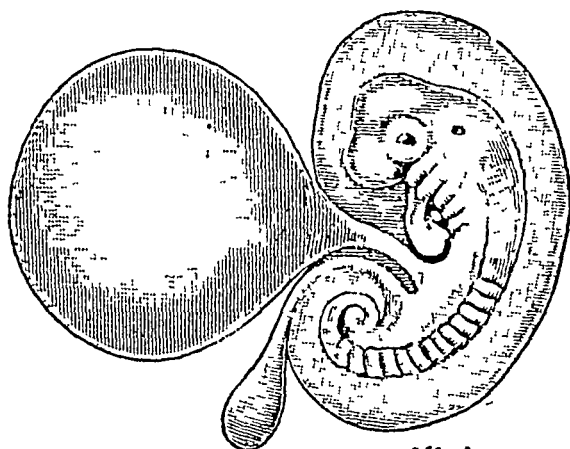
magnified

(बढ़ाया हुआ आकार)

वृद्धि-क्रम—तीसरा सप्ताह
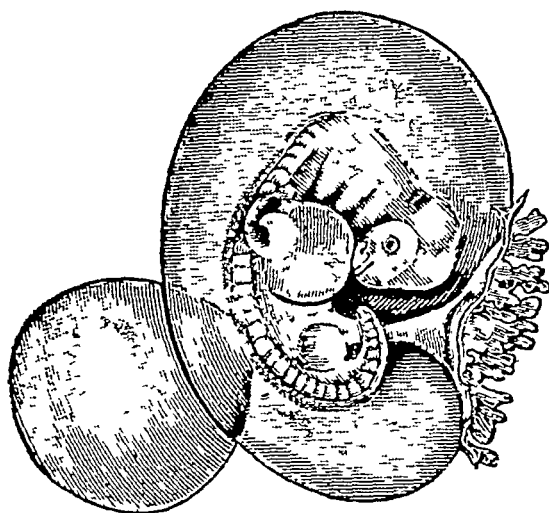
(बढ़ाया हुआ आकार)

४ सप्ताह का भ्रूण

अधिक तीन मास का समय अपनी पत्नी के सहवास में रहने का मिला करता था। ये मित्र व्यभिचार से परहेज़ रखते थे। फलतः कॉलेज के दिनो में उन्हें बड़ा कष्ट होता था। उनका घर पढ़ने के स्थान से दूर था, इसलिए दो-चार दिनों की छुट्टियों में वे घर न जा पाते थे। केवल गर्मी की छुट्टी में या पूजा के मौक़े पर ही उन्हें घर जाने का अवसर मिलता था। छुट्टी होते ही पहली गाड़ी से वे घर की यात्रा करते थे। घर पहुँचने पर उनका काम था केवल दो—सम्भोग और निद्रा। दिन या रात में जब इच्छा हुई, वे इस कार्य में रत हो जाते थे तथा इससे निबट कर पुनः शक्ति-सञ्चय के लिए सोने या आराम करने लगते थे। दिन-रात में पाँच बार तक की नौबत आ जाती थी। नतीजा यह हुआ कि दो साल के बाद ही उन्हे शीघ्र-पतन का रोग हो गया। उनकी पत्नी का भी दो-तीन बार गर्भपात होने से स्वास्थ्य बिगड़ गया।

इससे आगे की कहानी बताने की आवश्यकता नहीं। विवाह होने के बाद एक-दो वर्ष तक इस प्रकार का अत्याचार तो आजकल उन लोगों के लिए, जिनका आचरण अच्छा समझा जाता है, बहुत साधारण बात हो गया है। ऐसा न करने वाले तो आजकल शायद खोजने से भी न मिलें। यह हमारी अज्ञानता का परिणाम है।

यह एक ऐसा रोग है, जिसे कोई भी दवा नहीं रोक

सकती। होता क्या है? व्यभिचारी न होने पर दम्पति में प्रेम रहना स्वाभाविक बात है। ये दोनों प्रेमी रात को एकान्त में मिलते हैं, वहाँ उन पर अङ्कुश रखने वाला भय, लज्जा, ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। उनका सहायक यौवन अलबत्ता मौजूद रहता है। शरीर से शरीर मिलता है, उत्तेजना पैदा होती है, बिजली दौड़ जाती है और दोनों मिल जाते हैं। क़ानून तथा धर्म भी उन्हें आज्ञा देते हैं।

एक बात और ऐसी है, जो बहु-मैथुन को सहायता पहुँचाती है। आजकल इस देश में स्त्री-शिक्षा का जितना अभाव है, वह तो सबको मालूम ही है। फलतः पति शिक्षित और पत्नी सर्वथा अशिक्षिता रहती है। उनके विचार-केन्द्र तथा मानसिक विकास में भारी अन्तर रहता है। पति-पत्नी जब इकट्ठा होते हैं, तब समस्या यह पेश होती है कि वे वार्त्तालाप किस विषय पर करें।

दो आदमी किसी ऐसे ही विषय को लेकर बात कर सकते हैं, जिसमें दोनो को मजा आए। यदि पति साहित्य, शिल्प-कला, विज्ञान, राजनीति आदि की चर्चा छेड़ता है, तो पत्नी उसे समझ ही नहीं सकती, उसे मजा क्या आए? यदि पत्नी अपने पड़ोसिन या सास-ननद की शिकायत प्रारम्भ करती है, तो पति के परिष्कृत एवं संस्कृत दिमाग़ को उसकी बातों में जरा भी रस नहीं मिलता। तब उनके बीच में सम्भोग ही एक ऐसा विषय है, जिस पर दोनों को

ाराबर दखल है, दोनो समानता का दावा कर सकते हैं, ोनो एक-दूसरे की बात समझ सकते हैं और दोनों को जेसमें मज़ा आ सकता है। अस्तु—

रात्रि की निस्तब्धता में मिलने पर दोनो के लिए इस एक विषय की चिन्ता के सिवाय और कोई उपयुक्त विषय नहीं रहता और इसी में वे संलग्न हो जाते हैं।

ख़ैर, यह तो हुआ कि अतिमैथुन हानिकर है, तब इसकी सीमा क्या हो? इसकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित करना कठिन है। जिस प्रकार यह बताना कठिन है कि फलाँ आदमी कितना भोजन करे, वह कितना भोजन पचा सकता है, उसी तरह मैथुन के विषय में भी बताना कठिन है। यह बात प्रत्येक को अपने रहन सहन और शारीरिक शक्ति के अनुसार तय करनी चाहिए।

किन्तु भोजन तथा सम्भोग में एक अन्तर है। भोजन आदमी अकेले करता है, सम्भोग में दो व्यक्ति शामिल होते हैं। इसलिए दोनो की प्रकृति का भली-भाँति ध्यान रख कर यह बात तय करनी होगी कि अमुक दम्पति के लिए कितने दिनों के अन्तर पर सम्भोग करना चाहिए। इसीलिए पहले ही लिख आए हैं कि विवाह के समय वर-कन्या की शारीरिक शक्ति तथा कामुकता का मिलान कर लेना चाहिए। वर यदि अल्पकामी हुआ तो कन्या को बड़ा कष्ट होगा। या तो उसमें हिस्टीरिया आदि मानसिक

विकार पैदा हो जायँगे या उसका आचरण बिगड़ेगा। इसी तरह स्त्री के कमजोर अथवा क्षीण-कामी होने पर या तो पुरुष उसकी इच्छा के विरुद्ध उस पर अत्याचार करेगा या वह स्वयं व्यभिचारी हो जायगा और इस तरह उन दोनों का दाम्पत्य जीवन नीरस हो जायगा।

सम्भोग की मर्यादा निर्धारित करने के पहले एक बात बताना ज़रूरी है। जिस प्रकार अतिमैथुन वर्जित है, उसी प्रकार प्रबल उत्तेजना आने पर अपने को रोकना भी हानि-कारक है। बहुत देर तक स्नायु-मण्डल तथा इन्द्रियों की उत्तेजना से बड़ी हानि होती है। स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता बढ़ती है तथा पुंसत्व का ह्रास होने लगता है। उत्तेजित इन्द्रियों को रोक रखने से वही हानियाँ होती हैं, जो हस्त-मैथुन आदि से। इससे केवल शारीरिक हानियाँ ही नहीं होती, वरन् मानसिक पतन भी होता है। सम्भोग कर लेने से चित्त कुछ समय के लिए शान्त हो जाता है, किन्तु जब उत्तेजित इन्द्रियों को सम्भोग-जनित स्वाभाविक शान्ति नहीं मिलती, तब वे बार-बार उत्तेजित होती रहती हैं और मन भी सदैव इसी विषय की चिन्ता में संलग्न रहता है। किसी भी स्त्री को देखते ही या जरा सा हाथ लगते ही अथवा इस विषय का ध्यान आते ही मन चञ्चल हो उठता है; आदमी की मानसिक पवित्रता नष्ट हो जाती है। इस सम्बन्ध में हमें फिर दुहराना पड़ता है कि संयम, सदाचार

तथा ब्रह्मचर्य का एकमात्र उपाय है मानसिक पवित्रता तथा उच्च विषयों का चिन्तन।

शीघ्रपतन और स्थिरता

आजकल जिस प्रकार का दुराचार फैला हुआ है, उससे यदि अधिकांश लोग सर्वथा पुंसत्वहीन नहीं हो जाते तो कम से कम शीघ्रपतन की बीमारी के शिकार तो जरूर हो जाते हैं।

आजकल पैतृक दोष और अवस्था के पूर्व के अविचार आदि अनेक बातों से विवाहित युवक देखते हैं कि प्रथम मिलन में ही उनको स्थिरता बहुत कम है। इतनी कम कि न तो उन्हें सन्तोष होता है और न उनकी पत्नी को; यद्यपि लज्जावश स्त्रियाँ अपने मुँह से इस बात को कभी नहीं निकालतीं।

पहले कुछ दिनों तक तो कुमारीच्छद की कठिनता या नवोढ़ा के लज्जा-जनित विलम्ब के कारण युवकों को बुरी तौर से लज्जित तथा निराश होना पड़ता है। एक तो वे कमजोर रहते ही हैं, दूसरे उनकी यह असफलता उन्हें आगे भी, जब कभी सम्भोग का अवसर आता है, उद्वेग (Nervousness) से भर देती है, उनमें घबराहट पैदा कर देती है। यह कमजोरी मनोबल द्वारा दूर की जा सकती है; किन्तु अधिकांश 'विज्ञापन' की स्तम्भन लाने वाली औषधियों

के चक्कर में पड़ जाते हैं या अनुचित उपायों से स्तम्भन लाने की कोशिश करने लगते हैं, जिससे हानि होती है। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी प्रकृति सम्भोग के लिए जितना समय देती है या प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभाविक रीति से जितना समय लगता है, उससे अधिक समय तक सम्भोग के लिए प्रयत्न करना हानिकर है। व्यायाम, मिताचारपूर्ण मैथुन तथा मानसिक पवित्रता ही इस समय को बढ़ाने के स्वाभाविक साधन हैं। आप देखेंगे कि इस विचार में अधिक देर तक लीन रहने या इन्द्रियों को उत्तेजित अवस्था में अधिक देर तक रखने से आपका समय घट जाता है तथा इसके विपरीत आँचरण से वह समय बढ़ सकता है।

सम्भोग की सीमा

साधारण तौर पर स्वस्थ स्त्री-पुरुष के लिए महीने में पाँच-छः बार तक सम्भोग करने से कोई हानि नहीं होगी। इसके अलावा गर्भ, ऋतुस्राव, बीमारी, थकावट, मानसिक उत्तेजना या उदासी आदि के समय इस कार्य में न लगना चाहिए।

इसकी एक सबसे अच्छी पहचान यह है कि जब कभी आपको सम्भोग के बाद सुस्ती, पश्चात्ताप, एक-दूसरे के प्रति अश्रद्धा या प्रेम की कमी, चिड़चिड़ाहट, उदासी या शक्तिहीनता मालूम पड़े, तब समझ लीजिए कि आप अपनी

शक्ति, सामर्थ्य तथा प्रकृति के विरुद्ध जा रहे हैं और परिमित मैथुन-सीमा का उल्लङ्घन कर रहे है।

जब तक मैथुन में आपका मन उत्साहपूर्ण, प्रसन्न तथा प्रफुल्लित न रहे, तब तक वह कार्य वास्तव मे पूरा नहीं होता तथा उद्देश्य अधूरा ही नहीं रह जाता, वरन् वह हानिकर भी साबित होता है। यदि आपका यह कार्य पूरी तरह स्वाभाविक रीति से सम्पादित हो रहा हो, तो कोई कारण नहीं कि दम्पत्ति, स्त्री तथा पुरुष दोनों, को इसमें पूर्ण आनन्द एवं स्फूर्ति न मालूम हो। अस्तु, जब कभी इसके विपरीत बातें द्रष्टिगोचर हों या आनन्द न आए, तो इस कार्य से रुक जाना चाहिए। शङ्कित मन से इस क्रिया में हाथ लगाना अनुचित है। जैसे अपच का ध्यान कर डरते-डरते भोजन करने से खाना नहीं पचता तथा चार मित्रों मे बैठ कर आनन्दपूर्वक हँसते-हँसते भोजन करने से ज्यादा खा लेने पर सरलता से भोजन पच जाता है, वैसे इस कार्य में भी होता है। संयम-नियम का उल्लङ्घन करने से दो ही एक वर्ष के बाद हाथ मल-मल कर रोना पड़ता है।

बहुत से विद्वानों की राय है कि यह कार्य हमें केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ही करना चाहिए, आनन्द के लिए नहीं। अपने इस मत के अनुसार उनमें से कोई-कोई तो दो-ढाई वर्ष में केवल एक बार दम्पति को सम्भोग की आज्ञा दे सकते हैं। लेकिन इस दल में उदार मत वालो की कमी

है, ऐसा न सोचिए। इसमें उदार लोग भी हैं। इन लोगों का कहना है कि मास में केवल एक बार पति-पत्नी को इस क्रिया में लगना चाहिए। इन लोगों का कथन यद्यपि कई अंशों में सच हो, लेकिन वर्तमान काल में यह बात असम्भव है। इस मत के प्रतिपादकों में ही शायद एक भी आदमी—यदि वह नपुंसक या ऊँचे दर्जे का महात्मा न हो—ऐसा नहीं होगा, जो ढाई वर्ष वाले नियम का पालन करता हो। शिक्षा देना एक बात है और आचरण करना दूसरी बात। हमें मानव स्वभाव तथा अनुभव के सामने सिर झुकाना पड़ता है।

व्यभिचार और पर-नारी-गमन

बहुत से लोगों का मत है तथा ऐसे मत वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है कि एक स्त्री को एक पुरुष के पीछे तथा किसी पुरुष के लिए किसी ख़ास स्त्री के पीछे पड़ा रहना बेवक़ूफ़ी है। जिस प्रकार हो, घर में तो रोज खाना खाते हैं, लेकिन कभी-कभी होटल में भी खा आते हैं। इसी प्रकार यदि हम वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हुए भी कभी-कभी दूसरी जगह मन बहला आया करें तो क्या हानि है?

इस मत के लोग दो दलों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक का कहना है कि केवल पुरुष को ही ऐसी स्वाधी-
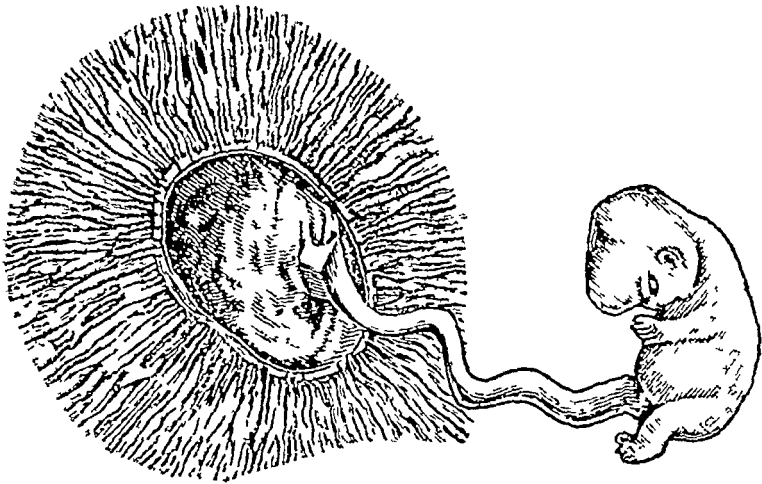
(असली आकार)

वृद्धि-क्रम—दूसरा महीना
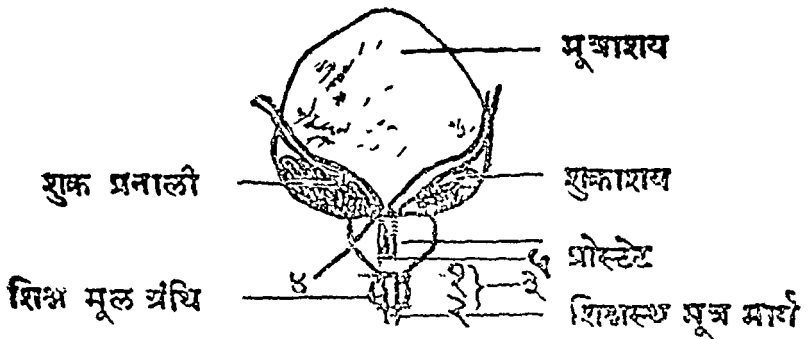
१–२ = दो कलाएँ

३ = कलाओं के बीच मे रहने वाला मूत्र-मार्ग का भाग

४ = शुक्र-स्रोत

५ = प्रोस्टेट में रहने वाला मूत्र-मार्ग का भाग

नता मिलने से गृहस्थी में भारी गड़बड़ी खड़ी हो जायगी। दूसरे अति उदार दल का कथन है कि नहीं, केवल पुरुष को ऐसी स्वाधीनता देना तो अन्याय है। पति-पत्नी दोनों को ऐसी स्वाधीनता होनी चाहिए। जिस प्रकार रोज यदि किसी को आलू की ही तरकारी खाने को दी जाय तो उसकी तबीयत ऊब जायगी, उसी प्रकार रोज पति-पत्नी के ही मिलन मे उदासीनता एवं शिथिलता आ जाती है तथा उनके वैवाहिक एवं शारीरिक मिलन में कोई आकर्षण नहीं रह जाता है। सम्भोग-कार्य इस दशा में भार-स्वरूप कर्त्तव्य-मात्र रह जाता है, जिसे किसी भी तरह पूरा कर हम अपनी बला टाला करते हैं। यदि बीच-बीच में दस-पन्द्रह दिन या मास दो मास के लिए पति किसी दूसरी जगह जाकर हवा खा आवे तथा पत्नी भी इसी प्रकार मन बहला आवे तो उनके वैवाहिक जीवन, पारस्परिक प्रेम तथा सम्भोग में नवीनता, सजीवता, जोश एवं विवाह के प्रथम वर्ष का वही विद्युत्-आकर्षण आ जाता है।

विवाह-प्रकरण में ये बातें लिख आए हैं कि विवाहित दम्पति के लिए आचरण की पवित्रता क्यों आवश्यक है? इसलिए इस प्रकरण में केवल वे ही बातें लिखी जायँगी, जिनसे यहाँ सम्बन्ध है।

पवित्रता भङ्ग करने से दम्पति के जीवन मे नवीन आकर्षण आ जायगा, जो लोग ऐसा कहा करते हैं, वे लोग

मानव-स्वभाव की बारीकियों को भूल जाते हैं। जो चीज़ हमें हर जगह बड़ी सहूलियत से मिल सकती है, उसकी हमें चाह या चिन्ता नहीं होती। वैवाहिक दम्पतियों में बहुधा प्रेम रहने का कारण यही है कि उन लोगों को अपनी कामोत्तेजना की शान्ति के लिए सर्वथा एक-दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। निश्चय ही इस प्रेम के और भी कई कारण हैं, लेकिन यह एक प्रधान तथा महत्वपूर्ण कारण है।

इसका दूसरा भयङ्कर परिणाम होगा व्यभिचार-जनित (Venereal) रोगों की अधिकाधिक बाढ़, जिससे केवल वे दम्पति ही नहीं आक्रान्त होंगे, जो इस प्रकार नई उत्तेजना के लिए अपना मन बहलाने जायँगे, वरन् उनकी सन्तान में भी ये रोग आ जायँगे। क्योंकि ये रोग बहुधा आक्रान्त व्यक्तियों की सन्तानों में ही प्रकट हुआ करते हैं, आरोग्य व्यक्तियों की सन्तानों में नहीं।

इन रोगों का एकमात्र कारण है व्यभिचार। यदि प्रत्येक पुरुष केवल अपनी विवाहिता पत्नी से ही सम्बन्ध रक्खे तथा प्रत्येक स्त्री पतिव्रत का निश्चय करले तो इस रोग का यदि निशान न मिट जाय तो कम से कम आज वह जितना फैला हुआ है, उससे सैकड़ों गुना तो अवश्य ही कम हो जाय। नीचे इन प्रमुख रोगों का विवरण दिया जाता है:—

गर्मी या आतशक

पहले-पहल यह पुरुष-जननेन्द्रिय या योनि पर एक फोड़े (Chancre) के रूप में प्रकट होता है। कभी यह गाल या ओठों पर भी होता है, लेकिन ऐसा क्वचित् ही होते देखा गया है।

बहुत प्रबल गति से इसका ज़हर या इसके कीड़े शरीर के रक्त में फैलने लगते हैं और थोड़े दिनों में ही सारा रक्त दूषित हो जाता है। इस दूपित रक्त का असर बहुत ही शीघ्र अन्दर की नसों पर तथा स्नायु पर होता है और चमड़े पर फोड़े आने लगते हैं तथा अन्तिम दशा में हड्डियाँ भी गलने लगती हैं। इस रोग की अन्तिम दशा सबसे भयावह है, जब व्यक्ति को कोढ़ धर दबाता है, नाक गल जाती है और हाथ-पैर गल-गल कर गिरने लगते हैं।

अक्सर ९९ फी सदी से भी अधिक तो यह बीमारी किसी रोगी पुरुष या स्त्री से सम्भोग करने पर होती है। लेकिन ऐसे ब्रश, छुरा, पानी पीने के बर्तनादि से भी यह रोग हो सकता है, जिन्हें इस रोग का रोगी अपने काम में ला चुका हो और इस कारण जिस पर इस रोग के कीटाणु मौजूद हों। लेकिन आपके शरीर में इन कीटाणुओं के घुसने या आक्रमण करने के लिए एक बात अतीव आवश्यक है। आपके शरीर में कोई ऐसी फटी, लसदार जगह

इन कीड़ों को अवश्य मिलनी चाहिए, जहाँ से होकर ये आपके खून में प्रवेश करें। ये काट कर शरीर के अन्दर जहर नहीं भर सकते और न अन्दर घुसने के लिए स्वतः मार्ग बना सकते हैं। चुम्बन से भी इस रोग के कीटाणुओं का आक्रमण हो जाता है।

इस रोग से आक्रान्त व्यक्ति की सन्तान शायद ही अच्छी होती हो। या तो उनका गर्भपात हो जाता है अथवा वे अपूर्ण शरीर लेकर या इस रोग से आक्रान्त शरीर लेकर पेट से बाहर आते है, किन्तु कभी-कभी वे अच्छे शरीर से बाहर आ जाते हैं, लेकिन यह प्रायः समझिए कि चाहे दो-चार दिनों में या दो-चार वर्षों में उन पर इस रोग का आक्रमण होगा ही।

सूज़ाक

इस रोग मे मूत्र-मार्ग पर आक्रमण होता है। यह भी वहुधा किसी आक्रान्त स्त्री या पुरुष के संसर्ग से होता है। यह एक वैज्ञानिक नियम है कि कोई भी स्थान रिक्त नहीं रह सकता। जव कभी भी कोई स्थान सर्वथा रिक्त (Vacuum) कर दिया जाता है तो आस-पास की हवा बड़े जोर से खिंच कर उस स्थान को भरने के लिए दौड़ती है। साथ ही आस-पास की कुछ हलकी चीजें भी हवा के साथ खिंच कर रिक्त स्थान में पहुँच जाती हैं। अस्तु, जिस समय आप

ार्य-त्याग करते हैं, उस समय आपका मूत्र-मार्ग सर्वथा
ाक्त हो जाता है और आस-पास की चीजें खिंचती हैं।
ाब यदि योनि में सूजाक के कीटाणु मौजूद है तो वे मूत्र-
ार्ग में घुस जायँगे। स्त्री के लिए बात उलटी होती है।
ार्य सदैव ज़ोर से निकलता है। फलतः यदि आपके
ात्र-मार्ग में ये कीटाणु मौजूद हैं तो वे वीर्य के साथ योनि
ां पहुँच जायँगे।

वहाँ पहुँचते ही ये कीटाणु चिपक जाते हैं और तरल
पदार्थ पैदा करते हैं या यों कहे कि अपनी संख्या बढ़ाने तथा
अपना कार्य करने में लग जाते हैं। इसीलिए अक्सर
लोग—खास कर पर-नारी-गमन करने वाले—सम्भोग के
बाद तुरन्त ख़ूब जोर लगा कर पेशाब करते है, जिसमें
यदि कीटाणु पहुँच भी गए हों तो वे निकल पड़ें। यदि
कीटाणु चिपक गए हो, तब तो इस उपाय से कोई लाभ
नहीं होता; लेकिन यदि अभी तक वे चिपके न हों तथा
अपनी वृद्धि नहीं कर पाए हों, जिसे कि वे बहुत जल्दी
कर डालते हैं, तो अवश्य इस क्रिया से लाभ होता है।

जब ये कीटाणु मूत्र-मार्ग में घाव बना देते हैं और
वह घाव बढ़ता है, तब अक्सर इस मार्ग में कहीं न कहीं
रुकावट आ जाती है, याने घाव के बढ़ जाने से रास्ता नहीं रह
जाता। उस समय मूत्राशय फैलने लगता है और रोगी
को असह्य वेदना होती है। वह पेशाब करने के लिए तड़-

पने लगता है, लेकिन पेशाब निकले कहाँ से? डॉक्टर लोग सलाई डाल कर रुकावट को हटाते या घाव फोड़ देते हैं, तब पेशाब फिर बाहर निकलने लगता है; लेकिन फिर दो-चार दिनों में वही दशा होती है। इसके अलावा इस रोग में, इन्द्रिय में जलन बहुत असह्य होती है। जब-जब पेशाब कीजिए, तब-तब घाव के स्थान पर खारा पेशाब लगने से जलन होती है। पेशाब खुल कर नहीं होती; क्योंकि मार्ग साफ़ नहीं रहता। हर बार पेशाब करते समय ख़ूब ज़ोर लगाना पड़ता है, जिससे घाव को धक्का लगता है और वह घिस जाता है एवं घाव हरदम ताज़ा ही बना रहता है।

इस रोग से लोग अन्धे बड़ी जल्दी हो जाते हैं। इसका ज़हर भी ख़ून में फैल जाता है और वात की शिकायत पैदा करता है, गठिया, लकवा आदि होते हैं। अन्त में तो बड़े-बड़े अनर्थ होने लगते हैं। गर्मी तथा सूज़ाक दोनों के रोगी बड़े कामुक होते हैं। ज़रा सी उत्तेजना से वे विचलित हो जाते हैं और तकलीफ़ होने पर भी सम्भोग के लिए प्रबल रूप से लालायित रहते हैं।

वेश्यागमन करने वाले को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः प्रत्येक वेश्या को गरमी या सूज़ाक की बीमारी रहती है। यद्यपि अन्य कुमार्गी स्त्री-पुरुषों द्वारा भी यह रोग हो सकता है; फिर भी वेश्यागमन में इसकी बहुत अधिक सम्भावना रहती है।

इस रोग की आशङ्का होते ही लज्जा छोड़ कर किसी अनुभवी, दक्ष चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। डॉक्टर लोग अक्सर अपने रोगियों के भेद नहीं बताते, और यदि भेद खुल भी जाय तो क्या हर्ज है ? जीवन भर कष्ट सहने और अन्त में भेद खुलने से तो यह अच्छा ही है। इन रोगों [illegible] वृद्धि बड़ी शीघ्रता से होती है और थोड़े दिनों की सुस्ती [illegible] लज्जा से ये असाध्य हो जाते हैं।

पहली या प्रारम्भिक अवस्था में इनका इलाज हो [illegible]कता है, यदि कोई योग्य चिकित्सक मिल जाय। देर होने से हाथ के बाहर की बात हो जाती है।

इस सम्बन्ध में एक बात बताना आवश्यक है। शराब और वेश्या का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। यह केवल हमारी ही नहीं, पाश्चात्य विद्वान् डॉक्टरों की भी राय है। उन्होंने गणना कर इस बात का पता लगाया है कि मादक द्रव्यों के सेवन से मन कमज़ोर हो जाता है और कमज़ोर मन इन्द्रिय-उत्तेजना को दबाने में असमर्थ होकर वेश्याओं की शरण लेता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन करने वालों को इस ओर सतर्क रहना चाहिए।

ये बीमारियाँ बड़ी घातक है। एक बार लग जाने पर फिर इनसे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है और समाज तथा देश के लिए वह व्यक्ति स्वतः सदा के लिए एक

भयङ्कर रोग बन जाता है। इस प्रकार वह केवल अपनी ही हानि नहीं करता, वरन् देश तथा समाज का एवं अपनी भावी सन्तति का भी शत्रु बन जाता है।
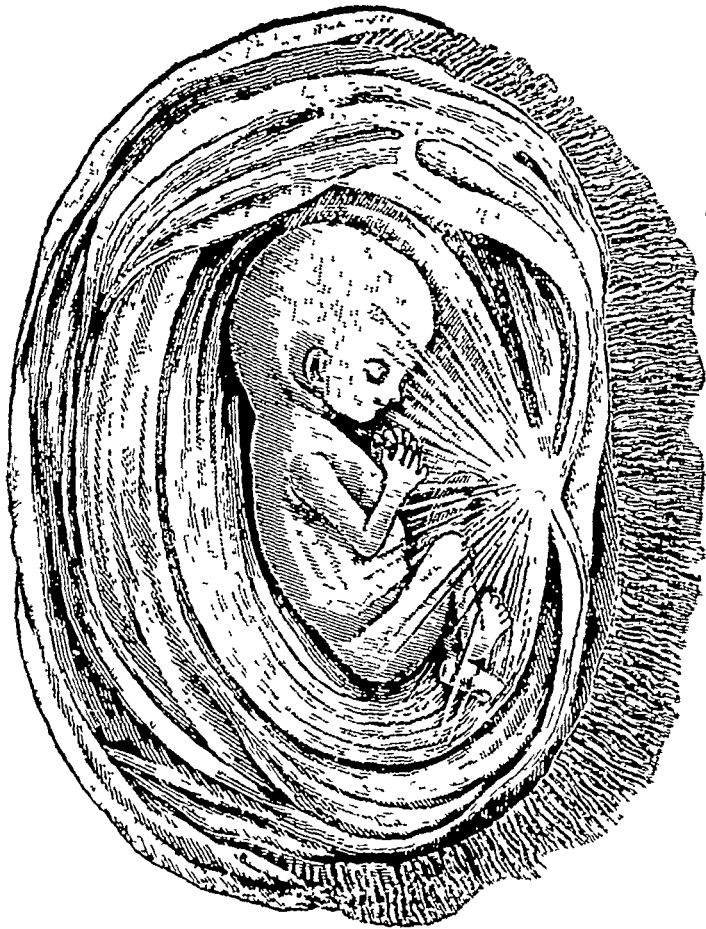
(असली आकार)

वृद्धि-क्रम—तीसरा महीना

वैवाहिक सुख

विवाह में स्त्री को कुछ अधिक त्याग करना पड़ता है; लेकिन यहीं उसके कर्त्तव्यों का अन्त नहीं होता। इस सम्बन्ध में उसकी ज़िम्मेदारी हर हालत में तथा अन्त तक पुरुष से ज्यादा रहती है। सन्तान को गर्भ में धारण करने का कष्टप्रद कार्य उसे ही करना पड़ता है। सन्तानोत्पत्ति के बाद भी बालक को दूध पिलाना, उसकी परिचर्या एवं शुश्रूषा करना आदि काम उसी के सिर पर जा पड़ते हैं। इन सभी कार्यों में उसे यथेष्ट कष्ट तथा उत्सर्ग करना पड़ता है। जब पुरुष किसी पार्क में हवा खाता रहता है, जिस समय वह किसी नाटक आदि में बैठ कर सङ्गीत-सुधा का पान करता रहता है, उस समय माता बालक की

सेवा-परिचर्या में लगी रहती है। ग़रज़ यह कि अपने जीवन का जितना समय उसे कष्टपूर्ण, निरानन्द कर्त्तव्य-पालन में लगाना पड़ता है, पतिदेव को न तो उतना समय ही लगाना पड़ता है और न उतना कष्ट उठाना या त्याग करना पड़ता है।

यह तो हुई विवाह के बाद की बात। विवाह के समय भी पत्नी को यथेष्ट त्याग दिखाना पड़ता है। माता-पिता, हित-कुटुम्ब तथा उस घर को, जहाँ उसके जीवन का सबसे उत्तम समय—उसका बालपन व्यतीत हुआ, उसे सदा के लिए छोड़ना पड़ता है।

इतना आत्म-समर्पण, इतना त्याग वह किस बात पर करती है? किस सहारे वह इतना बढ़ जाती है? बस, प्रेम! पति-प्रेम और सुषुप्त सन्तान-प्रेम ही उससे इतना भारी कार्य करा लेता है। विचार कर देखिए, यह साधारण त्याग नहीं है!

मानव-हृदय बहुत कमज़ोर धागों से बँधा हुआ है। इतना त्याग केवल सुदूर भावी प्रेम के बल पर वह कर डालता है! स्त्री का हृदय भावुक होता है। वह स्वभाव से ही कवि होती है। लेकिन उसके हृदय में भी एक क्षीण आशा लगी रहती है। उसे विश्वास रहता है कि उसके इस त्याग की, इस आत्म-समर्पण की, उसके इस पवित्र प्रेम की क़दर होगी—इसका महत्व स्वीकार किया जायगा और उसके सामने भी एक युवक अपना हृदय समर्पित करेगा!

किन्तु उसकी यह आशा कितनी सफल होती है ? जिस प्रकार स्त्री को पातिव्रत्य की शिक्षा दी जाती है, उसी प्रकार पुरुष को पत्नीव्रत की महिमा नहीं बताई जाती। फलतः विवाह होने पर स्त्रियाँ जिस प्रकार अपना तन, मन, धन पतिदेव के चरणों पर चढ़ा देती हैं, उस प्रकार पुरुष स्त्रियों के निकट आत्म-समर्पण नहीं करता। पूजा-चढ़ावा लेता है, प्रसाद नहीं देता, वर नहीं देता—यह देव बड़ा निष्ठुर एवं स्वार्थी है। यदि स्त्री की तरह पुरुष भी आत्म-समर्पण कर सके तो हमारी गृहस्थी, जो आज नरक से होड़ ले रही है, स्वर्ग बन जाय !!

जब तक नवीनता रहती है, आकर्षण रहता है, तब तक तो पुरुष पत्नी की ओर आकर्षित होता है, लेकिन शीघ्र ही उसका मन चञ्चल हो उठता है—वह पत्नी के प्रति उदासीन हो उठता है। स्त्री का स्वप्न टूट जाता है—वह समझ जाती है, उसे धोखा हुआ, उसका सर्वस्व-दान ठुकरा दिया गया। परिणाम में अधिकांश स्त्रियाँ असन्तोष के कारण हताश हो, पथ-भ्रष्ट हो जाती है। बहुत सी तो प्रेम के लिए अञ्चल फैलाए हुए ही मृत्यु की गोद में चल देती हैं। इस जीवन में उनकी प्रेम-पिपासा नहीं मिटती। पुरुष को भी जीवन भर शान्ति नहीं मिलती। यौवन के प्रारम्भ में प्रकृति ने जीवन-सङ्गी खोज निकालने की जो प्रबल लालसा उसके मन में उत्पन्न की थी, उसे बाज़ारों में, गलियों मे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते

थक कर वह भी हताश हो जाता है और अतृप्त आकांक्षा को लिए हुए वह भी एक दिन विदा हो जाता है।

विवाह होने पर जिस प्रकार चारों तरफ का माया-मोह छोड़ कर स्त्री अपना सर्वस्व पति को अर्पण करती है, पुरुष भी ठीक उसी प्रकार जब तक अपना सारा प्रेम, समूचा हृदय स्त्री को प्रतिदान में अर्पण न करेगा, तब तक हमारा दाम्पत्य जीवन सफल न होगा—हमें सुख तथा शान्ति न मिलेगी। स्त्रियाँ सङ्कोचवश चाहे कुछ न कहे, लेकिन मानव-हृदय को यदि हम पहचानते हैं तो हमें मालूम हो जाना चाहिए कि नारी-हृदय भी यही चाहता है कि मेरी ही भाँति पुरुष भी आत्म-समर्पण कर दे और हम दोनों का हृदय एक हो जाय, द्वन्द्व मिट जाय, भेद-भाव हट जाय और हम इस प्रकार मिल जायँ कि फिर कोई शक्ति हमें अलग न कर सके।

विवाह होते ही पुरुष-मात्र शयन-गृह में प्रवेश करते हैं, लेकिन उन्हे इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि आज उनके भाग्य का निबटारा होने वाला है। किसी अफसर के पास, रईस के पास जब हम पहली बार मिलने जाते हैं, तब कपड़े-लत्ते से लैस होकर खूब तैयारी से जाते हैं और सदा इस बात के लिए सतर्क रहते हैं कि कहीं पहली मुलाक़ात में ही कोई ऐसी भद्दी ग़लती न हो जाय कि हमारा काम बिगड़ जाय या हम नालायक़ कह कर निकाल बाहर कर दिए जायँ।

एक साधारण काम के लिए तो हम इतने सतर्क रहते हैं, लेकिन जीवन की प्रधान समस्या को हल करते समय हम पहली ही बार भद्दी ग़लती करते और जीवन भर के लिए उसे बिगाड़ लेते हैं। यद्यपि किसी अफसर की तरह आपकी पत्नी को यह हक़ नहीं है कि वह आपको अस्वीकार (reject) कर दे; लेकिन उसके हृदय को तो पूरी स्वाधीनता है और उसका हृदय अवश्य ही आपको अस्वीकार कर देता है।

प्रथम दिन शयन-गृह में केवल पाशविक भावों को—केवल काम-लालसा को—लेकर जाना अनुचित ही नहीं, अमानुषिक भी है। यह तो वह दिन है जब आपको प्रेम की डाली लेकर स्त्री के हृदय पर आरोपित करने के लिए जाना चाहिए। जो लोग इस प्रकार प्रेम का प्रतिदान कर अपनी भार्या को सन्तुष्ट कर सकते हैं, वे ही वास्तव में आजीवन सुख का अनुभव करने मे समर्थ हो सकते हैं।

पुरुष को बहुत से लोगों से मिलने की, खुल कर बात करने की सुविधा है। फलतः विवाह होने के पहले उसे इस बात का ज्ञान रहता है कि विवाह का आधा अर्थ शारीरिक मिलन भी है। किन्तु अधिकांश स्त्रियों को शारीरिक मिलन का ठीक-ठीक अर्थ नहीं मालूम रहता। इसके अलावा उनमें पुरुषों की अपेक्षा लज्जा एवं सङ्कोच भी अधिक रहता है। इसलिए बहुधा उनका मन इस शारीरिक मिलन

के लिए तैयार नहीं रहता। इस समय पुरुष को सब्र से काम लेना चाहिए और अपने व्यवहार से पत्नी के मन में इस बात का विश्वास दृढ़ कर देना चाहिए कि पति सदैव उसकी रक्षा करेगा, उसकी भावुकता का आदर करेगा तथा उसके आदर्श एवं हृद्गत विचारों को ठुकराएगा नहीं।

बिना दोनों की इच्छा हुए रति-कार्य में लगना राक्षसी अत्याचार है। ऐसा तो पशु भी नहीं करते। प्रेमोपचार द्वारा भली-भाँति अपनी मादा को रिझाने और उसकी कामवृत्ति को जाग्रत करने के बाद पशु-पक्षी इस कार्य में प्रवृत्त होते हैं, किन्तु मनुष्य इस सम्बन्ध में बहुत पतित हो गया है। पुरुष की कामेच्छा जाग्रत होते ही वह स्त्रियों पर अत्याचार करने में रत हो जाता है। स्त्री की काम-वासना जाग्रत हुई है या नहीं, उसकी इच्छा है या अनिच्छा, इसे जानने की चेष्टा करना वह अपना कर्त्तव्य ही नहीं समझता।

इससे बड़ी हानि होती है। यह एक प्रकार का बलात्कार है। ख़ास कर प्रथम-मिलन के समय जब स्त्री विशेष सङ्कोचशील रहती है, उसके मन में जल्दी काम-वासना जाग्रत नहीं होती और उस समय दो-चार दिनों तक इस प्रकार बलात्कार करने का उसके मन पर बड़ा बुरा असर होता है। पुरुष के प्रति उसे सदैव के लिए घृणा हो जाती है और फिर कभी उसके साथ सहवास करने में उसे नहीं आता। कभी ऐसा भी होता है कि जब तक

...त्री की काम-वासना जाग्रत हो, तब तक पुरुष की क्रिया समाप्त हो जाती है और स्त्री का मन असन्तुष्ट ही रह जाता है, जिसका असर भी बड़ा बुरा होता है। स्त्री का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, परिणाम-स्वरूप पति उससे स्नेह कम करने लगता है।

मानव-स्वभाव तथा शरीर-विज्ञान के ज्ञाताओं का कथन है कि जिस समय स्त्री और पुरुष दोनों की काम-वासना जाग्रत हो, केवल उसी समय सम्भोग-कार्य में लिप्त होना चाहिए। ऐसा न करने से न तो आनन्द ही मिलता है और न अच्छी सन्तान ही होती है। अतएव पुरुष का कर्त्तव्य है कि इस कार्य को शुरू करने के पहले हँसी-ठट्ठा, प्रेमालाप, स्पर्श, चुम्बन आदि द्वारा स्त्रियो की काम-वृत्ति को जाग्रत कर ले। केवल काम-प्रवृत्ति ही जाग्रत करे, यह बात भी नहीं है; स्त्री के प्रेम को भी जाग्रत कर लेना चाहिए तथा जिस समय स्त्री का चित्त प्रसन्न हो और पुरुष के अनुकूल हो, केवल उसी समय इस काम में हाथ लगाना चाहिए।

बिना ऐसा किए आप सबल होने के कारण स्त्री पर अत्याचार कर सकते हैं; लेकिन उसके प्रेम पर अधिकार नहीं कर सकते; उसके शरीर को आप ले सकते हैं, मन को नहीं। किन्तु जब तक आपको उसका मन न मिले, प्रेम न मिले, तब तक आपका दाम्पत्य जीवन सफल या सुखी नहीं हो सकता।

स्त्री तथा पुरुष के गुह्याङ्गों पर, जिनका चित्र अलग दिया गया है, दृष्टिपात करने से पता चलेगा कि सम्भोग के लिए स्त्री-पुरुष आमने-सामने तथा स्त्री का नीचे एवं पुरुष का ऊपर रहना ही स्वाभाविक, सरल नियम है। यह बात बड़े मार्के की है कि समस्त प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो सम्भोग के समय एक-दूसरे का सामना करता है। इसीसे स्पष्ट है कि मनुष्य का यह कार्य पशु-पक्षियों की तरह केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए नहीं, वरन् आत्मिक मिलन एवं शान्ति-प्राप्ति के लिए भी है। यह केवल काम-वासना की ही पूर्ति नहीं, वरन् प्रेम की पूर्ति भी है। सम्भोगालिङ्गन में पति-पत्नी के नयन मिल जाते हैं और उनसे सम्भोग-जनित अपूर्व सुख एवं शान्ति की आभा प्रस्फुटित होने लगती है, जिसमें पारस्परिक आत्म-समर्पण द्वारा दो आत्माएँ एक हो जाती हैं। मनुष्य का यह कार्य केवल शारीरिक मिलन ही नहीं, वरन् दो हृदयों तथा दो आत्माओं का सम्मिश्रण या एकीकरण भी है। इस रहस्य को समझ लेने पर भी पति-पत्नी के इस मिलन को गन्दा, सदोष या पाप कहना बेवकूफी है। यह एक पवित्र कार्य है, सामाजिक तथा मानुषिक कर्त्तव्य है, जिसमें आध्यात्मिकता का भी अभाव नहीं है।

इस कार्य को अधिक स्पष्ट कर लिखना या इसका चित्र देना व्यर्थ है। जितना कुछ लिखा गया है, वही इशारा काफी है। इसके अलावा सुविधानुसार प्रत्येक जोड़ा इसमें

(असली आकार)

वृद्धि-क्रम—चौथा महीना

थोड़ा-बहुत ऐसा परिवर्त्तन कर सकता है, जो उनकी शारी-रिक रचना के लिए मुफीद हो। लेकिन इस कार्य में कोई ऐसा तरीक़ा काम में न लाना चाहिए, जिससे स्त्री को अरुचि या वेदना हो। लज्जा, भय, शोक, आवेग, वेदना या शारीरिक असुविधा से इस कार्य का आनन्द भङ्ग हो जाता है तथा इसका उद्देश्य सफल नहीं होता। इसके अलावा यह एक ऐसी बात है, जिसमें प्रकृति तथा हमारा सहज-ज्ञान (instinct) हमें काफी मदद देता है। मेकडॉगल (Macdougal) नामक विद्वान् का कथन है कि बिना किसी तरह का ज्ञान प्राप्त किए या समाचार पाए हुए भी जिस समय यौवन पाकर काम-वासना प्रबल होगी, उस समय कोई भी युवक इस कार्य को करने में आप से आप सफल हो जायगा।

इस प्रकार जब दो स्त्री-पुरुष विवाहित अधिकार से युक्त होकर, एक-दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण करने के बाद प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्वक स्वाभाविक आसन से, अभय होकर, अनुचित लज्जा त्याग कर, एकान्त में निर्द्वन्द्व भाव से मिलेंगे तथा मिताचार का पालन करते रहेंगे, तब कोई कारण नहीं दीखता कि उन्हे स्वास्थ्य की हानि हो या और किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़े। उलटे इसमें उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा। सदाचार एवं मानसिक पवित्रता बढ़ेगी और उनका आचरण ठीक रहेगा तथा समाज में

सुख-शान्ति की वृद्धि होगी और देश में योग्य नागरिक पैदा होंगे।

समय

विद्वानों की राय है कि शीतकाल में इच्छानुसार, हेमन्त में विषय-वासना चरितार्थ किए बिना जब रहा न जाय तब अर्थात् शीतकाल से कम, वसन्त, वर्षा और शरद ऋतु में सप्ताह में दो बार और ग्रीष्म-ऋतु में अधिक से अधिक मास में दो या तीन बार। लेकिन यह तो साधारण नियम हुआ, इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अन्य नियमों को ताक़ पर रख कर प्रत्येक जोड़े को इतने बार सम्भोग अवश्य ही करना चाहिए। इसका केवल यही अर्थ है कि अच्छी से अच्छी अवस्था में भी इससे अधिक सम्भोग न करना चाहिए।

यह तो हुई ऋतुओं की बात, अब हम समय पर भी विचार करेंगे। पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि सुबह सात से दस बजे तक का ससय सहवास के लिए उत्तम है। शायद वहाँ की जलवायु के लिए यह बात उपयुक्त हो, लेकिन भारतवर्ष के लिए यह नियम स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। इसके अलावा यह समय सबके लिए—साधारण गृहस्थों के लिए—अन्य कामों में बिताने का है। शायद ही किसी भारी रईस या राजा-महाराजा के लिए यह समय

सुविधाजनक सिद्ध हो। इसके अलावा सहवास के बाद का कुछ समय आदमी को आराम करने में बिताना चाहिए तथा सहवास के समय इस बात की चिन्ता न होनी चाहिए कि इसके बाद अमुक काम मे जाना है, जल्दी से इस काम को निबटा डालो।

इन सब बातों पर विचार करने से तथा ऋतु एवं जल-वायु पर ध्यान देने से इस देश के लिए रात्रि का ही समय उपयुक्त जान पड़ता है, और यहाँ के प्रायः सभी आचार्यों ने रात्रि का ही समय इस कार्य के लिए उपयुक्त भी ठहराया है। भारतीय विद्वानों की राय है कि दिन के समय इस कार्य के करने से जीवन-शक्ति क्षीण होती है।

किसी-किसी की राय यह भी है कि शीत-काल में रात्रि के समय, शरद्-ऋतु में जब विषयेच्छा हो तब, और वसन्त-ऋतु में दिन या रात—किसी भी समय, वर्षा-ऋतु में मेघ-गर्जन के समय और ग्रीष्म-ऋतु में दिन को स्त्री-सम्भोग करना चाहिए।

लेकिन हम तो यही कहेंगे कि सर्व-साधारण के लिए यह सुविधाजनक नहीं। उनके लिए तो रात्रि का ही समय उपयुक्त एवं लाभप्रद है।

इस सम्बन्ध में एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, जिसे हम पहले भी लिख आए हैं। भोजन तथा इस कार्य में कम से कम तीन-चार घण्टे का अन्तर अवश्य

पड़ना चाहिए; क्योंकि यह कार्य उसी समय किया जा सकता है, जिस समय स्त्री-पुरुष की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति ठीक हो और उनके शरीर तथा मन में एकाग्रता हो- चित्त प्रसन्न हो। एक-दूसरे के प्रति पूर्ण अनुराग एवं आकर्षण तथा अनुकूलता हो, कोठा हलका हो, शरीर सतेज हो, सुस्ती न हो और क्लान्ति न रहे। भोजन करने के बाद शरीर की शक्तियाँ भोजन पचाने के कार्य में लीन रहती हैं और शरीर कुछ सुस्त और भारी सा हो जाता है, आराम करने की तबीयत चाहती है और किसी काम में मन ठीक से नहीं लगता। ऐसे समय में इस कार्य में लगना अनुचित है, किन्तु इस अभागे देश में तो लोगों के लिए यही अनियमित, अनुचित सम्बन्ध दैनिक क्रम सा हो रहा है। लोग भोजन अक्सर नौ बजे रात तक करते हैं और सोने के पहले ही अन्य आवश्यक दैनिक कामों की तरह इस काम से भी निपट कर दस बजते-बजते सो जाते हैं।

आप ही सोचिए, इतने कम समय में इसके सिवाय कि शयन-गृह में पहुँचते ही वे इस काम में जुट जायँ और क्या कर सकते हैं! वेश्या के यहाँ जाने पर तो झख मार कर उन्हें कुछ समय तक खुशामद कर उसे राजी करना पड़ता है, लेकिन अपनी पत्नी के लिए वे ऐसा करना आवश्यक नहीं समझते। वह उनकी दासी ठहरी। उसका तो यह फर्ज है, उन्हें—पतिदेव को—अन्ध वधिर क्रोधिहुँ अति

ना को—सब तरह सन्तुष्ट रखना और बिना कान फट-
गए उनकी वैध, अवैध, अमानुषिक, पाशविक राक्षसी—
भी आज्ञाओं को मानना। जिस देश में मातृत्व का इतना
र अपमान होता हो, यदि उसको सन्तान ही न हो,
सकी अवनति न हो तो किसकी हो ? अस्तु—

लोगों की भोजन-सम्बन्धी सुविधा का तथा अवकाश
ा ध्यान रख कर शास्त्रकारों ने रात्रि का द्वितीय प्रहर याने
ौ बजे के बाद का समय इस कार्य के लिए उपयुक्त बताया
। यह समय ऐसा है, जब अधिकांश लोगों को भोजन
कए लगभग दो घण्टा हो गया रहता है और उनके प्रायः
भी दैनिक कार्य समाप्त हो गए रहते हैं। उन्हें इस काम
े लिए काफी समय रहता है और उसके बाद कोई
आवश्यक काम करने की जल्दी नहीं पड़ी रहती। नौ बजे
े तीन बजे तक का समय इसके लिए उपयुक्त है। सुविधा-
ुसार इस बीच जिसकी जब इच्छा हो, इस कार्य में
लग जाय।

सोने का स्थान तथा उसकी सजावट

बहुत से काम-विज्ञान के मर्मज्ञों का कथन है कि सम्भोग
के लिए उपयुक्त स्थान है प्राकृतिक शोभा से युक्त रम्य
वनस्थली या उद्यान। और यह काम तब होना चाहिए, जब
कि प्रकृति-अवलोकन से चित्त प्रफुल्लित हो। इस बात को

स्वीकार कर लेने पर भी ऐसे स्थान की उपलब्धि का सौभाग्य दीन भारतवासियों को कहाँ मिल सकता है ? हाँ, काश्मीर-प्रान्त के निवासियों या गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में निवास करने वाले लक्ष्मी-पुत्रों, राजा-महाराजाओं की बात दूसरी है। महाभारत-काल या रामराज्य के प्राचीन भारत की बात छोड़िए, हमें तो प्रत्येक बात में समय और परिस्थिति से युद्ध करना पड़ता है। अस्तु, परिस्थिति के अनुसार, जहाँ तक हो सके, हमें अपने शयनागार को मनोरम बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक कमरे में दो दम्पतियों का परदा डाल कर सोना बहुत ही खराब है। जहाँ तक हो सके—लाचारी की दूसरी है—सोने का कमरा अलग हो। उसमें न तो कोई दूसरा ही शयन करे और न वह कमरा किसी दूसरे काम के लिए उपयोग में लाया जाय।

सोने का कमरा साधारण तौर पर काफी हवादार होना चाहिए। अक्सर भारतीय घर तो बहुत अच्छा बना लेते हैं, उसमें रुपया भी काफ़ी लगाते हैं, लेकिन उसे काफ़ी हवादार बनाने की चेष्टा नहीं करते। उसमें केवल एक दरवाजा रखते हैं। खिड़कियाँ नहीं रखते। यह बात स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है। मनुष्य को हर समय तथा विशेषकर सोने की हालत मे काफ़ी हवा अवश्य मिलनी चाहिए।

यदि ज़मीन कच्ची हो तो उसे हफ्ते में कम से कम एक बार गोबर और मिट्टी से लीपना चाहिए और प्रतिदिन बुहार कर साफ कर डालना चाहिए। यदि ज़मीन पक्की हो तो उसे कम से कम हफ्ते में दो बार पानी से धो डालना चाहिए तथा प्रतिदिन झाड़-बुहार कर साफ रखना चाहिए। यदि रोज़ कुछ सुगन्धित पदार्थ जला कर स्थान शुद्ध कर लिया जाय तो और अच्छा है। दीवारो को भी साल में दो बार लिपा डालना चाहिए। इससे सोते समय साफ हवा मिलेगी, चित्त प्रसन्न रहेगा, मच्छड़ आदि न सताएँगे और सुख की नींद आएगी। केवल सोने के कमरे में ही नहीं, पूरे घर में इन बातों का ख़्याल रखना चाहिए। कमरे को जहाँ तक हो सके, अच्छे चित्रों तथा सजावट के सामानो से सजा कर रखना चाहिए। कोई ऐसी चीज़ कमरे में न रहे, जिसके भद्दे आकार-प्रकार या गन्दगी से चित्त में खेद या ग्लानि पैदा हो। कमरे की सफाई और सजावट सुरुचिपूर्ण तथा ऐसी हो कि चित्त उस कमरे में प्रवेश करने के बाद हरा-भरा एवं प्रसन्न रहे।

कमरे का ज़रा एकान्त में होना आवश्यक है, जिससे समय-असमय वहाँ गुरुजनों का आगमन न हो और दम्पति के वार्तालाप या स्वच्छन्दता में बाधा न आया करे। लज्जा तथा उद्वेग का पैदा होना या स्वच्छन्दता में कमी आना आनन्द का बाधक है।

शय्या

दम्पति का शयन-गृह विलास-भवन है। अस्तु, जहाँ तक हो सके, वहाँ की चीज़ें आरामदेह होनी चाहिए। शय्या कोमल और गुदगुदी हो, जिससे उस पर पहुँचते ही चित्त प्रफुल्लित हो उठे। उस पर बिछाने का बिस्तर साफ हो। अक्सर लोग गद्दा तो बहुत क़ीमती एवं मज़ेदार बना लेते हैं, लेकिन उसकी सफाई पर यथेष्ट ध्यान नहीं देते। सोते समय शरीर से पसीना निकलता है, बाहर का गर्द-गुबार भी पड़ा करता है, जिससे बिस्तर मैला हो जाता है। गद्दे आदि को सदैव ढँक कर रखना चाहिए और उस पर बिछाने की चद्दर को हर हफ्ते धुला डालना चाहिए तथा बिस्तर पर पैर साफ करने के बाद चढ़ना चाहिए। बहुत ऊँचे तकिए का व्यवहार भी हानिकर है। तकिया कड़ा नहीं, वरन् लचीला और मुलायम होना चाहिए।

सहशयन

इस पर विद्वानो की दो राय है। एक का कथन है कि साथ सोने से लाभ होता है। उनका कहना है कि स्त्री-पुरुष के शरीर में भिन्न-भिन्न विद्युत् रहती हैं, जो एक-दूसरे के स्पर्श से खिंचती है। इसीलिए स्त्री का अङ्ग स्पर्श करने से पुरुष में तथा पुरुष का अङ्ग स्पर्श करने से स्त्री में उत्तेजना तथा कम्प पैदा होता है। साथ सोने से यह आक-

ज़च्चा और बच्चा की करुण दुर्दशा

र्षण घट जाता है तथा उसमें चेतना-शक्ति (Sensitive-ness) कम हो जाती है, जिससे पुरुष संयमी होता है ; और स्त्री के स्पर्श-मात्र से ही उसमें ऐसी काम-भावना नहीं जाग्रत होती, जिसे वह रोक न सके।

दूसरे का कथन है कि एक साथ सोने से पुरुष तथा स्त्री की विद्युत-शक्ति एकदम नष्ट हो जाती है और फिर उनमें एक-दूसरे के प्रति वह आकर्षण, वह खिंचाव नहीं रह जाता। एक साथ सोने से स्त्री-पुरुष सदैव काम का ही चिन्तन किया करते और अति-मैथुन में प्रवृत्त होते हैं।

ख़ैर, प्रत्येक व्यक्ति को इस सम्बन्ध में अपने इच्छानुसार निर्णय कर लेना चाहिए, पर दो-चार बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। यदि एक साथ सोने से उनकी काम-प्रवृत्ति बहुत प्रबल रूप से जाग्रत हो जाती हो और वे अति-मैथुन के चङ्गुल में फँस रहे हों तो उन्हें अलग-अलग बिस्तर पर सोने का प्रबन्ध करना चाहिए। स्त्री के गर्भवती होने पर भी अलग सोने की व्यवस्था करनी चाहिए ; क्योंकि उस दशा में स्त्री को पुरुष के साथ सोने में तकलीफ होगी और काफी स्थान न मिलेगा। फिर एक साथ सोते रहने से सम्भोग-कार्य भी कभी-कभी आवश्यक हो पड़ेगा।

जब कभी भी स्वास्थ्य या किसी दूसरे कारण से सम्भोग वर्जित हो जाय, तब फौरन ही अलग सोने की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। लेकिन आमतौर पर हर समय

के लिए अलग-अलग सोना शायद अधिकांश दम्पति स्वीकार न करें। उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बिस्तर काफ़ी बड़ा हो, जिससे एक साथ सोने पर उन्हें किसी प्रकार की शारीरिक असुविधा न पड़े और जहाँ तक हो सके, दोनों के मुँह अलग-अलग या विपरीत दिशा में रहें, जिससे एक दूसरे का त्यागा हुआ श्वास भीतर न खींचने लगें; क्योंकि वह दूषित वायु है तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। लेकिन इसका यह मतलब हर्गिज़ नहीं है कि वे सोते हुए कभी भी एक-दूसरे का आलिङ्गन न करें या अलग-अलग बिस्तरे पर अलग-अलग कमरों में शयन करने लग जायँ।

एक साथ सोने से एक लाभ भी होता है। ऐसे बहुत कम दम्पति होंगे, जिनमें कभी-कभी कलह या मनोमालिन्य न हो जाता हो। कलह तो कभी-कभी हमारे प्रेम की शिथिलता को दूर करता और उसमें नया जीवन लाता है। अस्तु, कलह के बाद एक बिस्तरे पर रह कर दम्पति अधिक देर तक चुप्पी साधे नहीं रह सकते। धीरे-धीरे वे किसी न किसी बहाने छेड़खानी करने लगते हैं और बातचीत होने लगती है। फिर वे एक-दूसरे के आलिङ्गन में बद्ध हो जाते हैं।

व्यक्तिगत सफ़ाई

बिस्तर तथा कपड़े की सफ़ाई पर ध्यान देकर भी बहुत से व्यक्ति अपने शरीर की सफ़ाई तथा कपड़ों की सफ़ाई

ध्यान नहीं देते। पति-पत्नी दोनों को अपनी सफाई तथा
रता का ध्यान रखना चाहिए। रूपवान् व्यक्ति मलि·
के कारण कुरूप दीखने लगता है और लोगों के मन
णा पैदा करता है, जिससे लोग उससे दूर रहने की
शिश करते हैं। इसके विपरीत कुरूप भी सफाई से रहने
आकर्षक हो जाता है। सफाई केवल स्वास्थ्य के लिए
नहीं, वरन् चित्त की प्रफुल्लता तथा आपस के आक-
के लिए भी आवश्यक है।

स्त्रियों को घर के काम-काज बहुत करने पड़ते हैं, इसी
ए उनके कपड़े अक्सर मैले हो जाते हैं। उन्हें इस बात
विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उन पर दूसरो का आक-
त या मोहित होना जितना ही लज्जास्पद एवं घृणित है,
तके पति का आकर्षण उनके लिए उतना ही आवश्यक और
माज के लिए मङ्गलदायक है। यदि वे अपने पतियों को
पनी ओर चुम्बक की तरह खींच कर रखने में समर्थ हो
कें तो बहुत सा व्यभिचार बन्द हो जाय और स्त्रियो का
विन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ करे।

जहाँ तक हो सके, पति-पत्नी साफ तथा चित्ताकर्षक
स्त्राभूषण से सज कर शयन-गृह में प्रवेश करें। सोने के
समय साफ तथा हलके कपड़े पहनना तो स्वास्थ्य की दृष्टि से
भी आवश्यक है।

शरीर की पवित्रता पर, विशेष कर गुह्याङ्गों की सफाई

पर, कई बार ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। फिर भी इतना ध्यान रहे कि उनका साफ रहना भी चित्त की प्रसन्नता तथा स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि मुख का। अक्सर लोग उन्हें महीनों साफ नहीं रखते, जिससे उनमें इतनी बदबू पैदा हो जाती है कि उनके खुलने पर तथा वहाँ से हवा आने पर क़ै करने की तबीयत हो जाती है। ऐसी दशा में चित्त कैसे प्रसन्न होगा?

उपर्युक्त बातों तथा आवश्यक आचारों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जायगा कि पर-नारी-गमन तथा व्यभिचार में वे सुविधाएँ कभी मिल ही नहीं सकतीं, जो न केवल स्वास्थ्य के लिए, वरन् सम्भोग को आनन्दपूर्ण बनाने के लिए तथा इस कार्य की पूर्ण सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। ऐसी दशा केवल नैतिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सभी प्रकार से दूषित एवं हानिकर है।

अन्त में एक आवश्यक बात पर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर, यह प्रकरण समाप्त करेंगे। विवाह-प्रकरण में यह अच्छी तरह बताया जा चुका है कि आदर्श विवाह बहुत कठिन है, जिसे पा सकना सबके भाग्य में नहीं लिखा है। तब वह कौन सी चीज़ है, वह कौन सा साधन है, वह कौन सा बीज-मन्त्र है, जिसके ज़रिए साधारण लोग अपनी कमियों को पूरी करने की तथा सुखी होने की कोशिश करें? वह है प्रेम।

प्रेम एक बहुत ही गोपनीय एवं पेचीदा विषय है, जिसे
मझने में बड़े से बड़े वैज्ञानिक तथा विद्वान् असमर्थ रहे हैं।
ह कब और कैसे पैदा होता है; कहाँ तथा किससे प्रेम करना
ाहिए, इस बात का ज्ञान किसी को नहीं हो सका। बड़े-
ड़े वैज्ञानिक तथा काम-शास्त्र के ज्ञाता भी अचानक प्रेम
े चक्कर में फँस गए हैं। काम-शास्त्र के जानने वालों में
ई का वैवाहिक जीवन असफल और प्रेम-शून्य रहा है।
न्हे पता न चला कि उनसे कहाँ, कैसे ग़लती हो गई।

यही कारण है कि नाना प्रकार की जाँच-पड़ताल तथा
ोटशिप (Courtship) के बाद होने वाले पश्चिमी देशों
े गान्धर्व-विवाहों में भी तलाक़ देने की नौबत आ ही
ाती है। बल्कि आज दिन तो इन तलाक़ों की संख्या
तनी बढ़ गई है कि वहाँ के नीतिज्ञ घबड़ा रहे हैं। इसके
विपरीत इस देश की बात ले लीजिए। यहाँ बिना वर-कन्या
की राय लिए, बिना एक-दूसरे का ज़रा भी परिचय हुए,
बिना दोनों के वय, मानसिक विकास, रुचि आदि का
विचार किए ही, विवाह द्वारा दो सर्वथा अपरिचित युवक-
युवती जन्म भर के लिए एक-दूसरे के साथ बाँध दिए जाते
हैं। लेकिन इस बात को कोई भी व्यक्ति स्वीकार नहीं कर
सकता कि पाश्चात्य दम्पतियों की अपेक्षा यहाँ के दम्पतियों
में कम प्रेम है। असफल तथा असन्तुष्ट जोड़े वहाँ भी हैं
और यहाँ भी। आपस में ऊँचे से ऊँचे प्रेम का दावा यदि

वहाँ वाले कर सकते हैं, तो यहाँ के लोग भी इस विषय में उनसे पीछे नहीं हैं।

क्या यह बात पूर्णरूप से इस विषय को साबित नहीं करती कि 'प्रेम' के रहस्य को समझने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। अस्तु, प्रेम विवाह के बाद भी पैदा होता है और यह कर्त्तव्य-जनित प्रेम है। लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि कर्त्तव्य-जनित प्रेम गान्धर्व प्रेम से भी अधिक दृढ़ एवं चिरस्थायी होता है।

हम अक्सर देखते हैं, जोड़े में भिन्नता है, फिर भी आपस के प्रेम के कारण वे सुखी हैं। ग़रज़ यह है कि वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए समानता की अपेक्षा प्रेम अधिक महत्वपूर्ण तथा ज़ोरदार साधन है। मान लीजिए कि स्त्री अधिक कामुक है और पुरुष क्षीण; लेकिन यदि उनमें प्रेम है तो स्त्री के मन में दूसरे पुरुष की चिन्ता न होगी। इसी प्रकार पुरुष की दशा भी समझिए। अब इसके विपरीत उदाहरण लेकर देखिए। स्त्री और पुरुष की काम-वासना समान है, लेकिन पुरुष परदेश चला जाता है, अब प्रेम के अभाव में स्त्री व्यभिचार के लिए उतारू हो सकती है।

कहने की ग़रज़ यह नहीं कि आप अन्य बातों का ध्यान छोड़ दीजिए। विवाह के पूर्व मिलान करने की कोशिश आप अवश्य करिए, लेकिन इस बात पर ध्यान रखिए कि

युवक-युवती का प्रेम सब कमियों तथा बाधाओं को विजय कर, उन्हें सुखी बना सकता है। अन्य बातों की अपेक्षा प्रेम का महत्व बहुत ऊँचा है।

इसके बाद दूसरी बात, जो हमें ध्यान में लानी चाहिए, यह है कि केवल प्रेम—ऐसा प्रेम जिसमें कर्त्तव्यभाव का मिश्रण न हो—चिरस्थायी नहीं रह सकता। पाश्चात्य देशों के गान्धर्वविवाह इसके सबूत हैं। कुछ दिनों तक दम्पति में ख़ूब चुहचुहाता हुआ प्रेम रहता है, वे अपने को सुखी समझते हैं, लेकिन शीघ्र ही उनका यह मोह भङ्ग हो जाता है—उनका प्रेम टूट जाता है। उनका प्रेम फट जाता है। कारण ढूँढ़ने पर आपको पता चलेगा कि प्रेम में कर्त्तव्य-भाव का शामिल न रहना ही इसका कारण है।

विवाह के पूर्व युवक युवती कल्पना-जगत् में रहते हैं। विवाह हो जाने पर वे देखते हैं कि यह जगत् तो कल्पना-जगत् से एकदम विपरीत है। उनकी प्रेमिका किसी उपन्यास की रँगीली नायिका नहीं, हाड़-मांस की सजीव पुतली है; जो प्रेम भी करती है, कलह भी करती है, सेवा भी करती है और निरादर भी करती है। उनका मोह भङ्ग होता है और वे असन्तुष्ट होकर एक-दूसरे को तलाक़ दे देते और अपने लिए दूसरा साथी ढूँढ़ने लग जाते हैं।

उन्हें यह बात न भूलना चाहिए कि इस कठोर संसार मे उनके लिए आदर्श साथी का मिलना कठिन ही नहीं,

असम्भव है। सम्भव है, उनका दूसरा साथी पहले साथी की अपेक्षा भी ख़राब तथा अनुपयुक्त हो।

कहने की ग़रज़ यह कि शादी करने के पूर्व आप जो मन में आए, कीजिए; जितना छान-बीन हो सके, कीजिए, जितना मिलान करते बने, कोजिए; लेकिन एक बार विवाहित हो जाने पर एक-दूसरे के जीवित रहने तक परस्पर कर्त्तव्य के विचार से प्रेम कीजिए।

अब असन्तोष करने का नतीजा यही होगा कि या तो आप जीवन भर सङ्गी की खोज करते रह जाइएगा या कुपथ में पैर दीजिएगा। विवाह के समय जो प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, उनका कुछ अर्थ होता है। एक बार की की हुई प्रतिज्ञा को महज़ ख़फ़ीफ़ सबबों से—साधारण कलह से—तोड़ने का हक़ सर्व-साधारण को दे देना, उन्हें अनाचार के लिए उत्तेजित करना तथा समाज में अशान्ति एवं असन्तोष को निमन्त्रण देना है।

आजकल प्रत्येक आदमी के असन्तोष का, समाज में इस प्रकार की उच्छृङ्खलता का तथा अनावश्यक उलट-पलट और हेर-फेर का क्या कारण है? लोग 'स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावहः' को भूल गए हैं। ईश्वर ने आपको जिस स्थान पर भेज दिया है, आपके संस्कार तथा पूर्व-कर्मों ने जिस परिस्थिति में, जिन लोगों के बीच में डाल दिया है, उसे आप एकाएक बदल नहीं सकते।
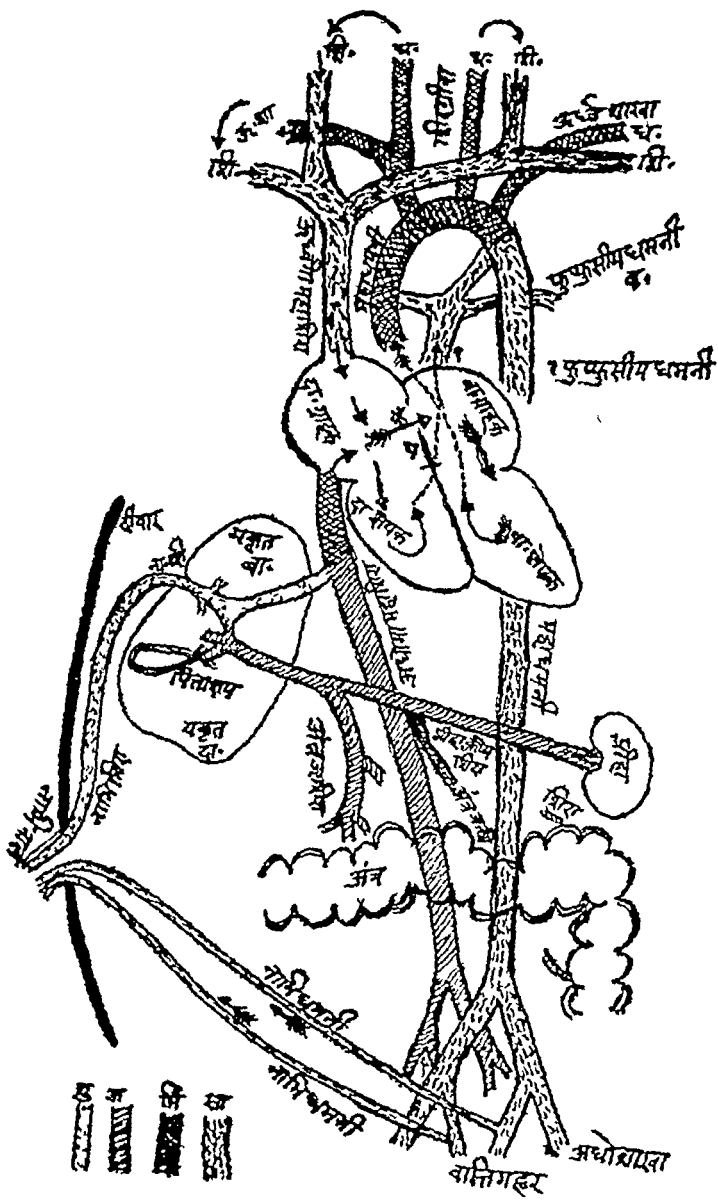
भ्रूण (गर्भ) का रक्त-सञ्चालन

एक भारतवासी अङ्गरेज़ नहीं बन सकता। तब भारत-वासी होने के कारण असन्तोष प्रकट करने से क्या लाभ? आपका कर्त्तव्य वैसी दशा में यही होगा कि भारतवासी रहते हुए आप जितने सुख, जितनी शान्ति, जितने आनन्द का लाभ कर सकते हैं—बिना किसी दूसरे को हानि पहुँचाए, बिना दूसरे की चीज़ पर आँख लगाए—कीजिए। सन्तोष का यह अर्थ नहीं है कि अगर आप १०) मासिक वेतन पाते हों तो १५) पाने की कोशिश न करिए। अर्थ केवल यही है कि अपने स्थान पर रह कर ही कोशिश करिए। वहाँ रह कर आपको कल २५) मिलने लगेंगे। पर यदि आप आज उसे, असन्तोष के कारण छोड़ देते हैं तो सम्भव है, कल आपको ५) ही मिलें या कुछ भी न मिले। इसलिए विवाह हो जाने पर एक-दूसरे के प्रति असन्तोष दिखलाना पुरुष तथा स्त्री दोनों के लिए हानिकर है। एक-दूसरे के काम में हाथ बँटाते हुए, एक-दूसरे की कमी को पूरा करते हुए, बिना असन्तोष दिखाए, कर्त्तव्य-भाव से एकदूसरे पर प्रेम करना चाहिए और मन को इधर-उधर न जाने देना चाहिए। फलाने का पुरुष बड़ा अच्छा है, फलाने की स्त्री बड़ी सुघड़-सुन्दर है, इस प्रकार मन का चञ्चल करना व्यर्थ है। तुम्हारे कर्मानुसार परमात्मा ने तुम्हें जो जीवन-सङ्गी या सङ्गिनी दे दिया है, उसी को लेकर सन्तोष से सुख भोगो और जीवन-यापन करो।

सन्तान-वृद्धि-निग्रह

जकल सन्तान-वृद्धि-निग्रह के विषय को लेकर विद्वानों में खूब द्वन्द्व हो रहा है। दोनों दलों में विद्वानों की कमी नहीं है और दोनों ओर से अपने-अपने पक्ष का समर्थन बड़े ज़ोरों पर तथा ज़ोरदार सबल युक्ति-सङ्गत तर्कों द्वारा किया जा रहा है। साधारण जनता के लिए यह तय करना कठिन जान पड़ता है कि वह किस पक्ष का समर्थन करे। एक ओर का तर्क सुनने पर वह उस ओर झुक पड़ती है तो दूसरे पक्ष की बात के सामने उसे अपना पक्ष बदल देना पड़ता है।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मनुष्य के हृदय मे काम-वासना उत्पन्न करने तथा स्त्री-पुरुष में पारस्परिक आकर्षण रखने में परमात्मा या प्रकृति का उद्देश्य यही है कि लोग इस कार्य द्वारा मानव-वंश की वृद्धि करें ; लेकिन प्राकृतिक

नियमों को पालन करने का उपदेश देना एक बात है और उसके अनुसार कार्य करना दूसरी बात।

प्रकृति की इच्छा यह नहीं कि आप आवश्यकता से अधिक भोजन कर अपच पैदा कर लें; प्रकृति की यह मन्शा कभी नहीं कि आप अपनी जीवन-शक्ति को इतनी क्षीण बना लें, जिससे आपको लक़वा मार जाय, प्रकृति की यह इच्छा कभी नहीं कि आप व्यभिचार करने लग जायँ और गरमी तथा सूज़ाक की बीमारी ग्रहण कर ले।

ये सारी की सारी बातें क्या बताती हैं? यही न कि प्रकृति के आदेशानुसार जीवन व्यतीत करना कठिन है? कम से कम आज तक तो हम सामूहिक रूप में ऐसा करने में सफल नहीं हुए हैं।

फिर प्रकृति ने ही तो मनुष्य को बुद्धि दी है। तब क्या मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग न कर, प्रकृति का मुँह देखते बैठा रहे? क्या मकान बना कर रहना, कपड़े पहनना, भोजन पकाना, अस्पतालो की दवा सेवन करना और मोटरों पर चढ़ कर घूमना सर्वथा प्राकृतिक है या प्राकृतिक वस्तुओं में अपनी बुद्धि लगा कर मनुष्य ने उन्हें तैयार किया है? फिर आप इन चीजों का क्यों उपयोग करते हैं? बम्बई से कलकत्ता जाते समय आप अपने सर्वथा प्राकृतिक पैरों का उपयोग क्यों नहीं करते? वर्षा के दिनों में छाता लगाए विना क्यों घर से नहीं निकलते? ज्वर हो आने पर किसी

डॉक्टर की शरण क्यों लेते हैं तथा कुनैन खाकर ज्वर को क्यों रोक देते हैं ?

जब आप सभी बातों में अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, प्रकृति और बुद्धि के मेल से नाना प्रकार के सामान तैयार कर उनका उपभोग करते हैं, तब केवल यहीं—सन्तानोत्पत्ति के समय—क्यों इतने प्रकृति-भक्त बन जाते हैं? यहाँ भी क्यो अपनी बुद्धि का उपयोग न कर, निरीह पशु बन कर चलने का प्रयत्न करते हैं ? सब बातों में प्रकृति के पीछे चलने में तो आप में और जानवरों में कोई अन्तर न रह जायगा। आपकी सारी सभ्यता दो दिनों में विलीन हो जायगी और बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना तथा तर्क का अन्त हो जायगा। ये ग्रन्थ भी तो प्रकृति तथा बुद्धि के मेल से निर्मित हुए हैं। बात यह है कि मनुष्य के लिए क्या प्राकृतिक है तथा क्या अप्राकृतिक : या मनुष्य किस सीमा तक प्रकृति को अपने वश में कर सकता है तथा किस सीमा तक उसे प्रकृति के दबाव में, नियन्त्रण में चलना चाहिए—इसका निर्णय आज तक नहीं हो सका है।

जब से मनुष्य की सृष्टि हुई है, तब से आज तक बराबर वह प्रकृति पर विजय पाने की कोशिश करता रहा है, और उसका यह प्रयत्न उस समय तक जारी रहेगा, जब तक उसका अस्तित्व रहेगा। ऐसी दशा में हमें केवल यही देखना चाहिए कि आज तक मानवी ज्ञान का जहाँ तक

विकास हुआ है, उसके अनुसार हमारा यह काम हमें फ़ायदा पहुँचाएगा या नुक़सान। सम्भव है, आज तक जो बात अप्राकृतिक समझी जाती थी, वह कल अप्राकृतिक न रहे। अपनी बुद्धि के बल से उस अप्राकृतिक बात पर मनुष्य अपना क़ब्ज़ा कर ले या प्रकृति-विजय में वह एक क़दम और आगे बढ़ जाय।

चेचक की बीमारी, प्लेग आदि में जो टीका लगाया जाता है, बहुत से लोग इसे अप्राकृतिक मानते हैं; लेकिन वे यह ठीक-ठीक नहीं बता सकते कि यह क्यों अप्राकृतिक है या इससे क्या हानि होती है? हज़ारों-लाखों मनुष्य इस प्रकार के टीका लगाते हैं, इसके विरुद्ध कोई आन्दोलन नहीं हो रहा है। सम्भव है, इससे हानि होती हो, लेकिन डॉक्टर कहते हैं फ़ायदा होता है। साधारण मनुष्य देखता है कि टीका लगाने से और चाहे कुछ भी हो, बीमारी से तो रक्षा होती है, वह इसे लगाना मञ्ज़ूर कर लेता है। यह निर्णय तो कठिन है कि इससे नुक़सान होता है या लाभ, और यदि नुकसान होता है तो क्या? जब तक उसे साफ़-साफ़ यह न मालूम हो जाय कि क्या नुक़सान होता है, तब तक तो वह निकट लाभ को ही देखेगा। इस बात की उसे चिन्ता नहीं रह सकती कि यह प्राकृतिक है या अप्राकृतिक। हम रोज़ इसी नियम का पालन करते हैं। यह मनुष्य-स्वभाव है और किसी भी दशा में आप मानव-स्वभाव की अवहे-

लना नहीं कर सकते। सुना है, किसी जर्मन-डॉक्टर ने वृद्ध एवं अशक्तों को नवयुवक बनाने का तारीक़ा निकाला है। पुरुष के अण्ड को निकाल कर फेंक देने के बाद उसके स्थान पर वे बन्दरों के अण्डों (Testicles) को लगा देते हैं और दो ही चार दिनों में पुरुष की क्षीण, निर्बल इन्द्रियों में यौवन का पौरुष लौट आता है। क्या आप सोचते हैं कि केवल आपके इसे अस्वाभाविक कह देने से लोग इसे त्यागने या इससे लाभ उठाने की कोशिश न करेंगे?

कहने का मतलब यह कि मनुष्य जिस प्रकार अन्य सभी बातों में अपनी बुद्धि का उपयोग कर, प्रकृति पर विजयी होता आया है और प्रकृति के भण्डार से अपने उपयोग के लिए नाना प्रकार की वस्तु तैयार करता आया है, उसी प्रकार वह सदैव ही करता रहेगा—इसे आप रोक नहीं सकते।

कुछ लोगों का कथन है कि इस उपाय के निकल जाने से याने उस समय, जब मनुष्य कौशल द्वारा सम्भोग करते हुए भी गर्भ-सञ्चार को रोकने में पूर्णतया सफल होगा, व्यभिचार बहुत बढ़ जायगा। हम इस तर्क को मानते हैं। लेकिन यह कोई कारण नहीं है कि हम अच्छे उद्देश्य से भी उन उपायों का अवलम्बन न करें या इस सम्बन्ध में खोज न करें।

ज़हर से लोगों की मृत्यु हो जाती है, इसके ज़रिए

लोग नर-हत्या करते पाए गए हैं, लेकिन इससे जीवन-रक्षा
भी होती है। तब क्या सिर्फ इसीलिए कि ज़हर का दुरुप-
योग हुआ करता है, हम उसका सदुपयोग भी न करें?
सौन्दर्य बहुधा लोगों के मन को चञ्चल कर देता है तथा
आततायी लोग सौन्दर्य से आकर्षित होकर नाना प्रकार के
अनाचार, उत्पात कर डालते हैं, तब क्या सौन्दर्यवान् या
सौन्दर्यवती होना कोई अपराध है? क्या इसके लिए किसी
सौन्दर्य-प्राप्त व्यक्ति को आप यह शिक्षा देंगे कि वह अपना
सौन्दर्य विनष्ट कर डाले? और यही क्यों, मनुष्य की काम-
वासना का संसार में कितना घोर दुरुपयोग हो रहा है, क्या
इसीलिए आप लोगों को यह शिक्षा देंगे कि लोग काम-
वासना को विनष्ट कर डालें? किसी वस्तु का दुरुपयोग
होगा, इसलिए उसका सदुपयोग भी न किया जाय, यह
आप नहीं कह सकते; और आप कितना भी कहें, प्रत्येक
चीज़ का इस संसार में सदुपयोग भी होगा, दुरुपयोग भी।
आप सोचिए, क्या ऐसी भी कोई चीज़ है जिसका संसार
में दुरुपयोग न होता हो?

तीसरी बात, जो इसके विरुद्ध बतलाई जाती है, वह
तो एक प्रकार की हत्या कही जाती है—अवश्य ही हत्या
है! लेकिन बिना हत्या के तो आपका जीवन एक क्षण के
लिए भी आगे नहीं बढ़ सकता। आप जिस समय साँस
लेते हैं, उस समय उसके धक्के से वातावरण के हज़ारों

कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जिस समय आप अपने घरों की, शरीर की या कपड़ों की सफ़ाई करते हैं, उस समय भी न जाने कितने प्राणियों की हत्या हो जाती है। आप जो प्रति दिन हज़ारों-लाखों की तादाद में मूली, गाजर, शलगम, गोभी आदि हरी चीज़ें हज़म कर जाते हैं, यह हत्या नहीं तो और क्या है ?

मान लीजिए, आपके पास एक गौ है। उसके किसी अङ्ग में घाव हो गया और उसमें कीड़े पड़ गए, अब आप क्या कीजिएगा ? कीड़ों की यदि आप हत्या नहीं करते, तो गाय मरी जाती है, जिसकी मृत्यु के लिए आप ज़िम्मेदार होंगे; क्योंकि आपने जान-बूझ कर उसे मरने दिया है। ऐसी दशा में आप क्या कीजिएगा ?

हत्या तो प्रकृति का प्रधान धर्म है। एक की हत्या से दूसरे की उत्पत्ति होती है। बिना हत्या के यह सृष्टि-क्रम एक क्षण के लिए भी न चल सकेगा—यह तो एक अनिवार्य कार्य हो रहा है।

इस सृष्टि की दूसरी प्रधान बात है स्वार्थ। स्वार्थ से ही, स्वार्थ के सहारे ही सृष्टि चल रही है। यदि आप स्वार्थ की रक्षा का ध्यान छोड़ दें, इससे हाथ खींच लें तो सृष्टि न चलेगी। ध्यान रखने की बात यही है कि आपका स्वार्थ परिमित हो, वह इतना न बढ़ जाय कि अनावश्यक रूप से जाकर दूसरे के स्वार्थ से टकराने लगे। फलतः वही हत्या

जानुप्रागवतरण

सम्पूर्ण शरीर निकलने के बाद सिर निकल रहा है

निन्दनीय है जो अनावश्यक है, याने जिसके बिना किए आपका काम चल सकता है और आपके स्वार्थ की रक्षा हो सकती है। हत्या के समय आपको निकृष्ट का नाश तथा श्रेष्ठ जीव की रक्षा का ध्यान रखना चाहिए। गाय श्रेष्ठ जीव है, इसलिए कीड़े को मार कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। बकरा श्रेष्ठ प्राणी है, इसलिए जब तक आपको मूली या गोभी मिले, तब तक बकरा न मारना चाहिए। यदि इस दशा में भी आप बकरा मारते हैं तो आपका यह कार्य अनुचित या पाप है। अस्तु—

गर्भ को रोकने में जीव-हत्या का ध्यान करना व्यर्थ है। यदि गर्भ का रोकना आपके लिए आवश्यक हो गया हो, केवल गर्भ को रोकना ही क्यों, जब कभी गर्भ के कारण गर्भिणी का जीवन सङ्कट में पड़ जाता है, तब तो धर्मात्मा से धर्मात्मा व्यक्ति भी गर्भ को चीर-फाड़ कर बाहर निकालते और गर्भिणी की रक्षा करते हैं; क्योंकि उस समय गर्भस्थित शिशु की अपेक्षा उसकी माता का जीवन श्रेष्ठ कोटि का है।

एक और तर्क इसके विरुद्ध यह पेश किया जाता है कि इन तरीकों को अधिकतर पढ़े-लिखे लोग ही काम में लाएँगे। इसका परिणाम यह होगा कि पढ़े-लिखे लोगों की सन्तान कम होगी। विद्या-व्यसनी लोगों की सन्तान कम होगी। विद्या-व्यसनी लोगों को एक तो योंही गँवारों

तथा शारीरिक परिश्रम करने वालों की अपेक्षा कम सन्ता
होती है, इस उपाय के अवलम्बन से संसार में बुद्धिमा
लोगों का तो अकाल ही पड़ जायगा। यह तर्क भी बिलकु
थोथा है। प्रायः सभी साधारण (Normal) दम्पति व
सन्तान की लालसा रहती है। वही प्रकृति, जो हमारे म
में काम का सञ्चार करती है, कुछ दिन तक वैवाहिक जीव
का आनन्द भोग लेने पर सन्तान-लालसा उत्पन्न करती है
अस्तु, बुद्धिमान् व्यक्तियों का अकाल पड़ जाने की क
सम्भावना नहीं दीखती। सम्भव है, इनकी संख्या थोड़ी-बह
कम हो जाय।

लेकिन इस कमी से लाभ ही होगा। लेखिका की रा
में तो इस युग में बुद्धिमानों की बहुलता आवश्यकता
अधिक हो गई है। लोगों को बुद्धि अजीर्ण हो गई है
संसार में आज दिन इतनी अशान्ति, इतने असन्तोष
एक प्रधान कारण है कि पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहु
ज्यादा हो गई है। उनके उपयुक्त न तो संसार में स्थान
और न उनके खर्च के लिए जितना रुपया चाहिए उत
रुपया। अतः इनकी संख्या घट जाने से संसार का सन्त
भी घट जायगा। इसके अलावा जिस प्रकार गज-समूह
लिए कुछ ही सिंह-बालक काफी हैं, उसी प्रकार ससार
सञ्चालन के लिए आज जितने बुद्धिमान् बढ़ गए हैं, उन
कम ही की आवश्यकता है। जिस प्रकार सिंह-शावकों

अत्यधिक बढ़ जाने से शिकार की कमी पड़ जाती है और उनमें आपस में ही छीना झपटी होने लगती तथा उनकी छीना झपटी से जिस प्रकार वन में त्राहि-त्राहि की पुकार मच जाती है, उसी प्रकार आज संसार की भी दशा है। पढ़े-लिखे लोगों की छीना झपटी से लोग त्रस्त हो चुके हैं। इस समय तो भगवान् कृष्ण की तरह यदुकुल के संहार करने की आवश्यकता है। अस्तु—

अब केवल यही देखना है कि गर्भ रोकने के लिए हम जिन उपायों का अवलम्बन करते हैं, उनसे हमें क्या नुक़सान या फायदे हैं। यदि नुकसान होता है, तो वह उस नुक़सान से, जोकि अनाप-शनाप बच्चे पैदा करने से होता है, कम है या ज्यादा, तथा किन-किन अवस्थाओं में हमें इन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए और उनमें कौन सा उपाय व्यावहारिक एवं लाभप्रद है ?

चाहे लोगों के विचार कुछ भी हों, पर ऐसे बहुत कम दम्पति होंगे, जो विवाहोपरान्त कुछ दिनों तक दाम्पत्तिक जीवन का सुख भोग लेने के बाद सन्तान की लालसा न करते हों। विवाह होते ही गर्भ रहने से भी दम्पतियों की भोग-लालसा अतृप्त रह जाती है और पुरुष अधिकांश में अपनी पत्नियो से उदासीन होकर व्यभिचार की शरण लेते हैं, तथा अधिक दिन सन्तान न होने पर भी उनमें सन्तान की लालसा ज़ोर मारने लगती है और अपनी सम्मिलित

असफलता के कारण वे एक-दूसरे से असन्तुष्ट होने लगे हैं। ऐसी दशा में कुछ दिनों तक गर्भ का रोकना तथा बा में गर्भ-सञ्चार होने देना ही लाभकारी है। सदा के लि गर्भ-सञ्चार रोक देने से हमारे पारस्परिक प्रेम की पवित्र एवं आध्यात्मिकता नष्ट होकर पाशविक लालसा मात्र र जाती है, जिससे आगे चल कर इस बात की बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि हम एक-दूसरे से विमुख हो जायँ और पतित भी हो जायँ।

उनके अपने लिए तथा समाज एवं जाति के सामूहि लाभ के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक दम्पति अपनी वित्त, सुविधा तथा रुचि के अनुसार एक, दो, तीन चार या दस सन्तान उत्पन्न करे। पहली बात तो यह कि बालकों की उपस्थिति तथा उनकी भलाई का ध्यान माता-पिता में निस्स्वार्थ एवं त्याग का भाव पैदा करता और उन्हे मितव्ययी, विचारशील, गम्भीर तथा शान्त बनाता है। दूसरी बात यह कि गर्भ के कारण तथा बालक की परिचर्या आदि मे ध्यान बँट जाने के कारण माता-पिता की काम-पिपासा सीमित एवं परिष्कृत हो जाती है और उनके स्वास्थ्य को लाभ होता है। सन्तानहीन दम्पति का अधिकांश समय अपनी काम-पिपासा की शान्ति एवं चिन्तन में तथा स्वार्थ-साधन में ही व्यतीत होता है। घर के काम-काज को बालक की उपस्थिति अधिक आकर्षक बना देती

है। लोगों का कहना भी है कि बिना बालक के घर की शोभा नहीं रहती। तीसरी बात यह कि सन्तान के कारण समाज से उनका सम्बन्ध अधिक घनिष्ट हो जाता है। अब तक वे संसार से अलग अपने में ही मस्त थे, लेकिन अब उन्हें संसार की पवित्रता का, समाज की उन्नति का ध्यान आता है; क्योंकि वे जानते हैं कि बुरे समाज द्वारा उनके सन्तान को हानि पहुँचेगी। सन्तान के लिए ही अधिकांश लोग सचाई तथा पवित्रता से परिश्रम करते और पाप से अलग रहते हैं। बात तो सच यही है कि यदि सन्तान पैदा न करना हो, तो लोगों को विवाह ही न करना चाहिए।

विवाह केवल उन्हीं को करना चाहिए, जो सन्तान की इच्छा रखते हों तथा जिन्हें योग्य सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य हो। योग्य सन्तान उत्पन्न करना जिस प्रकार प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार अयोग्य सन्तान की वृद्धि रोकना भी एक कर्त्तव्य होना चाहिए। पहले कर्त्तव्य का ध्यान तो अधिकांश लोग रखते हैं, लेकिन दूसरे का ध्यान कोई नहीं रखता; फलतः इसका परिणाम भी बुरा हो रहा है।

विवाह करने से लोग बाज़ नहीं आते। विवाह न करने पर भी लोग अपनी प्रबल वासनाओं को रोकने में समर्थ नहीं होते। और अयोग्य से अयोग्य व्यक्ति—अन्धे, लूले, लँगड़े, कोढ़ी, गर्मी तथा सूज़ाक के रोगी, पागल, मृगी-रोग

से पीड़ित, नाना प्रकार के अयोग्य व्यक्ति—सम्भोग-कार्य में रत होते और अयोग्य, अपाहिज नागरिकों की संख्या बढ़ाते हैं। इन लोगों के लिए सन्तान पैदा करना अधम है, अनीति है, पाप है; लेकिन काम-वासना को रोकना बेचारों की ताक़त के बाहर की बात है। ऐसा भी होता है कि विवाह के समय तो दोनों स्वस्थ हैं, लेकिन बाद में एक रोगी हो जाता है। दोनों में प्रेम है। ऐसी दशा में उनके लिए अपने को रोक रखना तथा एक लम्बी अवधि तक ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन ही नहीं, असम्भव हो उठता है।

कई दम्पति ऐसे हैं, जो हर तरह से स्वस्थ तथा योग्य सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हैं; लेकिन उनकी आय ऐसी नहीं कि एक या दो सन्तान से अधिक का लालन पालन वे कर सकें। तब आप ही बताइए कि वे क्या करें। सन्तान उत्पन्न करते जायँ और इसके बाद उचित सेवा शुश्रूषा न हो सकने के कारण पहले तो उनकी और बाद में माता की मृत्यु हो जाय या वे उनकी सीमा को रोक कर अपना जीवन सुखी बनाएँ और समाज को अपनी शक्ति के अनुसार एक या दो ही योग्य नागरिक दें? जल्दी-जल्दी गर्भ रहने से जो हानियाँ होती हैं, वे नीचे दी जाती हैं:—

१—जल्दी-जल्दी गर्भ धारण करने से स्नायु-सम्बन्धी दुर्बलता बढ़ती है और गर्भाशय कमज़ोर हो जाता है जिससे और भी अन्य रोग हो सकते हैं।

२—शीघ्र-शीघ्र सन्तान उत्पन्न करने से स्त्री को अपनी वह शक्ति, जो वह दस मास गर्भ धारण करने में तथा बालक को दूध पिलाने में ख़र्च करती है, पुनः प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता। वह बहुत दुर्बल हो जाती है और अवस्था के बहुत पहले उस पर बुढ़ापा आ जाता है या बीच ही में किसी रोग के आक्रमण से मृत्यु हो जाती है।

३—कमज़ोर माता भी यदि उचित अन्तर पर बच्चा जने तो उसका बच्चा, अपेक्षाकृत बलिष्ठ होगा। इसके विपरीत बलवान् माता भी यदि जल्दी-जल्दी बच्चा पैदा करे तो बच्चा दुर्बल होगा।

४—सन्तान के लालन-पालन में जो व्यय होता है, उस पर भी ध्यान देना चाहिए। बहुत बच्चों के होने पर न तो आदमी उनकी यथेष्ट सेवा कर सकता और न द्रव्य ख़र्च कर सकता है। अस्तु—

पिता को तो केवल ख़र्च ही जुटाना पड़ता है, लेकिन माता को तो अपने शरीर का सारभूत अंश ख़र्च करना पड़ता है, इसलिए कितनी सन्तान पैदा की जाय, इस सम्बन्ध में माता-पिता को ही—और विशेषकर पिता से बढ़ कर माता को ही—अधिकार होना चाहिए। और प्रत्येक माता-पिता के हाथो मे इसको सीमित करने का साधन देना समाज-पतियो तथा वैज्ञानिको का कर्त्तव्य होना चाहिए।

आज तक गर्भ को रोकने के तीन ही तरीकों का पता

लगा है—ब्रह्मचर्य, गर्भ-पात और कृत्रिम उपायों द्वारा वीर्य और डिम्ब के मिलन को रोकना।

ब्रह्मचर्य

अधिकांश लोगों की यही राय है कि गर्भ को रोकने के लिए सबसे अच्छा तरीक़ा है ब्रह्मचर्य। बीमारी को रोकने का सबसे अच्छा तरीक़ा है बीमार न पड़ना। लेकिन लोग तो बीमार पड़ते हैं; इनके लिए भी तो कुछ व्यवस्था होनी चाहिए। जो लोग इस तरीक़े का प्रतिपान करते हैं, वे मानव-स्वभाव की कमज़ोरियों को भूल जाते हैं, या उससे मुँह चुराते हैं। हम उन्हीं से पूछते हैं—अपने हृदय पर हाथ रख कर कहिए, आप कितने दिनों तक—क्या दो-चार साल तक—ब्रह्मचर्य रख सकते हैं?

शरीर से यदि ब्रह्मचर्य रह भी जाय, तो मन पवित्र रखना कठिन है। केवल शारीरिक ब्रह्मचर्य हानिकर है, जिसे पिछले प्रकरणों में हम साबित कर चुके हैं। फिर केवल आपके ब्रह्मचारी बनने से तो काम चलेगा नहीं। यदि आप पुरुप हैं तो आपकी पत्नी और यदि स्त्री हैं तो आपके पति की ज़िम्मेदारी भी तो इसमें शामिल है। यदि आपका जोड़ा तैयार नहीं है तो आपको ब्रह्मचर्य धारण करने का कोई हक़ नहीं है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित एक सच्ची घटना का ज़िक्र अनावश्यक न होगा :—
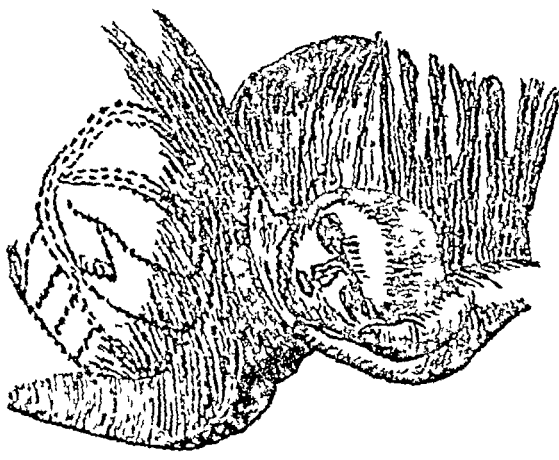
शिर का पहले निकलना (हैंडप्रेजेन्टेशन)
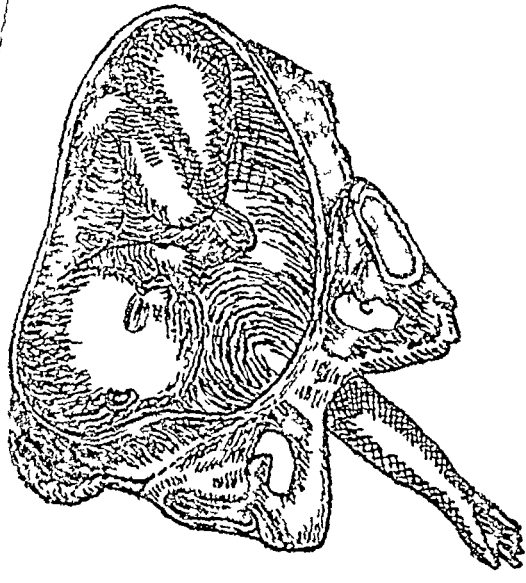
पार्श्वप्रागवतरण (ट्रान्सवर्स)

बालक का दाहिना हाथ आगे झुक कर पहले आ रहा है

"एक महाशय, जिनसे मेरा परिचय है, असहयोग-काल में ब्रह्मचारी बन गए। उनकी पत्नी की अवस्था उस समय २५ वर्ष की थी। उनका स्वास्थ्य भी अच्छा था और वे खासी युवती थीं। इसे मैं जानता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि वे महाशय सच्चे ब्रह्मचारी थे, केवल शारीरिक नहीं। साल भर तक कोई बात न हुई। उनकी पत्नी उनके साथ रहती थीं। साल भर के बाद ब्रह्मचारी महाशय जेल चले गए और अपनी पत्नी को अपने एक विश्वसनीय मित्र के हवाले कर गए।

"ब्रह्मचारी महोदय के आते-आते उनकी पत्नी तथा मित्र में प्रेम हो गया। ब्रह्मचारी महोदय को इस सम्बन्ध में अपनी ज़िम्मेदारी स्वीकार कर, लज्जित होना चाहिए था, लेकिन आश्चर्य है, इस क़दर शिक्षित, अहिंसात्मक असहयोगी होते हुए भी उन्होंने न तो अपनी ज़िम्मेदारी स्वीकार की और न लज्जित हुए, वरन् उन्होंने निर्दयता-पूर्वक उन दोनों को अलग किया और देवी जी को बरबस एक आश्रम में भर्ती करा कर ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए मजबूर किया। क्या यही अहिंसा है?"

लेकिन हमारा प्रतिपाद्य विषय अहिंसा नहीं है। हमें तो केवल यह दिखाना है कि जब दो आदमी मिल कर कोई प्रतिज्ञा या बात तय कर लेते हैं, तब दोनों की ज़िम्मे-दारी सम्मिलित हो जाती है और उनमें से किसी ए

दूसरे की मर्ज़ी के बरखिलाफ़ जाने का अधिकार नहीं रहता। अस्तु, दम्पति यदि ब्रह्मचर्य धारण करें तो आपस की मञ्ज़ूरी से ही, अन्यथा नहीं। उन्हें ऐसा करने का अधिकार नहीं है, और उनके इस कार्य से हानि भी है। यह तो एक सामाजिक पाप हुआ। ग़रज़ यह कि ब्रह्मचर्य धारण करना सबके लिए सम्भव नहीं, इसलिए यह उपाय अच्छा मान लेने पर भी अव्यावहारिक है।

गर्भपात

बीज से वृक्ष का महत्व अधिक होता है; क्योंकि पिता होते हुए भी बीज बालक है और वृक्ष सन्तान होते हुए भी पिता-पद पर प्रतिष्ठित या पिता-पद पर पहुँचने में अधिक समर्थ है। इसके अलावा गर्भ के साथ एक ऐसी भावुकता (Sentiment) जुटी हुई है कि लोग ऐसा करने के लिए याने गर्भ गिराने के लिए तैयार नहीं हो सकते। यद्यपि वीर्य भी सजीव कीटाणुओं का समूह है, लेकिन गर्भ उससे श्रेष्ठ जीव बन जाता है। इसलिए वीर्य को नाश करने की अपेक्षा गर्भ नाश अधिक ख़राब है। लोग नींबू के पचासो बीज फेक देंगे, लेकिन नींबू की—या किसी वृक्ष की—हरी डाल काटने मे सङ्कोच करेंगे।

वीर्य परमात्मा ने इस अधिकता में प्रदान किया है कि अधिक परिमाण मे नाश होते रहने पर भी उसकी बिलकुल

[क]मी नहीं होती। गर्भ के साथ यह बात नहीं है। प्रत्येक [स]म्भोग में हम न जाने कितने वीर्य-कीटाणुओं का नाश [क]रते हैं, तब एक और अधिक वीर्य के कीटाणु का नाश यदि हो गया तो क्या हानि हुई ? फिर जब हम वीर्य के कीटाणु को ही रोक कर काम चला सकते हैं, तब गर्भपात तो अनावश्यक और वर्जित हत्या हो गई। वह तो नर-हत्या से कम नहीं।

और गर्भपात से शारीरिक हानि भी कम नहीं है। इस साधन द्वारा तो हम जिस नुक़सान को रोकने जा रहे हैं, उससे अधिक हानि होने वाली है। पहिली बात तो यह कि इसकी कोई ऐसी अचूक दवा नहीं है, जिसके खिला देने पर यदि गर्भ नष्ट न हुआ तो उसके विकृत होने का भय न रहेगा। गर्भ, नाश हो जाने पर भी माता के स्वास्थ्य को इससे इतनी हानि होती है कि शायद वह फिर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ ही न करे। केवल यही नहीं, इस मार्ग के अवलम्बन से उसकी मृत्यु तक हो सकती है। ख़ुद होने वाले गर्भपात की अपेक्षा यह ज़बरदस्ती या कृत्रिम गर्भपात अधिक ख़तर-नाक एवं हानिकर है।

कृत्रिम उपायों द्वारा गर्भ-निरोध

इस उपाय का अवलम्बन करने वाले यह न समझें कि यह कोई अचूक दवा है। इन उपायो का अवलम्बन करते

हुए भी ऐसी ग़लतियाँ हो सकती हैं, जिनसे गर्भ रह जाय। गर्भ रोकने के लिए यह कोई अभेद्य कवच नहीं है। दूसरी बात यह है कि इससे कुछ न कुछ शारीरिक हानि भी होती है। इसलिए इन उपायों का अवलम्बन उसी दशा में किया जाय, जब कि गर्भ का रोकना अत्यन्त आवश्यक हो तथा उस हालत में भी प्रत्येक व्यक्ति को किसी विश्वासी डॉक्टर की राय ले लेनी-चाहिए और इस विषय पर ख़ुद दम्पतियों को अच्छी तरह ग़ौर से विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि इस विषय में अभी तक कोई स्पष्ट या वैज्ञानिक खोज नहीं हुई है और कोई भी व्यक्ति निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि इससे ज़रा भी हानि न होगी। इस सम्बन्ध में महिला-डॉक्टर मेरी स्टोप्स बहुत खोज कर रही हैं और वे इस विषय में प्रमाण (Authority) मानी जाती हैं। उन्हीं की राय यहाँ दी जाती है :—

१—डिम्ब-ग्रन्थियों को चीर कर निकाल फेंकना।

२—ऐसी दवा खा लेना, जिससे कि डिम्ब निर्जीव हो जाय।

३—रबर के थैले काम में लाना।

अन्य उपायों को हानिकर सिद्ध करते हुए इन्हें यहाँ उद्धृत करना आवश्यक नहीं जान पड़ता तथा ये स्पष्ट भी हैं। डिम्ब-ग्रन्थियों को निकाल देने से फिर कभी गर्भ रहेगा ही नहीं तथा औषधि खाने से अन्दरूनी क्रिया (System)

को हानि पहुँचने का डर है। डॉक्टर साहिबा थैलों (French leather caps) के विषय में कहती हैं कि ये थैले पुरुष-जननेन्द्रिय के आकार के होते हैं, जिन्हें पुरुष सम्भोग के समय अपनी जननेन्द्रिय पर चढ़ा लेता है। इससे वीर्य गिर कर इस थैले के अन्दर ही रह जाता है, योनि के अन्दर नहीं जा पाता और न डिम्ब (Ovum) से उसकी मुलाक़ात होती है। फलतः गर्भ नहीं रहता। लेकिन कभी-कभी सम्भोग करते-करते थैला फट जाता है और वीर्य के कीटाणु योनि के अन्दर घुस सकते हैं, क्योंकि यह थैला बहुत पतला और नाज़ुक होता है।

लेकिन इसके अलावा इसके उपयोग से एक भारी हानि भी होती है। मानव-शरीर या चर्म सजीव कीटाणुओं का समूह है, फलतः जननेन्द्रिय भी कीटाणु-निर्मित है। सम्भोग के समय इन सजीव कीटाणुओं का मिलन होता है, जिससे एक प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होकर हमें आह्लाद पहुँचाती और वीर्य-स्खलन जनित हमारे श्रम का नाश करती है। केवल यही नहीं, स्त्री-शरीर पुरुष-वीर्य को शोषण करता है और पुरुष-शरीर स्त्री-रज का, इस प्रकार दोनों को चर्म-घर्षण तथा शोषण से बहुत लाभ होता है और वास्तविक आनन्द मिलता है। इस थैले के उपयोग से ये लाभ न हो सकेंगे और यह सम्भोग हस्त-मैथुन की तरह नीरस एवं हानिकर हो जायगा। अस्तु, यह प्रणाली वर्जित एवं दूषित है।

वीर्यपात के ठीक पूर्व ही पुरुष-जननेन्द्रिय को निकाल लेना तथा वीर्य को बाहर गिराना भी एक साधन है।

बहुत से लोग इस तरीक़े को ख़ूब पसन्द करते हैं। उनका कहना है कि इससे कार्य-सिद्धि भी हो जाती है और गर्भ की सम्भावना भी नहीं रहती तथा किसी कृत्रिम उपाय का अवलम्बन भी नहीं करना पड़ता। इसमें पहली दिक़्क़त तो यह है कि पुरुष-जननेन्द्रिय के सिरे पर अक्सर कुछ वीर्य-कीटाणु पहले से मौजूद रहते हैं, उसके भीतर जाते ही ये कीटाणु योनि में चले जाते हैं। लोग कहेंगे, ऐसा नहीं होता। इसका उत्तर यही है कि ऐसे बहुत कम लोग हैं, या यों कहा जाय कि ऐसे लोगों का अभाव है, जिनकी इन्द्रिय-उत्तेजना (Erection) उनकी इच्छा के अधीन हो, याने ठीक समय पर ही वे अपनी इन्द्रिय को तैयार कर लें। अक्सर बीच-बीच में समय-कुसमय उत्तेजना हुआ करती है और इस प्रकार की कई उत्तेजनाओं के बाद सम्भोग का अवसर मिलता है। इन उत्तेजनाओं के समय एक प्रकार का पतला रस इन्द्रिय-द्वार से निकला करता है और उसी के साथ दो-चार वीर्य-कीटाणु भी बाहर निकल कर सिरे पर चिपके रहते हैं। कभी-कभी ये कीटाणु बहुत समय तक जीवित रह जाते हैं।

शयन-गृह में पदार्पण करते ही या उत्तेजना होते ही सम्भोग-क्रिया नहीं शुरू हो जाती—अक्सर इसमें कुछ

विलम्ब लग जाता है और तब तक उस पतले रस के साथ दो-चार कीटाणु बाहर निकल आते हैं। इसके दो-चार मिनट बाद ही इन्द्रिय-प्रवेश होता है और ये जीवित कीटाणु भीतर पहुँच जाते हैं।

यदि यह भी न हुआ तो सम्भोग के समय तो पतला द्रव्य अवश्य निकलेगा और उसके साथ दो-चार वीर्य-कीटाणु भी निकल कर योनि में दाखिल हो जायँगे, जिसे आप हर्गिज़ नहीं रोक सकते।

इसके अलावा ऐसे पुरुष बहुत कम हैं, जिनकी स्तम्भन-शक्ति स्त्रियों से अधिक हो। अक्सर पुरुष के स्खलन के बाद ही स्त्रियों का स्खलन होता है। अब इस प्रकार स्खलन के पूर्व इन्द्रिय को बाहर कर लेने से स्त्री का स्खलन होगा ही नहीं और ऐसा न होने से उसे भारी हानि होगी। आपसे भी ठीक पतन के समय उसे बाहर कर लेने का काम सध न सकेगा। उस समय मनुष्य शिथिल रहता या आनन्द में लीन रहता है। उसकी इच्छा तो यही होती है कि वह और भी कुछ देर इसी अवस्था में रहे। इसलिए वह पहले तो बाहर कर ही न सकेगा; और यदि किया भी तो न तो उसे सन्तोष होगा और न स्त्री को; बल्कि उलटे दोनों को कुछ अस्वस्थता तथा बेचैनी का अनुभव होगा और उनके मन में एक-दूसरे के प्रति असन्तोष होगा।

इस क्रिया में सबसे आवश्यक बात है, दोनों का

सन्तोष। आज जो हमारे घरों में इतना कलह और असन्तोष देखा जाता है, उसका प्रधान कारण यही है कि इस शास्त्र का ज्ञान न होने से हम न तो दूसरे का सन्तोष कर सकते हैं और न अपना। उस पर इस क्रिया का अवलम्बन करने से तो बात और भी बढ़ जायगी।

इसके बाद इससे वे हानियाँ भी होंगी, जिन्हें इसके पहले रबर-थैलों के सम्बन्ध में लिख आए हैं, याने वीर्य-शोषण से जो लाभ होता है, उससे हम वञ्चित रह जायँगे और ठीक उसी अवस्था में बाहर निकालना प्रायः असम्भव होने के कारण उसे कुछ समय—कम से कम आध मिनट—पहले निकालना पड़ेगा। बाहर आ जाने के बाद वीर्य आप से आप तो निकलेगा नहीं, वह रुक जायगा और हमें हाथ का सहारा लेना पड़ेगा याने हस्त-मैथुन करना पड़ेगा। रुक जाने से जो वीर्य योनि के अन्दर आध मिनट में निकल जाता, उसे निकालने के लिए कम से कम दो मिनट तक हस्थ मैथुन करना पड़ेगा। इस प्रकार इस क्रिया से बहुत हानि होती है और यह क्रिया ग्रहण करने लायक़ हर्गिज़ नहीं है, बल्कि इसके विपरीत वीर्यपात हो जाने पर जितनी देर तक हो सके या आपकी इन्द्रिय जितनी देर तक उत्तेजित (Ereet and hard) रह सके, उतनी देर तक उसे भीतर रख कर चुपचाप आराम से रहना चाहिए, जिससे शोषण क्रिया पूर्ण हो जाय; क्योंकि यह क्रिया पतन के बाद ही प्रारम्भ होती है।
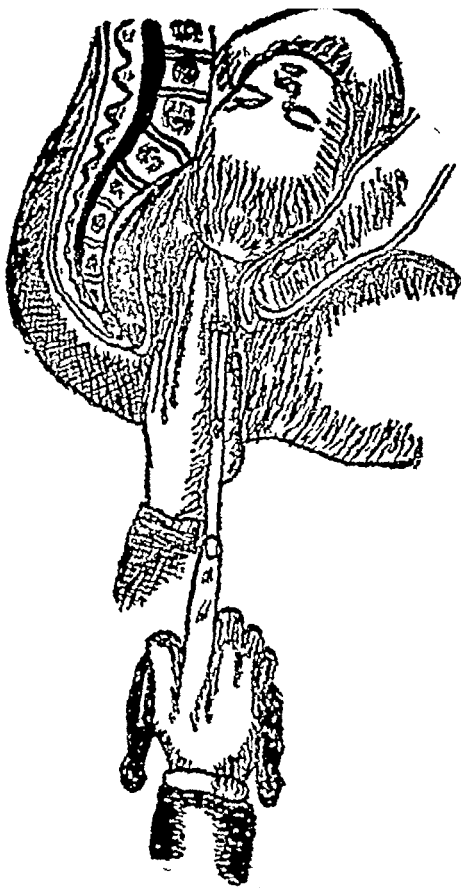
क्रेनियटमी क्रिया

पर्फ़ोरेटर शस्त्र द्वारा शिर को विदीर्ण करने की रीति

रबर की टोपी

डॉक्टर मेरी स्टोप्स साहिबा इस अन्तिम साधन के पक्ष में हैं। उनका कथन है कि यद्यपि यह साधन भी पूर्ण सन्तोषजनक तथा अचूक नहीं है, फिर भी आज तक जितने साधन निकले हैं, उन सब में यह उत्तम है। इसका नाम है अवरोध टोपी (Check pessary) और इनमें सबसे अच्छी टोपी है प्रोरेस मेक चेक पेसरी (Prorace make check pessary)।

नारी-जननेन्द्रिय-चित्र पर यदि आप ध्यान दें और उसका विवरण पढ़े, तो आपको पता चलेगा कि योनि की लम्बाई लगभग तीन इञ्च है और जहाँ पर उसका अन्त होता है, वहीं पर गर्भाशय का मुँह योनि के अन्दर घुसा हुआ है। यदि आप चाहें तो अपनी सबसे बड़ी उँगली वहाँ तक ले जा सकते हैं। एक पेसरी लेकर उसमें जरा सा तेल या वेसलिन लगाइए और टोपी का मुँह योनि की ओर करके उसकी पीठ पर उङ्गली जमा कर उसे धीरे-धीरे योनि के अन्दर सरकाइए। टोपी की पीठ पर एक धागा लगा रहता है, जिसे बाहर पड़ा रहने दीजिए। इस प्रकार सरकते-सरकते वह टोपी गर्भाशय के मुख पर पहुँच जायगी और उस पर जाकर बैठ जायगी। गर्भाशय का मुख इस U आकार का है और यह टोपी उस पर ठीक बैठने

लायक़ आकार की बनी रहती है, इसलिए यह गर्भाशय के मुख पर जाकर ठीक इस तरह बैठ जायगी जिससे आपका वीर्य गर्भाशय में जाने से बच जायगा। आवश्यकता के समय धागा, जो बाहर रह जाता है, उसके ज़रिए आप इस टोपी को बाहर खींच लेंगे। इस साधन के द्वारा आपको बहुत कम हानि भी होगी। आपस के सङ्घर्षण में भी बाधा नहीं आती और गर्भ भी रुक सकता है, तथा आपके आनन्द में भी अन्तर नहीं आता।

लेकिन इस टोपी को सम्भोग के बाद ही न निकाल लेना चाहिए। इसे सवेरे तक उसी प्रकार पड़ी रहने देना चाहिए। सवेरे उठ कर योनि को पिचकारी से गरम पानी और साबुन द्वारा ख़ूब धो डालने के बाद टोपी को निकालना चाहिए। सम्भोग के बाद तुरन्त बिस्तर छोड़ना या धोना-धाना हानिकर है। उस समय तो आराम से चुपचाप पड़े रहने में ही सुख मिल सकता है। योनि को नहीं धोने से सम्भव है, दो-एक वीर्य-कीटाणु भीतर घुस पड़ें। बहुत से लोग दो टोपियाँ रखते हैं। एक टोपी सदैव पहने रहते हैं, उसे निकाला और दूसरी पहन लिया। लेकिन हरदम गर्भाशय को ढँके रखना ठीक नहीं—उसे खुला भी रहने देना चाहिए। टोपी निकाल, साबुन से ख़ूब अच्छी तरह धोकर सुखा देना चाहिए। सूख जाने के बाद शाम को या बेहतर यह होगा कि ज़रूरत पड़ने पर इसे पहन

लेना चाहिए। इसका पहनना आसान है तथा स्त्री स्वतः विना पति की सहायता के पहन सकती है। इसके पहनने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।
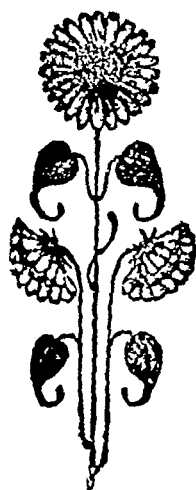
माता

के जीवन के दो भाग होते हैं—रमणी और माता। अभी तक जिन बातों का वर्णन किया गया है, उनका अधिकांश में रमणी से सम्बन्ध रहा है। अभी तक हमने रमणी के आचार-विचार एवं धर्म पर टीका-टिप्पणी की है। अब आगे के प्रकरणों में स्त्री के वास्तविक मातृ-धर्म पर विचार किया जायगा। स्त्री में जो रमणीत्व है वह गौण है, उसका प्रधान धर्म मातृत्व ही है। यदि वह अपने इस धर्म के महत्व को समझ कर अपनी ज़िम्मेदारी को योग्यतापूर्वक निबाहने लग जायँ, तो स्त्रियों की आज जो हीन दशा दिखाई दे रही है, वह एक ही दो पीढ़ी में दूर हो जाय, और

यदि उसके इस मातृत्व रूप को देखने में, समझ सकने में हम समर्थ हो जायँ तो आज स्त्री के सम्बन्ध में हमारा जो दृष्टिकोण है, वह बदल जाय।

हमारी शिक्षा में यों तो नैतिकता को कोई स्थान प्राप्त है ही नहीं, किन्तु स्त्री के सम्बन्ध में तो यह कमी हमें और भी खटकने लगती है। पश्चिम की अच्छी बात तो हम कम लेते हैं, पर बुरी बातों को बड़ी जल्दी अपना लेते हैं। पश्चिम में स्त्री के रमणीत्व की बहुत क़द्र हुई है, उसका रमणीत्व अवश्य ही हमारे देश की, इस समय की, दशा की अपेक्षा बहुत उन्नत है।

पश्चिम में प्रत्येक पुरुष का यह धर्म समझा जाता है कि वह स्त्री के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करे। यदि चार पुरुष किसी स्थान पर बैठे हों और यदि उन्हीं की कोटि की कोई महिला वहाँ आ जाय तो चारों पुरुष को अपना स्थान त्याग कर उस स्त्री का अभिनन्दन करना पड़ेगा। इस प्रकार की अभ्यर्थना उसके पति को भी करनी चाहिए। पति के लिए पत्नी को नहीं, वरन् आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के लिए पति को ही आसन लाकर बिछाना पड़ता है। यदि पति-पत्नी कहीं यात्रा कर रहे हों या बाज़ार में खरीद-फ़रोख्त कर रहे हों तो पति को ही बोझ लाद कर चलना पड़ेगा। यह क्या स्त्री का कम सम्मान है? लेकिन यह बात ध्यान में रहे कि यह सम्मान रमणीत्व का है, मातृत्व का नहीं।

हमारे देश में यह बात नहीं है। न तो हम उसके मातृत्व की इज्ज़त करते हैं और न रमणीत्व की। हमारे देश में प्रत्येक पत्नी का यह नैतिक धर्म है कि वह सोते समय पति की चरण-सेवा, शरीर-मर्दनादि करे। पति को देख कर, केवल पति ही नहीं, वरन् अपने से बड़े तथा समान एवं कई छोटों के सामने भी उसे आसन छोड़ कर सम्मान करना पड़ता है और दासी-भाव से व्यवहार करना पड़ता है। लेकिन स्त्री के सिर में असह्य पीड़ा होने पर भी पति उसका सिर नहीं दाब सकता, उसके बीमार रहने पर भी उसका सिर नहीं साफ़ कर सकता, और न कपड़े धो सकता है। ऐसा करने पर उसकी बड़ी हँसी होती है और लोग उसे 'मेहरा' या 'स्त्री का ग़ुलाम' की उपाधि से सम्मानित करते हैं।

कहने की ग़रज़ यह नहीं कि पत्नी पति की सेवा न करे। यदि उन दोनों मे प्रेम है तो वह हमारे मना करने पर भी अवश्य ही अपने पति की सेवा करेगी। किन्तु क्या पति का कुछ फ़र्ज़ ही नहीं है? पुरुष का स्त्री के प्रति कुछ कर्त्तव्य ही नहीं है? अवश्य है। ज़रूरत होने पर पति को भी पत्नी की सेवा करनी चाहिए। जिस तरह पत्नी पति पर श्रद्धा करती है, उसका सम्मान करती है, उसी प्रकार पति को भी उसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान का यह अर्थ हर्गिज़ नहीं है कि पत्नी के आने पर आप अवश्य ही अपना आसन त्याग

दें या पत्नी के एक गिलास पानी देने पर अवश्य ही उसे धन्यवाद प्रदान करें। सम्मान का अर्थ है किसी आदमी के गुणों को समझना, उसकी सेवाओं के महत्व को स्वीकार करना और उसे हेय न समझ कर उसका महत्व स्वीकार करना।

भाग्यवश अङ्गरेजी शिक्षा से स्त्री के प्रति दासी का भाव हमारे समाज से—विशेषकर शिक्षित-समाज से—दूर हो रहा है। अब हम स्त्री के प्रति सम्मान करना सीख रहे हैं, लेकिन हमारी दिशा ठीक नही है। आप अगर जिज्ञासु-भाव से अपने अन्तस्तल को टटोलिए तो पता चलेगा कि स्त्रियों के प्रति हमारा जो सम्मान है, उनके रमणीत्व का सम्मान है, मातृत्व का नहीं। स्त्री को माता समझने की, उसमें मातृत्व देखने की हम कोशिश नहीं कर रहे हैं, और उसका कारण यही है कि हमारा गुरु—हमारा आदर्श—पश्चिम है, हम तो उसी आदर्श की नक़ल कर रहे हैं।

यदि हमारे ध्यान में स्त्री के इस मातृ-रूप का मर्म आ जाय तो हमारा दृष्टिकोण बदल जाय। यदि हम इस बात को सोच सकें कि हमारी माता का भी यही शरीर है, यही रूप है तथा इसी गर्भ से हम पैदा हुए हैं, तो हमें स्त्री के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाय। स्त्री के अपमान में हमें माता का—अपनी माता का—अपमान दिखाई देने लगे। स्त्री का शरीर हमारे लिए काम-लालसा की

तृप्ति का साधन-मात्र नहीं, किन्तु एक पवित्र मन्दिर बन जाय। वह शरीर हमारी जननी का रूप एवं पवित्रता धारण कर ले, जिसके विरुद्ध आचरण करना, जिसका अपमान करना हमें घृणित दिखे और जिसकी रक्षा करना, जिसकी पवित्रता को बचाना तथा जिसके लिए अपने प्राण विसर्जन करना हमारा कर्त्तव्य हो जाय।

आज दिन हिन्दू-सङ्गठन का इतना हल्ला मचा हुआ है, तूफान आया हुआ है; फिर भी रोज अखबारों में खबर आती है—आज गुण्डे फलानी विधवा या युवती को उड़ा ले गए। यदि ऐसे मामलों का कोई चिट्ठा तैयार किया जाय तो हर माह में सारे भारत में इस प्रकार के मामलों की संख्या सैकड़ों तक पहुँचेगी। इसका क्या कारण है?

इसका उत्तर अपने दिल को टटोल कर निकालिए। प्रत्येक नवयुवक आज दिन स्त्री के रूप को देखते ही फड़फड़ा उठता है—उसके दिल पर बिजली दौड़ जाती है। क्यों? उसे स्त्री का पूरा रूप—समूचा शरीर—दिखाई ही नहीं देता। वह स्त्री को एक 'बिल' के रूप में देखता है। वह स्त्री के उसी अंश को देखता है, जिससे उसकी भोग-लालसा मिटती है—स्त्री उसके सामने सिवाय इन्द्रिय-तृप्ति की मशीन के और कुछ है ही नहीं। हमारी समझ में स्त्री का सिवाय इसके और कोई काम ही नहीं है कि वह हमारी काम-वासना को शान्त करे। उसकी पैदाइश केवल इसीलिए हुई
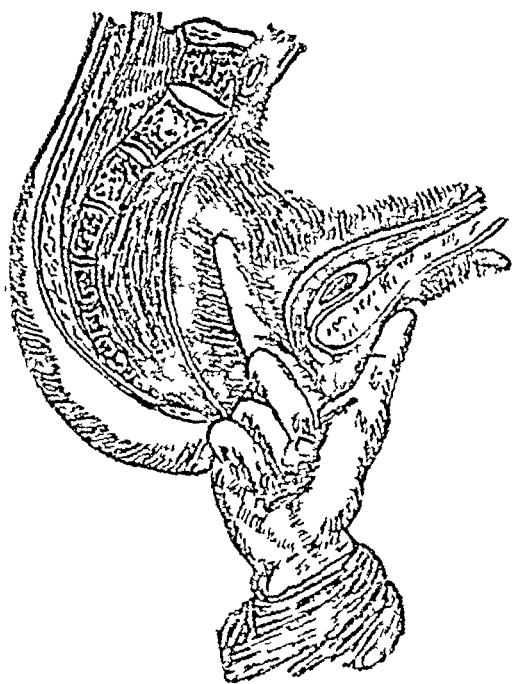
हाथ डाल कर योनि-मार्ग में सन्तान-परीक्षा

("एमनियम्" नामक थैली के फूटने से पूर्व)

है कि वह हमारी उत्तेजना को शान्त कर दे। इसके सिवाय न तो उसका कोई मूल्य है और न महत्व। मनुष्य के दृष्टि-कोण का इससे अधिक और क्या पतन हो सकता है? ऐसी दशा में यदि गुण्डे—वे गुण्डे, जिनमें न शिक्षा है न संस्कृति—इन्द्रिय-तृप्ति के लिए उसका बरबस उपयोग कर लेते हैं, तो उनका कोई भारी अपराध नहीं है। हम शिक्षित होकर ही जब स्त्री का इसके सिवाय कोई अधिक मूल्य नहीं समझते, तो गुण्डे यदि एक क़दम हमसे आगे बढ़ गए तो क्या बुरा हुआ? हमारे तथा उनके दृष्टिकोण में बहुत अन्तर तो है नहीं।

आपके घर में पहुँच कर दो पैसे मूल्य की सुराही या झाड़ू को कोई भी व्यक्ति—आपका नौकर भी—तोड़-फोड़ सकता है। वह जानता है कि इससे बाबू बहुत ज्यादा तो नाराज़ होंगे नहीं, दो पैसे मूल्य की वस्तु की क्या क़दर? और यदि हुए ही तो बहुत करेंगे क़ीमत ले लेंगे। लेकिन वह नौकर क्या, आपके घनिष्ट मित्र भी आपकी प्यारी २००) रुपए मूल्य की रिस्टवाच को तोड़ना तो दूर, बिना सम्मति लिए आपके टेबुल पर से उसे सरकाने की भी हिम्मत नहीं कर सकते। अपनी इज्ज़त अपने हाथ में है। जो आदमी अपनी इज्ज़त खुद करता है, उसकी इज्ज़त दूसरे भी करते हैं। जब आप ही अपनी माता की इज्ज़त नहीं करते, तब दूसरे उसकी इज्ज़त कैसे कर सकते हैं। यदि आज मालूम

हो जाय कि एक हिन्दू-स्त्री की इज़्ज़त बचाने के लिए १०० हिन्दू अपना ख़ून बहाने के लिए तैयार हैं, तो कल से हिन्दू विधवाओं तथा युवतियों की बेइज़्ज़ती बन्द हो जाय।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान की गति उलटी है—वह पत्ती से डाल पर और डाल से पेड़ पर तथा पेड़ से जड़ की ओर जाती है, जड़ से शुरू होकर पत्तियों पर नहीं पहुँचती। इसीलिए हम भी प्रत्येक बात में उलटा मार्ग ग्रहण करते हैं, जड़ में पानी न देकर पत्तियों को सींचने लगते हैं। किसी बुराई को दूर करने के लिए उसकी जड़ तक जाकर पता लगा और वहाँ से कार्यारम्भ करने की कोशिश नहीं करते।

स्त्री-समाज की उन्नति के सम्बन्ध में भी हमने वही मार्ग ग्रहण किया है। जब हम देखते हैं कि स्त्रियाँ दासी समझी जाती हैं, तो हल्ला मचाने लगते हैं और कहते हैं, यह घोर अनर्थ है, अन्याय है; इसका विरोध करना होगा। हमारी उन्नति का यह प्रधान बाधक है। स्त्रियों को शिक्षा दो, उनके लिए कॉलेज खोलो, स्त्री-पुरुष दोनों समान भाव से शाम को वायु सेवन करें, टेनिस खेलें और यदि व्यवस्थापिका सभा में वे चली जायँ तब फिर क्या है, तीन दिन में छलाँग मार कर पुरुषों की बराबरी में आ बैठेंगी।

अवश्य ही इस मार्ग से चल कर, यौवन मौजूद रहने तक स्त्री के रमणीत्व की काफी क़द्र होने लग जायगी, इसे

हम अस्वीकार नहीं कर सकते। लेकिन यह तो मुसाहिब का पद है। मानवी साम्राज्य के सिंहासन पर यदि इस देवी की प्रतिष्ठा करनी है तो ऐसा उपाय कीजिए, जिससे वे माता के पद के गौरव को समझ लें और तदनुसार काम करने लगें। यह एक ऐसा अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा वह संसार का सञ्चालन कर सकती है। व्यवस्थापिका सभा या नाचघर की क्या बिसात, पुरुष को ऊँगली के इशारे पर नचा सकती है। हम यह नहीं कहते कि वे क्लब में न जायँ, व्यवस्थापिका सभा में उनके प्रवेश का निषेध हो या किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र के द्वार पर उनके लिए 'भीतर मत आओ' (No admission) लिखा रहे। हर्गिज नहीं; मनुष्य-मात्र को—चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष—पूर्ण व्यक्तिगत स्वाधीनता रहनी चाहिए। यदि किसी स्त्री को माता बनना, विवाह करना या घर में बन्द रहना स्वीकार न हो, तो शौक़ से इन कामों से अलग रहे। अमुक काम करना ही होगा, इस प्रकार का बन्धन किसी के लिए न रहना चाहिए। यदि कोई स्त्री व्यवस्थापिका सभा में जाना चाहे तो जाय, लेकिन पहले वह अपने को समझ ले; यह जान ले कि उसका क्या महत्व है, वह कैसी मूल्यवान मणि है? यह समझ कर उसके जी में जो आए, करे।

यह तो मानी हुई बात है कि सन्तान पर माता जितना

हो जाय कि एक हिन्दू-स्त्री की इज़् हिन्दू अपना खून बहाने के लिए तै विधवाओं तथा युवतियों की बेइज्ज़

यह विज्ञान का युग है। विज्ञा वह पत्ती से डाल पर और डाल से की ओर जाती है, जड़ से शुरू हो पहुँचती। इसीलिए हम भी प्रत्येक ग्रहण करते हैं, जड़ में पानी न दे लगते हैं। किसी बुराई को दूर करने तक जाकर पता लगा और वहाँ से कोशिश नहीं करते।

स्त्री-समाज की उन्नति के सम्बन्ध मार्ग ग्रहण किया है। जब हम देखते समझी जाती हैं, तो हल्ला मचाने लग यह घोर अनर्थ है, अन्याय है; इसका हमारी उन्नति का यह प्रधान बाधक दो, उनके लिए कॉलेज खोलो, स्त्री-पुरु से शाम को वायु सेवन करें, टेनिस खेलें पिका सभा में वे चली जायँ तब फिर छलाँग मार कर पुरुषों की बराबरी में

अवश्य ही इस मार्ग से चल कर, तक स्त्री के रमणीत्व की काफी क़द्र होने

प्रस्ताव पास करे, जिसे व्यवस्थापिका सभा पर क़ब्ज़ा कर, स्त्रियाँ करना चाहती हैं। क्या वह अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा नहीं दे सकती कि वह बड़ी होकर स्त्री-जाति को दासी न समझ कर माता समझे, उसका सम्मान करे, स्त्री-शरीर को केवल काम-तृप्ति का साधन-मात्र न समझ कर उसके शरीर को पवित्र समझे और उसकी मान-रक्षा के लिए अपना ख़ून बहाने पर तैयार रहे?

स्त्री क्या नहीं कर सकती? सारी पुरुष-जाति—यह सारा मनुष्य-समाज क्या उसी की सन्तान नहीं है? क्या हम सबने एक दिन अबोध शिशु रह कर, इसी गोद में—इसी अञ्चल के नीचे—किलकारियाँ नहीं भरी हैं? क्या हम सभी के मुँह से पहला स्पष्ट शब्द इसी अञ्चल के नीचे नहीं निकला है? क्या हम सबने एक दिन इसी गोद को अपना संसार, अपना एकमात्र आश्रय—ऐसा आश्रय, जो हमें पूर्णरूप से अभय-दान देने में समर्थ है—नहीं समझा है? क्या हम सबने एक दिन डर कर तथा भय से पिण्ड छुड़ाने के लिए इसी अञ्चल में अपना मुँह नहीं छिपाया है? क्या हम सबको एक दिन इसी गोद, इसी अञ्चल में लिपट कर वह गर्मी नहीं मिली है, जिसको आज हमें संसार का क़ीमती से क़ीमती कम्बल भी देने में असमर्थ है? क्या हम सभी को एक दिन इस अञ्चल के नीचे वह पूर्णानन्द नहीं प्राप्त था, जिसके लिए यौवन में हम कस्तूरी मृग की तरह

प्रभाव डाल सकती है, उतना प्रभाव पिता या पन्द्रह वर्ष तक उसे शिक्षा देने वाला गुरु भी नहीं डाल सकता। माता की गोद में, उसके अञ्चल के नीचे सन्तान को जो शिक्षा मिलती है, वह अमिट होती है। संसार की किसी शक्ति में यह सामर्थ्य नहीं कि उस शिक्षा को बालक के मस्तिष्क से निकाल दे, माता के लगाए हुए अङ्कुर को हृदय से हटा दे। यह असम्भव है।

अभिमन्यु का प्रसिद्ध रण-कौशल, नेपोलियन की संसार को प्रकम्पित करने वाली वीरता, महात्मा गाँधी की अजेय अहिंसा—यह सब किसके प्रताप के फल हैं। इन महापुरुषों में इन अलौकिक विभूतियों का सञ्चार किसने किया था? उनकी माताओं ने। महात्मा गाँधी ने संसार के इतिहास में जो मोहर लगा दी है, संसार के इतिहास के पृष्ठ पर जो सुनहरे अङ्क जड़ दिए हैं, यह उनकी माता का प्रभाव है। उनके ही कहने से उन्होंने चुरा कर गोश्त खाना छोड़ा था, उन्हीं के सामने की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण कर वे विदेश में मांस-भक्षण से बचते रहे। उनके बचपन की प्रवृत्ति आज बढ़ कर इस विशाल विश्व को अपनी छाया में आच्छादित करने का प्रयत्न कर रही है।

स्त्री व्यवस्थापिका सभा मे क्यों जाय? क्या वह अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा नहीं दे सकती कि बड़ी होने पर व्यवस्थापिका सभा के पद पर प्रतिष्ठित हो और वहीं

...आव पास करे, जिसे व्यवस्थापिका सभा पर क़ब्ज़ा कर, ...स्त्रियाँ करना चाहती हैं। क्या वह अपनी सन्तान को ऐसी ...शिक्षा नहीं दे सकती कि वह बड़ी होकर स्त्री-जाति को ...दासी न समझ कर माता समझे, उसका सम्मान करे, स्त्री-...शरीर को केवल काम-तृप्ति का साधन-मात्र न समझ कर ...उसके शरीर को पवित्र समझे और उसकी मान-रक्षा के लिए अपना ख़ून बहाने पर तैयार रहे?

...स्त्री क्या नहीं कर सकती? सारी पुरुष-जाति—यह ...सारा मनुष्य-समाज क्या उसी की सन्तान नहीं है? क्या हम सबने एक दिन अबोध शिशु रह कर, इसी गोद में—इसी अञ्चल के नीचे—किलकारियाँ नहीं भरी हैं? क्या हम सभी के मुँह से पहला स्पष्ट शब्द इसी अञ्चल के नीचे नहीं निकला है? क्या हम सबने एक दिन इसी गोद को अपना संसार, अपना एकमात्र आश्रय—ऐसा आश्रय, जो हमें पूर्णरूप से अभय-दान देने में समर्थ है—नहीं समझा है? क्या हम सबने एक दिन डर कर तथा भय से पिण्ड छुड़ाने के लिए इसी अञ्चल में अपना मुँह नहीं छिपाया है? क्या हम सबको एक दिन इसी गोद, इसी अञ्चल में लिपट कर वह गर्मी नहीं मिली है, जिसको आज हमें संसार का क़ीमती से क़ीमती कम्बल भी देने में असमर्थ है? क्या हम सभी को एक दिन इस अञ्चल के नीचे वह पूर्णानन्द नहीं प्राप्त था, जिसके लिए यौवन में हम कस्तूरी मृग की तरह

प्रभाव डाल सकती है, उतना प्रभाव पिता या पन्द्रह वर्ष तक उसे शिक्षा देने वाला गुरु भी नहीं डाल सकता। माता की गोद में, उसके अञ्चल के नीचे सन्तान को जो शिक्षा मिलती है, वह अमिट होती है। संसार की किसी शक्ति में यह सामर्थ्य नहीं कि उस शिक्षा को बालक के मस्तिष्क से निकाल दे, माता के लगाए हुए अङ्कुर को हृदय से हटा दे। यह असम्भव है।

अभिमन्यु का प्रसिद्ध रण-कौशल, नेपोलियन की संसार को प्रकम्पित करने वाली वीरता, महात्मा गाँधी की अजेय अहिंसा—यह सब किसके प्रताप के फल हैं। इन महापुरुषों में इन अलौकिक विभूतियों का सञ्चार किसने किया था? उनकी माताओं ने। महात्मा गाँधी ने संसार के इतिहास में जो मोहर लगा दी है, संसार के इतिहास के पृष्ठ पर जो सुनहरे अङ्क जड़ दिए हैं, यह उनकी माता का प्रभाव है। उनके ही कहने से उन्होंने चुरा कर गोश्त खाना छोड़ा था, उन्हीं के सामने की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण कर वे विदेश में मांस-भक्षण से बचते रहे। उनके बचपन की प्रवृत्ति आज बढ़ कर इस विशाल विश्व को अपनी छाया में आ[illegible] करने [illegible] कर रही है।

स्त्री [illegible] जाय? क्या वह अपनी [illegible] सकती कि बड़ी होने पर [illegible] प्रतिष्ठित हो और वहाँ

प्रस्ताव पास करे, जिसे व्यवस्थापिका सभा पर क़ब्ज़ा कर, स्त्रियाँ करना चाहती हैं। क्या वह अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा नहीं दे सकती कि वह बड़ी होकर स्त्री-जाति को दासी न समझ कर माता समझे, उसका सम्मान करे, स्त्री-शरीर को केवल काम-तृप्ति का साधन-मात्र न समझ कर उसके शरीर को पवित्र समझे और उसकी मान-रक्षा के लिए अपना खून बहाने पर तैयार रहे ?

स्त्री क्या नहीं कर सकती ? सारी पुरुष-जाति—यह सारा मनुष्य-समाज क्या उसी की सन्तान नहीं है ? क्या हम सबने एक दिन अबोध शिशु रह कर, इसी गोद में—इसी अञ्चल के नीचे—किलकारियाँ नहीं भरी हैं ? क्या हम सभी के मुँह से पहला स्पष्ट शब्द इसी अञ्चल के नीचे नहीं निकला है ? क्या हम सबने एक दिन इसी गोद को अपना संसार, अपना एकमात्र आश्रय—ऐसा आश्रय, जो हमें पूर्णरूप से अभय-दान देने में समर्थ है—नहीं समझा है ? क्या हम सबने एक दिन डर कर तथा भय से पिण्ड छुड़ाने के लिए इसी अञ्चल में अपना मुँह नहीं छिपाया है ? क्या हम सबको एक दिन इसी गोद, इसी अञ्चल में लिपट कर वह गर्मी नहीं मिली है, जिसको आज हमें संसार का क़ीमती से क़ीमती कम्बल भी देने में असमर्थ है ? क्या हम सभी को एक दिन इस अञ्चल के नीचे वह पूर्णानन्द नहीं प्राप्त था, जिसके लिए यौवन में हम कस्तूरी मृग की तरह

पागल होकर ढूँढ़ रहे हैं ? क्या एक दिन यही अञ्चल हम सबका सर्वस्व नहीं था, जिसका आज हम यौवन-मद में अपमान कर रहे हैं ?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में हो, तो स्त्री के लिए हताश होने की क्या ज़रूरत है ? क्या ज़रूरत है कि व्यवस्थापिका सभा में जाने के लिए पागलों की तरह, भिखमङ्गों की तरह दर-दर, गली-गली, नीच-ऊँच, पुरुष-स्त्री—सभी के सामने वह अपना पवित्र अञ्चल फैलाती फिरे ? क्या वह जो काम ख़ुद करना चाहती है, वही काम उसके लिए उसकी सन्तान नहीं कर सकती ? जरूरत केवल इस बात की है कि वह इस पद के गौरव को समझ ले। वह योग्य माता बनना सीख ले। फिर देखिए, कौन उसका अपमान करता है ? कौन पति अपनी पत्नी को दासी समझने की हिमाक़त कर सकता है ? कौन पुरुष-स्त्री के समुज्ज्वल-पवित्र, महिमा-मण्डित रूप की ओर बुरी नज़रें उठा सकता है ? और कौन उसकी गति को रोक सकता है ? यही संसार, जो आज उसे पैरों के तले रौंद रहा है, उसे खेलने की सामग्री समझ कर तोड़-फोड़ रहा है, उसके पैरों पर श्रद्धा से नतमस्तक होकर गिर पड़ेगा ?

यदि उसे अपनी शक्ति का पूरा पता चल जाय ; यदि उसे यह मालूम हो जाय कि वह अपनी सन्तान पर कितना प्रभाव डाल सकती है तथा इस साधन द्वारा

किस प्रकार सारे संसार को घर में बैठे-बैठे अपनी मुट्ठी में कर सकती है; यदि उसे अपनी सन्तान का लालन-पालन करना तथा उसे उचित शिक्षा देना आ जाय, तो इस प्रकार पथ-भ्रष्ट होकर उसके इधर-उधर भटकने और कामी पुरुषों के चङ्गुल में फँसने की आशङ्का न रहे। केवल यही नहीं, आज जिस गृह-कार्य को वह निरुद्देश्य, नीरस, बिना महत्व का समझ रही है, उसी को वह दिलचस्पी से कर्त्तव्य समझ कर करने लग जाय। उसका आनन्द-विहीन जीवन सरस, सतेज हो उठे और समाज का वास्तविक कल्याण-साधन हो। यह सब कलह, अशान्ति, अनाचार एवं अत्याचार बहुत जल्द दूर हो जाय।

यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध

स प्रकार दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए, यौवन-सुख का समुचित भोग करने के लिए, यौवन के प्रारम्भ में, जिस समय यौवन के आगमन की सूचना होती है तथा मन में यौवनोचित अनेक भावों का सञ्चार होने लगता है, सतर्क रहने तथा यौवन के लिए तैयारी करने की ज़रूरत पड़ती है, ठीक उसी प्रकार यौवन के उतार के समय—जब वृद्धावस्था के आगमन की सूचना होने लगती है—हमें सतर्क रहना चाहिए। इस समय उस प्रकार की तैयारी करनी चाहिए, जिससे बुढ़ापे में हमें कष्ट न हो और हमारा बुढ़ापा सुख-शान्ति तथा सन्तोष से बीते।

सौरि-गृह और हमारी दाइयाँ

जिस प्रकार अधिकांश युवक-युवती यौवन के प्रारम्भ में ग़लती करते और यौवन आने पर कष्ट उठाते हैं, उसी प्रकार अधिकांश प्रौढ़-प्रौढ़ा भी वृद्धावस्था की आगमन-सूचना की अवहेलना कर दुख उठाते हैं।

यदि ये लोग इस मर्म को समझते तो आज देश में वृद्ध-विवाह तथा विधवाओं के हाहाकार का यह रौद्र-ताण्डव न दीख पड़ता और न यह मसल ही बनती— 'हिन्दू बुज़ुर्ग ६० वर्ष की अवस्था में सठिया जाते हैं।' हमारे बुज़ुर्गों के सठियाने का यही कारण है कि जिस समय उन्हें अपनी काम-वासना को संयमित कर, उसे अपने क़ाबू में लाना उचित था और क्षीण होते हुए शरीर के लिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिए थी, उस समय वे नवयौवना का पाणिग्रहण कर रस-केलि-कुण्ड में अवगाहन करने का आयोजन करते हैं। परिणाम-स्वरूप उनका जर्जर शरीर और भी शिथिल हो जाता है तथा दिमाग़ बिगड़ जाता है, और उस अवस्था में, जबकि लोग उनकी श्रद्धा करते, पूजा करते और उनके सांसारिक अनुभव तथा स्थिर-बुद्धि से लाभ उठाते, ठीक उसी अवस्था में वे पागलखाने भेजे जाने के लायक़ हो जाते हैं।

लोग कहा करते हैं—'मरनी के वक़्त करनी देखी जाती है।' अर्थात् आदमी जो कुछ कार्य करता है, उसका परिणाम अन्त में मिलता है। इस नियम की सत्यता

का बोध वृद्धों से किया जा सकता है। जो लोग सदाचारी होते हैं, जो लोग अपना जीवन और विशेषकर अपना यौवन तथा उसका अन्तिम हिस्सा मिताचार, सत्सङ्ग तथा सच्चिन्तन में व्यतीत करते हैं, वे वृद्धावस्था में शरीर तथा मन से आरोग्य रहते और सन्तोष एवं शान्ति का अनुभव करते हैं।

मन की बागडोर ढील देने, उसे उचित सीमा में न रख कर उसका शमन न करने का फल बुढ़ापे में आकर बड़ी बुरी तौर से भुगतना पड़ता है।

चञ्चल, असंयमित इन्द्रियाँ जिस समय वृद्धावस्था में आकर अपना सिर उठाने लगती हैं, उस समय शिथिल वृद्ध बड़ी द्विविधा में पड़ जाता है। इस समय उसके पास वे साधन नहीं रहते, वह सुविधा नहीं रहती, जो एक युवक को अनायास ही मिल जाती है। फलतः अपनी काम-पिपासा शान्त करने के लिए उसे बड़ी अड़चन पड़ती है। इधर उसे यह भी भय बना रहता है कि लोग उसे क्या कहेंगे। स्वयं उसके बेटे-नाती क्या कहेंगे? यदि वह शुरू से ही सदाचारी रहता और प्रौढ़ावस्था में इस समय के लिए तैयारी करता हुआ इन्द्रिय-निग्रह करता, तो इस जर्जरावस्था में उसे अशान्ति से युद्ध न करना पड़ता।

इस देश में जिस प्रकार यौवन की तैयारी के लिए ब्रह्मचर्य धारण करने की व्यवस्था थी, उसी प्रकार वृद्धा-

वस्था की तैयारी के लिए वानप्रस्थी रहने की व्यवस्था भी थी। हमारे देश की व्यवस्थाओं पर ग़ौर से विचार करने पर यह बात छिपी नहीं रह सकती कि हमारे पूर्वज केवल धर्मोन्नति की चरम सीमा तक ही नहीं पहुँचे थे, वरन् उनकी वैज्ञानिक उन्नति भी उस हद तक पहुँच चुकी थी, जिस हद तक आज सभ्यताभिमानी यूरोप भी नहीं पहुँच सका है। जहाँ यूरोप आज प्रारम्भ कर रहा है—केवल वर्ण-माला का अभ्यास कर रहा है, वहाँ उसी काम-शास्त्र में हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज विलक्षण दक्षता प्राप्त कर चुके थे। किन्तु हमारा यह रागालाप व्यर्थ है। जहाँ ७० वर्ष के वृद्ध नववधू के अधर-पान के लिए लालायित हो रहे हों, वहाँ वानप्रस्थ-आश्रम का राग अलापने लगना पागलपन नहीं तो और क्या है? विलासी स्त्री तथा पुरुष वृद्धावस्था को बड़ी उदासीन दृष्टि से देखते हैं। मानव-समाज के लिए इसे वे एक प्रकार का शाप समझते हैं। उससे तो वे उस समय की मृत्यु को ही बेहतर समझेंगे, जब कि उनकी इन्द्रियाँ सक्षम रहती हैं तथा उनमें भोग करने की शक्ति रहती है।

इस विचार वाले लोगों को उस समय, जब उनके यौवन के साथी एक-एक कर चलने लगते हैं और वे अकेले रह कर उदासीन, निरानन्द जीवन व्यतीत करने पर बाध्य होते हैं, बड़ा कष्ट होता है। इस अवस्था में सुखी तो वे ही रह सकते हैं, जिन्हें यह सन्तोष प्राप्त होता है कि इस

जीवन में सामर्थ्य भर मैंने अपना कर्त्तव्य पालन करने की कोशिश की है। अस्तु—

प्रत्येक व्यक्ति को अपने यौवन के उतरते समय सतर्क होकर उस समय की तैयारी करनी चाहिए, जब कि उनकी शारीरिक शक्तियों से बिदा लेने का समय आ पहुँचेगा। ऐसा न हो कि बिदाई के समय उनके वियोग का दुख असह्य हो उठे।

जिस प्रकार गर्भ के समय पति को प्रकृति का दण्ड मिलता है, अर्थात् पत्नी के गर्भवती हो जाने से उसे निरुपाय होकर काम-ताप सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार यौवन के उतार के समय भी प्रौढ़ा की अपेक्षा प्रौढ़ को अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। स्त्री को गर्भ धारण कर अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है। इसके परिणाम-स्वरूप उसमें ४०-४५ वर्ष के भीतर ही बुढ़ापा आ जाता है और इस बीच में उसका मासिक स्राव बन्द हो जाता है। यह इस बात की सूचना है कि वह अब जनन-क्रिया के योग्य नहीं रह गई। इस समय उसे अपनी जननेन्द्रियों का उपयोग एकदम बन्द कर देना चाहिए। यदि एकदम न कर सके तो कम से कम इस कार्य को इतना कम तो अवश्य कर देना चाहिए कि वह नहीं के बराबर ही हो जाय। किन्तु इससे उन्हें कुछ विशेष कष्ट नहीं होता। शरीर के शिथिल होते ही उनके मन से काम-वासना नष्ट हो जाती है और

उत्तेजना-जनित कष्ट भी उन्हे नहीं उठाना पड़ता। पुरुष का यह समय स्त्री की अपेक्षा कुछ अधिक देर में आता है। लगभग ५५ वर्ष की अवस्था में पुरुष का वह समय आता है, जब उसकी जननेन्द्रियाँ प्रायः अशक्त हो जाती हैं, यदि व्यवस्थानुसार पति की अपेक्षा पत्नी की अवस्था सात-आठ वर्ष कम रहे तो दोनों के लिए यह समय साथ ही आए। लेकिन अक्सर ऐसा नहीं होता। भोजन तथा पौष्टिक खाद्य की कमी, गर्भपात तथा अधिक गर्भ आदि के कारण पत्नी पति की अपेक्षा आठ-दस वर्ष पूर्व ही वृद्ध हो जाती है और इस आठ-दस वर्ष का समय पुरुष के लिए कठिन होता है तथा इस समय के भीतर उसे काम-ताप सहन करना पड़ता है।

जब यह बात तय है कि प्रत्येक के ऊपर बुढ़ापे का आक्रमण होना अनिवार्य है, तब उसके लिए पहले से ही तैयार रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में भी शरीर की अपेक्षा मन की तैयारी की अधिक आवश्यकता रहती है। जिनका मन वृद्धावस्था के लिए तैयार रहता है, जो इसकी प्रतीक्षा उद्वेगपूर्ण हृदय से नहीं, वरन् उसे अनिवार्य समझ कर शान्त हृदय से करते हैं, उन्हें विशेष कष्ट नहीं सहना पड़ता। वे इस अवस्था में आकर अपना धैर्य नहीं खोते और शान्ति से जीवन यापन करते हैं। आवश्यकता है मन को संस्कृत करने एवं विचारों को संयत करने की। इसके

विपरीत चलने से संसार के सम्मुख लज्जित होना और आपत्तियाँ उठाना पड़ता है तथा हृद्‌गत अशान्ति से युद्ध करना पड़ता है।

गर्भ के पूर्व तथा गर्भ के समय माता-पिता का गर्भ पर प्रभाव

रुष का वीर्य और स्त्री का डिम्ब (Ova) शरीर के रक्त से बनता है, अतएव यह मानी हुई बात है कि रक्त जैसा होगा, वीर्य तथा डिम्ब भी वैसे होंगे। मनुष्य का रक्त उसके खाद्य पदार्थ से बनता है, याने उसके रक्त पर भोजन का यथेष्ट प्रभाव ही नहीं पड़ता, वरन् जैसा भोजन होता है, वैसा ही रक्त भी होता है। किन्तु केवल भोजन का ही रक्त पर प्रभाव नहीं पड़ता, भोजन-निर्मित रक्त पर मनुष्य के मानसिक विचार तथा भावों का यथेष्ट असर पड़ता है। हमारे मन में क्रोध आते ही हमारा रक्त खौलने लगता है। लोग कहते भी हैं—गुस्से के मारे खून उबल उठा, भय के कारण रक्त जमने लगा। किसी आदमी के दब जाने पर

लोग कहते हैं—बस, ठण्ढे पड़ गए। ये बातें निरर्थक नहीं हैं। विद्वान् डॉक्टरों का मत है कि हमारे खान-पान, रहन-सहन थकावट, क्रोध, चिन्ता आदि नाना प्रकार के विषयों का रक्त पर काफी असर पड़ता है। अस्तु, यह निष्कर्ष निकला कि इन सब क्रियाओं का वीर्य तथा रज पर भी असर पड़ता है। इसीलिए हर एक स्त्री तथा पुरुष के रज एवं वीर्य में अन्तर रहता है। सोमनाथ के तथा राजाराम के वीर्य को लेकर यदि भलीभाँति विश्लेषण किया जाय तो दोनों में फ़र्क़ मिलेगा। इसी प्रकार दो स्त्रियों के रज में भी अन्तर दिखाई देगा। दो मनुष्यों की शकल, चाल-चलन और स्वभाव में एकदम समानता न रहने का भी यही कारण है। एक ही माता-पिता की दो सन्तानों में अन्तर रहने का भी यही कारण है। अस्तु, यह बात निर्विवाद हो जाती है कि माता-पिता के रहन-सहन, खान-पान, भाव और विचारादि का सन्तान पर असर पड़ता है।

लेकिन पिता की अपेक्षा माता का सन्तान पर अधिक असर पड़ता है। जिस प्रकार अच्छे कुल की सन्तान भी सङ्गति में पड़ कर बिगड़ जाती है, उसी प्रकार अच्छा वीर्य भी डिम्ब की ख़राबी से नष्ट हो सकता है। कमज़ोर पौधे को जिस प्रकार खाद देकर किसी हद तक सुधारा जा सकता है, उसी प्रकार कमज़ोर वीर्य भी पुष्ट रज के प्रभाव

दो सन्तानो की उत्पत्ति (प्रसव)

इनमे एक के पैर बाहर आगए हैं, किन्तु दोनों के मस्तक प्रसव-मार्ग में रुके हैं ।

लोग कहते हैं—बस, ठण्ढे पड़ गए। ये बातें निरर्थक नहीं हैं। विद्वान् डॉक्टरों का मत है कि हमारे खान-पान, रहन-सहन थकावट, क्रोध, चिन्ता आदि नाना प्रकार के विषयों का रक्त पर काफी असर पड़ता है। अस्तु, यह निष्कर्ष निकला कि इन सब क्रियाओं का वीर्य तथा रज पर भी असर पड़ता है। इसीलिए हर एक स्त्री तथा पुरुष के रज एवं वीर्य में अन्तर रहता है। सोमनाथ के तथा राजाराम के वीर्य को लेकर यदि भलीभाँति विश्लेषण किया जाय तो दोनों में फ़र्क़ मिलेगा। इसी प्रकार दो स्त्रियों के रज में भी अन्तर दिखाई देगा। दो मनुष्यों की शकल, चाल-चलन और स्वभाव में एकदम समानता न रहने का भी यही कारण है। एक ही माता-पिता की दो सन्तानों में अन्तर रहने का भी यही कारण है। अस्तु, यह बात निर्विवाद हो जाती है कि माता-पिता के रहन-सहन, खान-पान, भाव और विचारादि का सन्तान पर असर पड़ता है।

लेकिन पिता की अपेक्षा माता का सन्तान पर अधिक असर पड़ता है। जिस प्रकार अच्छे कुल की सन्तान भी सङ्गति में पड़ कर बिगड़ जाती है, उसी प्रकार अच्छा वीर्य भी डिम्ब की खराबी से नष्ट हो सकता है। कमज़ोर पौधे को जिस प्रकार खाद देकर किसी हद तक सुधारा जा सकता है, उसी प्रकार कमज़ोर वीर्य भी पुष्ट रज के प्रभाव

दो सन्तानों की उत्पत्ति (प्रसव)

इनमे एक के पैर बाहर आगए हैं, किन्तु दोनों के मस्तक प्रसव-मार्ग में रुके है ।

से किसी हद तक हृष्ट-पुष्ट हो सकता है; लेकिन जिस प्रकार अच्छा से अच्छा बीज भी खेत की ख़राबी से अङ्कुरित होने से वञ्चित रह जाता है, उसी प्रकार पुष्ट वीर्य भी माता की ख़राबी से बेकार हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि सन्तान पर पिता का प्रभाव मुतलक़ नहीं पड़ता। उपर्युक्त कथन का केवल यही मतलब है कि इस सम्बन्ध में पिता का प्रभाव गौण है, माता का प्रधान। पिता का प्रभाव बीजारोपण करते ही गौण हो जाता है, इस समय से लेकर जब तक बालक गर्भ में रहता है तथा जब तक वह दस-बारह वर्ष का होकर अपना अधिकांश समय, बाहर तथा घर में रहने पर भी माता से अलग रह कर नहीं बिताने लगता, तब तक उस पर माता का प्रभाव पड़ता रहता है। चार-पाँच वर्ष का होने पर पिता का तथा शिक्षक का प्रभाव भी उस पर पड़ने लगता है, लेकिन सात-आठ वर्ष तक तो उस पर माता का जितना दबदबा रहता है उतना न तो पिता का रहता है और न शिक्षक का। यदि माता ने कोई बात ग़लती बता दी हो और इस अवस्था में पिता उसे ठीक करना चाहे, तो जब तक माता मञ्जूरी न दे दे, तब तक वह पिता को यही उत्तर देता रहेगा— 'नहीं बाबू जी, ऐसा नहीं है; अम्माँ ने तो ऐसा बताया है।' अम्माँ की बुद्धि के सामने वह उस समय तक किसी दूसरे की बुद्धि को बड़ा समझ कर महत्व नहीं दे सकता।

इसके बाद स्कूल जाने पर जब वह नई बातें सीखने लगता है और घर में आकर माँ से सवाल करने पर जब ठीक उत्तर नहीं मिलता, केवल तभी माता का महत्व उसके सामने घटने लगता है। धीरे-धीरे उसे ज्ञात होने लगता है कि उसकी माता तो बहुत सी बातें, जो अन्य लोगों को मालूम हैं, नहीं जानती। अपनी माता को इस प्रकार अनभिज्ञ समझ लेने पर माता का प्रभाव उस पर कम होने लगता है। माता साधारण तौर पर भी पढ़ी-लिखी हो तथा बालक के प्रश्न का उत्तर दे सके तो उस पर से बालक का प्रभाव उस समय तक न जाय, जब तक बालक किशोरावस्था में प्रवेश न कर ले और उसमें यौवन-सञ्चार न होने लगे। यौवन-सञ्चार होने पर अर्थात् उस समय, जब उसमें माता-पिता बनने की क्षमता आने लगती या आ जाती है, वह भी अपने को अनुभवी समझ कर मन ही मन बराबरी का दावा करने लगता है; लेकिन इससे उसके मन की श्रद्धा या भक्ति में कमी नहीं आती।

बालक को गर्भावस्था में अर्थात् उस समय, जब कि मन, मस्तिष्क एवं हृदय बनता रहता है तथा शैशवावस्था में, जब कि उसमें ज्ञान-सञ्चार होता रहता है, माता की सङ्गति में, उसकी समीपता में, उसकी शिष्यता में समय बिताना पड़ता है। यह समय बहुत नाजुक होता है। जैसे कच्ची मिट्टी पर खिंची हुई रेखा बिना तोड़े-फोड़े नहीं मिटती;

उसी प्रकार माता का बैठाया हुआ प्रभाव बालक के मन से एकाएक नहीं हटता।

बहुधा सन्तान में माता-पिता के गुण तथा शारीरिक बनावट का कुछ न कुछ असर आता ही है। यह क्या सिद्ध करता है? केवल यही नहीं, माता-पिता के रोग तक बालक में पाए जाते हैं। मुझे एक ऐसे कुटुम्ब की बात मालूम है, जिसमें प्रत्येक बालक-बालिका के केश पाँच वर्ष की अवस्था से सफेद होने लगते हैं। इन सब बातों से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि माता-पिता के आचरण, आहार, विहारादि सभी बातों का असर बालक पर पड़ता है। इसीलिए यदि माता-पिता चाहें तो मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन यह बात कह देना जितना सरल है, कार्य मे उसे परिणत करना उतना सरल नहीं है। यह कोई ऐसी बात नहीं है कि २ को २ से गुणा करते ही गुणनफल ४ निकल आएगा। कई बातें ऐसी हैं, जिन पर हम एकाएक अमल नहीं कर सकते; कई बातें ऐसी हैं, जिनमें हम प्रयत्न करने पर भी असफल हो सकते हैं। फिर भी प्रयत्न करने से अयोग्य सन्तानों की वृद्धि रोकी तथा योग्य सन्तानो की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

आजकल उन्नति की बाढ़ आई हुई है। सभी दिशाओं में उन्नति करने के लिए मानव-समाज व्यग्र दिखाई देता है। जानवरों तक की नसल सुधारी जा रही है। लेकिन

अपने पर जब दृष्टिपात करते हैं, तब देखते हैं कि मानव-सन्तान को उत्तम बनाने की, मनुष्य की नसल सुधारने की बहुत कम कोशिश हो रही है। अधिकांश पढ़े-लिखे भारत-वासी तक इस बात को न जानते और न जानने की कोशिश करते हैं कि वे यदि चाहें और प्रयत्न करें तो उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर

गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का बड़ा गहरा असर पड़ता है। विद्वानों ने इस सम्बन्ध में कई उदाहरण एकत्र किए हैं, जिनसे यही बात सिद्ध होती है। उनमें के दो-चार उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

१—रुचि का प्रभाव—एक इथोपियन रानी ने एक गोरे बालक को जन्म दिया। इथोपियनों का रङ्ग गोरा नहीं होता। जाँच करने पर लोगों को पता चला कि उस रानी को उज्ज्वल वर्ण और उज्ज्वल चीज़ बड़ी प्रिय थी और वह सदैव उज्ज्वल चीज़ों का ही ध्यान किया करती थी। इसी के प्रभाव से उसने उज्ज्वल सन्तान को जन्म दिया।

२—दर्शन का प्रभाव—किसी यूरोपीय महिला के शयनागार में एक अफ्रिकन का चित्र टँगा था। उसके बाल घुँघराले थे। यूरोपियनो को इस प्रकार के बाल

अधिकतर पसन्द होते हैं। वह महिला भी उस अफ्रिकन के बालों को बड़े चाव से देखा करती थी। उसके गर्भ पर इसका प्रभाव पड़ा और जिस बालक को उसने प्रसव किया, उसके बाल घुँघराले थे।

३—एक सुन्दर सुनहले केश वाले यूरोपियन ने किसी ब्रजेलियन सुन्दरी से विवाह किया। इस सुन्दरी के बाल काले तथा रङ्ग श्याम था। थोड़े दिनों के बाद ही इस सुन्दरी का देहान्त हो गया। उस यूरोपियन ने अपनी दूसरी शादी की। इस स्त्री से जो बालक हुआ, उसका वर्ण, डील-डौल तथा केश उसी ब्रजेलियन सुन्दरी के समान थे। माता-पिता अङ्गरेज़ होने पर भी सन्तान ब्रजेलियन जैसी हुई। इसका कारण यही था कि दूसरा विवाह करने पर भी वह अङ्गरेज़ अपनी मृत-पत्नी को भूल न सका था। जब-जब वह अपनी नवीन पत्नी के साथ सहवास करता था, तभी उसे अपनी प्रथम पत्नी का ध्यान हो आता था। सहवास के समय का भी गर्भ पर भारी प्रभाव पड़ता है।

इसीलिए पहले कह आए हैं कि यद्यपि दम्पति में प्रेम होने पर सन्तान माता-पिता के अनुरूप होती है, तथापि माता-पिता प्रयत्न करने पर उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। फिर भी यह बात सर्वथा सरल नहीं है; क्योंकि हम सदैव मन पर लगाम लगाए नहीं रह सकते। तात्कालिक

बातों का तथा विशेषकर गर्भाधान के समय की मनःस्थिति का गर्भ पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

न केवल मनुष्यों में ही, वरन् पशुओं पर भी यह असर होते देखा जाता है। फौज के लिए एक ही रङ्ग के घोड़ों की आवश्यकता होने पर गर्भाधान के समय वहाँ जिस रङ्ग के घोड़ों की आवश्यकता हो, उसी रङ्ग के परदे डाल दिए जाते हैं। ऐसा करने से प्रायः सभी बछेड़े उसी रङ्ग के होते हैं।

कभी-कभी स्त्रियों को विचित्र आकार-प्रकार की सन्तान होने का भी यही कारण है। बालक के रङ्ग-रूप पर अधिकतर तात्कालिक परिस्थिति का तथा आचरण पर माता-पिता के आजीवन आहार-विहार का असर पड़ता है। इसलिए न केवल गर्भाधान के समय ही, वरन् पहले से ही माता पिता को—यदि वे उत्तम सन्तान की लालसा रखते हों तो—सतर्क रहना चाहिए। इसके बाद गर्भ में माता की मनःस्थिति का बालक पर बराबर असर पड़ा करता है। इन सब बातों पर विचार करने से यह निश्चय हुए बिना नहीं रह सकता कि सन्तान पर कई बातों का असर पड़ता है, जिसके लिए खूब सतर्क रहने पर ही इस ओर हमें सफलता मिल सकती है। अन्त में दो विद्वानों की राय देकर हम इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

डॉक्टर ट्रॉल का कथन है—"गर्भाधान के समय यदि

माता-पिता की शारीरिक और मानसिक दशा अच्छी हो, तो उनकी सन्तान बहुधा शारीरिक सौन्दर्य तथा आचरण में अपने माता-पिता की अपेक्षा ऊँचे दर्जे की होगी; परन्तु यदि उनकी दशा इसके विपरीत हुई तो सन्तान उनसे हीन होगी।"

प्लूटार्क का कथन है—"सर्वदा से विद्वान् लोग जो बात कहते चले आ रहे हैं, उसे मैं भी कह देता हूँ कि किसी भी व्यक्ति को उस समय, जब कि उसका या उसकी स्त्री का मन, मादक द्रव्य के सेवन से या किसी अन्य उद्वेग से अशान्त हो, तब सम्भोग न करना चाहिए। ऐसी दशा में यदि गर्भ रह गया तो सन्तान उसी प्रकार, बल्कि उससे भी बढ़ कर कमज़ोर मन वाली तथा दुर्व्यसनी निकलेगी।"

गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार
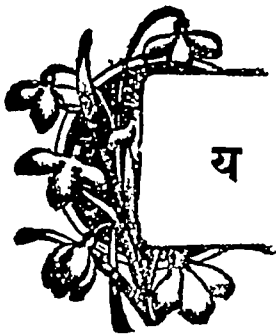
यह पहले ही लिख आए हैं कि गर्भ का भार अधिकांश में, बल्कि सर्वांश में स्त्री को ही वहन करना पड़ता है, किन्तु यदि पुरुष चाहे तो स्त्री को इस अवस्था में बहुत-कुछ सहायता पहुँचा सकता है और उसके भार को हलका कर सकता है। यह उसका कर्त्तव्य भी है, क्योंकि नैतिक दृष्टि से इसकी जिम्मेदारी उस पर भी उतनी ही है, जितनी कि स्त्री पर।

विवाह का यही अर्थ एवं प्रधान उद्देश्य भी है कि पुरुष तथा स्त्री दोनों मिल कर गर्भ की ज़िम्मेदारी में उसका भार बाँट और सन्तान होने पर उसका पालन-पोषण करें। पुरुष यदि ऐसा न करे तो व्यभिचार तथा वैवाहिक

समाज की बलि

सम्बन्ध में अन्तर भी बहुत कम रह जाय। व्यभिचार के विरुद्ध यह एक सबल प्रमाण है कि इस प्रकार के सम्बन्ध में पुरुष की कोई ज़िम्मेदारी नहीं रह जाती। सम्भोग कर लेने के बाद वह सर्वथा स्वतन्त्र हो जाता है और इस सम्बन्ध के कार्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता, और न किसी प्रकार की ज़िम्मेदारी ही उसके सिर पर पड़ती है। यह एक प्रकार का अत्याचार एवं अन्याय है, जो पुरुष स्त्री-जाति के ऊपर करता है। इसीलिए समाज न्याय को सामने रख कर ऐसे अन्यायपूर्ण कार्य को रोके। अब यदि विवाहित दम्पति में पुरुष इस भार को वहन न करे तो विवाह के प्रधान कर्त्तव्य तथा ज़िम्मेदारी पर व्याघात होता है और पुरुष अपनी प्रतिज्ञा या पार्ट को अदा न करने का अपराधी ठहरता है। अस्तु—

पुरुष को, अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हुए, गर्भ की अवस्था में अपनी सामर्थ्य भर स्त्री को सुखी बनाने तथा उसकी पीड़ा एवं वेदनाओं को कम करने की कोशिश करनी चाहिए।

इस समय अधिकांश स्त्रियों का स्वभाव कुछ चिड़-चिड़ा सा हो जाता है। पहले वे जितना काम कर सकती थीं, उतना काम भी नहीं कर सकतीं, और साधारण समय की अपेक्षा इस समय उनके मनोरञ्जन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। स्त्री की आवश्यकताएँ भी इस समय बढ़

जाती हैं। सीधी-सादी, कभी किसी चीज़ की ख्वाहिश न दिखाने वाली स्त्री भी गर्भवती होने पर फरमाइश करने लगती है, और उसका जी कई तरह की चीजें खाने को चाहता है। यदि इस समय उसे उतना ही काम करना पड़े, उसकी फ़रमाइश न पूरी की जाय तथा उसका मनोरञ्जन करने की व्यवस्था न की जाय, जिसकी कि उसको बहुत आवश्यकता है, तो स्वभावतः ही उसका मिज़ाज गरम होगा और वह असन्तुष्ट रहेगी तथा चिड़चिड़ी हो जायगी।

एक तो पुरुष का यह नैतिक कर्त्तव्य है, किन्तु यदि उसे कर्त्तव्य का ध्यान न हो, तब भी अपने स्वार्थ के लिए, अपना दाम्पत्तिक जीवन सुखी बनाए रखने के लिए तथा इसलिए कि उसकी सुखी गृहस्थी कलह-क्षेत्र में न परिणत हो जाय, उसे इस समय अपनी पत्नी की उचित सेवा-शुश्रूषा का ध्यान रखना चाहिए।

अगर उसके पास यथेष्ट द्रव्य हो तो दास-दासियों की संख्या बढ़ा कर और यदि यथेष्ट द्रव्य न हो, तब स्वतः घर के कामों में भाग लेकर स्त्री के भार को हलका करना चाहिए; लेकिन ऐसा भी न हो कि स्त्री रात-दिन बैठी या लेटी रहे। उसे साधारण मिहनत अवश्य करनी चाहिए। मनोरञ्जन के लिए भी यथासम्भव सामान जुटाना चाहिए और यदि स्त्री पढ़ी-लिखी हो तथा उसे पठन-पाठन से प्रेम हो तो उसके लिए अच्छी पुस्तकों का संग्रह करना चाहिए।

ऐसा न हो सके तो बातों से, हँसी-मज़ाक़ तथा खेल से स्वतः उसका मन बहलाना चाहिए। लेकिन एक बात का ध्यान रहे, पठन-पाठन तथा खेल-मज़ाक़ ऐसे न हों कि जिससे स्त्री की कामोत्तेजना जाग्रत हो उठे। इस समय मन को काम तथा अन्य सभी प्रकार की उत्तेजनाओं से बचाना चाहिए।

स्त्री की तबीयत जो चीज़ें खाने या पहनने को चाहे तथा उसके मन में और भी जो ख़्वाहिशें उठें, उन्हें यथा-शक्ति पूरी करना चाहिए; लेकिन उसकी ख़्वाहिशें अगर अनुचित हों तो उन्हें टालना चाहिए। बहुत स्त्रियाँ मिट्टी या इसी तरह की अन्य ख़राब चीज़ें खाने लगती हैं। ऐसे वक़्त में उन्हें डाँटना या एकदम रोकना न चाहिए, बल्कि सप्रेम समझा कर उन्हें उसका हानि-लाभ दिखा देना चाहिए और इस तरह उन्हें नरमी से उस ख़राब काम को करने से रोकना चाहिए। बात को अच्छी तरह समझ लेने पर, ख़राबी को साफ़-साफ़ देख लेने पर ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ होंगी, जो उसे करने की ज़िद करें; क्योंकि बच्चे का प्रेम उनके मन में बहुत प्रबल रहता है और वे कोई भी काम ऐसा नहीं करना चाहतीं, जिससे उनके गर्भस्थित शिशु को हानि हो। इसके अलावा ऐसी भी बहुत स्त्रियाँ होंगी, जो अपने पति के प्रेम-मिश्रित अनुरोध को न मानें।

इसके बाद अब हम जिस विषय की चर्चा करने जा

रहे हैं, वह बहुत ही नाज़ुक है। आदर्श तो यही है कि गर्भावस्था में सम्भोग से मुतलक़ परहेज़ रक्खा जाय, क्योंकि इसका परिणाम गर्भ पर बहुत घातक होता है। गर्भस्थित सन्तान पर—उसके शरीर, मन तथा आचरण पर—इस समय की इस क्रिया का बहुत ही बुरा असर पड़ता है और बहुधा तो इस क्रिया के कारण गर्भपात भी हो जाया करता है।

लेकिन हम जिस समय से गुज़र रहे हैं, वह बहुत ही बुरा है; लोगों की प्रवृत्तियाँ, उनकी रुचि एकदम बिगड़ गई हैं और मनोबल बहुत ही क्षीण हो गया है। फलतः गर्भकाल के नौ मास तथा बालकों के दूध पिलाते रहने का एक वर्ष—इस प्रकार एक वर्ष नौ मास का समय ब्रह्मचर्य रख कर काटना असम्भव हो उठता है।

अधिकांश पुरुष अपनी पत्नी के हितैषी होते हुए तथा उस पर असीम प्रेम रखते हुए भी या तो व्यभिचार करने पर—पर-नारी-गमन करने पर—बाध्य होते हैं या अपनी स्त्री पर ही व्यभिचार या अत्याचार करने लगते हैं। उन्हें इस बात का बहुत अफ़सोस रहता है, वे लज्जित भी होते हैं तथा इस बात को क़बूल भी करते हैं कि यह उनकी हद दर्जे की कमज़ोरी है; लेकिन मनोबल के अभाव के कारण अपने को रोक रखना उनके लिए अशक्य हो उठता है। चाहे इस बात को लोग क़बूल करें या न करें, आज दिन

देश में ऐसे बहुत कम युवक हैं—उनका सर्वथा अभाव ही समझिए—जो लगभग दो वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने में समर्थ हो सकते हैं। लेकिन लाचारी है। गर्भ के कष्ट से बचा कर प्रकृति ने उनके साथ जो रियायत की है, उसके बदले में उन्हें कुछ तो दण्ड भोगना ही होगा, यह अनिवार्य है। पत्नी के गर्भवती होने पर उन्हें अपने को रोकना होगा, किसी भी हालत में उन्हें इस बात की आज्ञा नहीं दी जा सकती।

श्रीमती मेरी स्टोप्स का कथन है कि प्रबल उत्तेजना होने पर सहन करने योग्य गरम पानी में पूरे शरीर को कुछ देर तक डुबा रखने से लाभ होगा और उत्तेजना जाती रहेगी। शीतल जल का दैनिक स्नान, जिसमें इन्द्रियों को ठण्ढे जल से अच्छी तरह साफ करना भी शामिल है, लाभदायक होगा और उत्तेजना बहुत कम होगी। इस समय स्त्री में मातृत्व का वास रहता है और उसका शरीर इतना पवित्र रहता है कि सम्भोग-लालसा से उसे स्पर्श करना घृणित है।

स्त्रियो को इस प्रकार का कष्ट सहन नहीं करना पड़ता। गर्भ की अवस्था में उनका काम-भाव सो जाता है और सम्भोग की उत्कण्ठा उनके मन में नहीं उठती। लेकिन कई ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्हें कभी-कभी सम्भोग की प्रबल लालसा गर्भवती होने की दशा में भी उठती है। हम तो

इसे अनुचित कहने पर बाध्य हैं तथा हमारी समझ में इसका कारण है आज का काम-दूषित वातावरण और रात-दिन का काम-चिन्तन तथा अति-मैथुन। हम तो यही कहेंगे कि पठन-पाठन आदि में अपना समय बिता कर गर्भ-वती स्त्रियों को मन बहलाना चाहिए। यदि वे ऐसी चीज से दूर रहें, जो उन्हें सम्भोग की याद दिलाती तथा उनके लिए उत्तेजित करती है, तो उनके मन में ऐसी बात न उठे और यदि उठे भी तो मन को वहलाने से वह चिन्ता शीघ्र ही दूर हो सकती है; क्योंकि इस अवस्था में वह क्षीण रहती है तथा बिना अनुचित प्रोत्साहन पाए प्रबल नहीं हो सकती।

लेकिन मेरी स्टोप्स साहिबा एक शिक्षिता, संस्कृत तथा पवित्र विचार वाली महिला का उल्लेख कर कहती हैं कि उसने मुझे ख़ुद बताया था कि—"यद्यपि मुझे यह स्वीकार करने में लज्जा तथा शोक हो रहा है कि मैं इतनी पतित हो गई कि जिस समय मेरा शरीर पवित्र मातृमन्दिर था तथा जिस समय मुझे सम्भोग आदि से सर्वथा अलग रहना चाहिए था, उस समय मुझे पति-संयोग की इतनी प्रबल लालसा हुई, जितनी कि मुझे अपने विवाहित जीवन भर में कभी नहीं हुई थी।"

डॉक्टर साहिबा ने बहुत सी स्वस्थ तथा उत्तम प्रकृति की समझी जाने वाली महिलाओं का विवरण इकट्ठा किया

है, जिसके वल पर वे कहती हैं कि गर्भ को ख़ूराक पहुँचा तथा उसका पोषण करने में महिलाओं का शरीर क्षीण हो जाता है। इस समय उनके लिए पुरुष-वीर्य द्वारा हारमोन (Hormone) तथा वाइटामिन (Vitamine) नामक जो पुष्टिकर द्रव्य मिला करता था, वह भी बन्द हो गया रहता है, इसलिए उनके शरीर को काफ़ी खाद्य नहीं मिलता और खाद्य की कमी से वह व्याकुल हो उठती हैं। वीर्य में स्त्री-शरीर को इस प्रकार की पौष्टिक सामग्री देने की ताक़त है, इसे वे मानती हैं और अन्य कई प्रमुख डॉक्टरों की राय भी देने के लिए तैयार हैं।

उनके मतानुसार जिस प्रकार उपवास के समय हमारे शरीर में खाद्य की कमी पड़ती है तथा हमारे मन में भोजन की प्रबल लालसा होती है, ठीक उसी प्रकार कभी-कभी गर्भ के समय स्त्री के शरीर की दशा हो जाती है। यह उसी दशा में होता है, जब स्त्री-शरीर को गर्भ के लिए आवश्यकता से अधिक खाद्य जुटाना पड़ता है। अस्तु, उनका कहना है कि कभी-कभी स्त्रियों के मन में गर्भ के समय प्रबल काम-सञ्चार होने का यही कारण है तथा इससे यही सिद्ध होता है कि स्त्री-शरीर को उस समय सम्भोग की आवश्यकता है और उसके न होने से उसे हानि होगी।

गर्भ की अवस्था मे सम्भोग की इजाज़त देते समय

डॉक्टर साहिबा ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि ऐसा उसी समय किया जाय, जब स्त्री के मन में यह वासना अत्यन्त प्रबल हो उठे और किसी भी तरह शान्त न हो तथा इसका कई बार सञ्चार हो। पुरुष कभी भी स्त्री को उत्तेजित न करे और केवल उसी के कहने पर उसकी आज्ञा का पालन करे।

यदि पति ऐसा न करेगा तो जिस परिणाम के भय से वह ख़ुद कष्ट उठा रहा है तथा अपनी पत्नी की इच्छा पूरी करने में आनाकानी कर रहा है, वही आगे आवेगा। गर्भावस्था में पुरुष-सहवास से अलग रहना इसीलिए आवश्यक समझा जाता है कि ऐसा करने से गर्भस्थ शिशु के मन पर उसका बुरा असर होगा और वह व्यभिचारी निकलेगा। अब मान लीजिए कि आपकी पत्नी अपनी काम-वासना को दबाने में असमर्थ है, तब रात-दिन उसके दिमाग़ में काम-विचार का सञ्चार हुआ करेगा और इसका—उसके मानसिक विचार का—गर्भस्थ शिशु पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। इससे बेहतर तो यही है कि उसकी कामेच्छा पूरी कर दी जाय, जिससे स्नायुओं को शान्ति मिले और गर्भिणी का दिमाग़ कामोत्तेजना से ख़ाली हो जाय। इस आध घण्टे में यदि शिशु के मन पर बुरा असर भी पड़ता हो, तो कम से कम वह चौबीस घण्टे की काम-विचार-जनित हानि से तो बचेगा। निश्चय ही

यह सम्भोग-जनित हानि उससे कम होगी, जो चौबीस घण्टे की माता की दिमाग़ी उत्तेजना उस पर डालेगी।

अन्त में वे फिर इस बात पर ज़ोर देती हैं कि इस समय पुरुष को काम-लिप्सा की तृप्ति के लिए नहीं, वरन् पिता की तरह पुत्र के हितेच्छा-भाव से प्रेरित होकर, अपनी पत्नी का गर्भ-भार बँटाने के उद्देश्य से, पवित्र कर्त्तव्य समझ कर इस काम में हाथ डालना चाहिए।
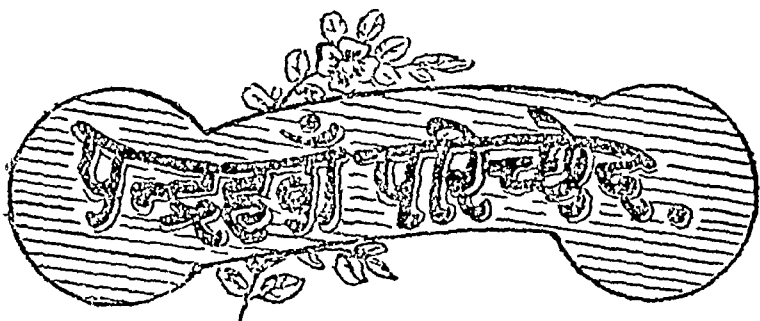
गर्भ-सञ्चार तथा उसका बढ़ना

गर्भ-सञ्चार किस प्रकार होता है, इसका वर्णन स्त्री तथा पुरुष-जननेन्द्रिय सम्बन्धी प्रकरण में कर आए हैं। यहाँ केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि वीर्य-कीटाणु योनि-द्वारा होकर गर्भाशय में पहुँचते हैं। जिस प्रकार स्त्री तथा पुरुष में पारस्परिक आकर्षण होता है, उसी प्रकार डिम्ब और वीर्य-कीटाणु में पारस्परिक आकर्षण रहता है। अस्तु, वीर्य-कीटाणु डिम्ब की ओर आकर्षित होते हैं और गर्भाशय में दोनों का संयोग हो जाता है। इन दोनो का संयोग ही गर्भ का कारण है या वही गर्भ है।

लेकिन सम्भोग के समय स्त्री-पुरुष को इस अन्दरूनी

संयोग का पता नहीं चलता। डिम्ब जो गर्भाशय के मुख के पास पहुँच गया रहता है, इस संयोग के बाद गर्भित होकर सरकने लगता है और अपने नियत स्थान पर पहुँच कर गर्भाशय की दीवार से चिपक या जुट जाता है। जब तक यह गर्भित डिम्ब इस प्रकार चिपक न जाय, तब तक गर्भ का रहना निश्चित नहीं होता। कभी-कभी गर्भित डिम्ब कई कारणों से चिपकने के पहले ही बह जाता है और गर्भ नहीं रहता।

गर्भित डिम्ब के इस प्रकार चिपक जाने पर गर्भाशय की दीवार मोटी होने लगती है और उसकी नली-जैसी ग्रन्थियाँ लम्बी होने लगती हैं और चारों तरफ से गर्भ को ढँक लेती हैं।

धीरे-धीरे भ्रूण बड़ा होने लगता है और उसके ऊपर दो आवरण और बन जाते हैं। एक ऊपर की ओर रहता है और दूसरा भीतर की ओर। बाहर वाला आवरण मोटा होने लगता है और उसके ऊपर बाहरी तथा बहुत छोटे-छोटे बाल-जैसे अङ्कुर निकल आते हैं। खून जब रगों में बहता है, तो उसमें से कुछ पतला हिस्सा छन कर बाहर निकल आता है, इसे लसिका (Lymph) कहते हैं। आवरण के ऊपर के अङ्कुरो द्वारा सोखा जाकर यह लसिका गर्भ को खाद्य पहुँचाता है और पुष्ट करता है। थोड़े दिनों के बाद गर्भाशय का मुख बन्द हो जाता है और फिर बाहर से उसके भीतर कोई पदार्थ प्रवेश नहीं कर पाता।

दो-तीन सप्ताह के बाद जिस जगह भ्रूण चिपका रहता है, वहाँ से गर्भ के पोषण के लिए ताज़ा ख़ून लाने और ख़राब ख़ून ले जाने वाली दो-तीन नलियाँ भ्रूण की नाभि से आकर लग जाती हैं। इन्हीं नलियो के सहारे गर्भ लटका रहता है। बच्चा पैदा होने के बाद यह बाहर आ जाती हैं और शीघ्र काट कर अलग कर दी जाती हैं।

जिस जगह गर्भाशय से नाल लगी रहती है, उस जगह को कमल कहते हैं। उसमें कई ख़ून के गड्ढे रहते हैं, जिनके द्वारा गर्भ को उत्तम ख़ून पहुँचता है। इसके द्वारा भ्रूण का पोषण होता है और भ्रूण में आने-जाने वाला ख़ून साफ़ होता है।

इस प्रकार गर्भ का पोषण माता के ख़ून से होता है। माता का ख़ून तथा लसिका कमल में आता और वहाँ से भ्रूण के पास पहुँचता है।

गर्भ रहने के छठवें हफ्ते में भ्रूण की इन्द्रियाँ बनने लगती हैं और आँख, नाक, कान, जननेन्द्रिय आदि के अङ्क पड़ जाते हैं। इसलिए गर्भ की अवस्था में मन में यह ख़्वाहिश रखना कि मुझे लड़का हो या लड़की ही हो, हानिकर साबित होगा। यदि आपके गर्भ में लड़का हो और आप लड़की की प्रबल लालसा करते रहें, तो बहुत सम्भव है कि उस बालक में बहुत-कुछ स्त्रियोचित मनोवृत्ति आ जाय।

तीसरे मास के अन्त तथा चौथे के प्रारम्भ तक भ्रूण में गति आ जाती है और माता को गर्भ के हिलने-डुलने का आभास मिलने लगता है। लगभग चार मास तक भ्रूण का पैर नीचे और सिर ऊपर की ओर रहता है, इसके बाद वह उलट जाता है। पैदा होते वक़्त भी उसका सिर नीचे और पैर ऊपर रहते हैं।

गर्भिणी के लक्षण

मासिक-धर्म का बन्द होना ही अधिकतर गर्भ रहने का प्रमाण माना जाता है। यदि डेढ़ मास तक स्राव न हो तो लोगों को मालूम हो जाता है कि गर्भ रह गया। यह है भी ठीक और अक्सर ऐसा ही होता भी है, लेकिन कभी-कभी रोग या कमज़ोरी के कारण भी दो-दो मास तक रज-स्राव बन्द हो जाता है। कहीं-कहीं गर्भ स्थित होने पर भी एकाध बार स्राव हो जाता है, लेकिन गर्भ नष्ट नहीं होता। ये नियम के अपवाद-मात्र हैं। स्वाभाविक दशा तो गर्भ के बाद मासिक-स्राव का बन्द हो जाना ही है।

जी मिचलाना

बहुधा स्त्रियो को इस व्याधि से बड़ा कष्ट होता है और गर्भ के कारण स्त्रियो को बहुत वेदना सहनी पड़ती है। लेकिन यह अधिकांश मे उन्हीं का दोष है। जो स्त्रियाँ बिलकुल काम नहीं करतीं और लेटी रहती हैं, उन्हे गर्भ

की अवस्था में बहुत वेदना सहनी पड़ती है और प्रसव-काल में भी उन्हे अधिक देर तक पीड़ा उठानी पड़ती है, इसलिए उन्हें गर्भ रहने पर भी घर के साधारण काम-काज में भाग लेते रहना चाहिए। हाँ, भारी वज़न उठाना या इतना अधिक परिश्रम करना कि जिससे शरीर टूटने लगे, अनुचित है। साधारण काम-धाम करते रहने से पाचन क्रिया ठीक रहती है, स्वास्थ्य बिगड़ने नहीं पाता और कमज़ोरी नहीं आने पाती, जिससे न तो गर्भ की अवस्था में अधिक कष्ट होता है और न प्रसव ही अधिक वेदनापूर्ण होता है।

लगभग पन्द्रह दिन के बाद गर्भिणी का मन मिचलाने लगता है और उलटी हो जाती है। यह बहुधा प्रातःकाल के समय होता है और चौथे मास तक यह क्रम जारी रहता है। इस अवस्था में स्त्रियों की भोजन से रुचि चली जाती है और उनका खान-पान विचित्र ही हो जाता है। किसी को खाली दाल खाने को जी चाहता है तो किसी को खाली रोटी ; कोई मूली खायगी तो कोई खटाई और कोई बताशे चाहेगी तो कोई-कोई मिट्टी खाने के लिए पागल हो उठेंगी।

कुचों में परिवर्त्तन

गर्भ रहने के बाद स्त्रियों के स्तन में भी परिवर्त्तन होता है। उनका आकार बढ़ जाता है और वे सख्त हो जाते हैं।

उनका रङ्ग बदल कर कुछ मैला-सा हो जाता है और अन्त में काला हो जाता है। तीसरे या चौथे महीने उसमें सफ़ेदी लिए हुए पानी-सा आने लगता है और दूध बनना प्रारम्भ हो जाता है।

कमर

लगभग दो मास के बाद से गर्भाशय बढ़ जाने के कारण पेड़ू बढ़ने लगता है और कमर का हिस्सा बहुत फैल जाता है।

मानसिक परिवर्त्तन

स्त्रियों में मानसिक परिवर्त्तन भी होता है, जिसका वर्णन पिछले प्रकरण में कर आए हैं।
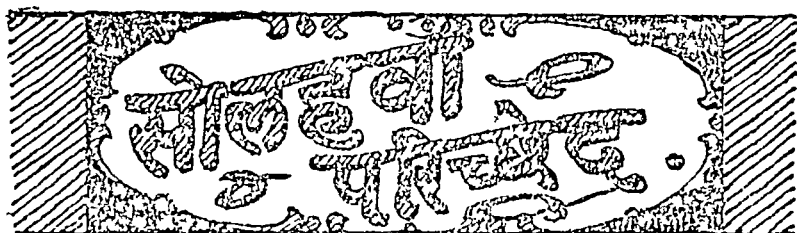
गर्भ-रक्षा
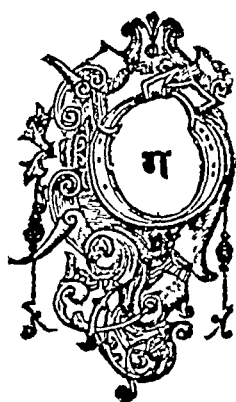
गर्भ-रक्षा के लिए अन्य उपचार निर्दिष्ट करने के पूर्व हम गर्भपात पर विचार कर लेना चाहते हैं; क्योंकि गर्भ के लिए शायद यह सबसे बड़ी बाधा है, और आज-कल इससे अधिकांश स्त्रियों को बड़ा कष्ट झेलना पड़ता है। गर्भ के लिए तीसरा और सातवाँ महीना बड़ा खतरनाक होता है तथा अधिकांश में गर्भ इन्हीं महीनों में खराब हुआ करता है। तीन मास के पहले नष्ट होने को गर्भ-स्राव और छः मास के बाद होने वाले को अकाल-प्रसव कहते है। तीन महीने से छः महीने के बीच में नष्ट होने वाले को भी गर्भ-स्राव ही कहा जाता है।

जानुप्रागवतरण
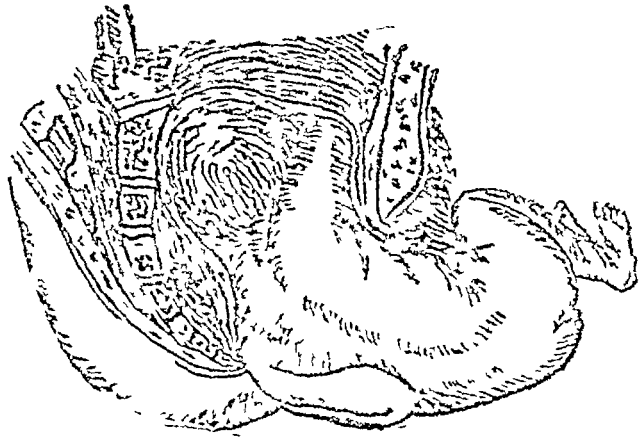
दोनों कन्धे बाहर हो गए हैं और वक्षस्थल टेढ़ा पड़ गया है

गर्भोदक की थैली

थ = थैली, य = योनि । गर्भोदक की थैली, जो शिर के नीचे है, अपने दबाव से गर्भाशय के मुख को चौड़ा कर रही है और योनि के निकट जा पहुँची है ।

गर्भपात के प्रधान कारण ये हैं—अनियमित भोजन, गरम चीज़ों का सेवन, उत्तेजित मनोवृत्ति, स्नायु सम्बन्धी दुर्बलता, क़ब्ज़ियत, गर्भ के समय पुरुषों का अत्याचार, और मानसिक या शारीरिक अचानक धक्का। गर्भपात से स्त्रियों को बहुत तरह की बीमारियाँ हो जाया करती हैं, जिनका वर्णन कर आए हैं।

गर्भपात को हम तीन हिस्सों में विभक्त करते हैं :—

१—यह वह अवस्था है, जब गर्भ को कोई हानि नहीं पहुँची रहती; लेकिन स्त्री-शरीर में प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई रहती है। गर्भवती को अकारण ही बेचैनी और कमज़ोरी मालूम होती है। कमर, जाँघ, कूल्हों, पीठ और पेड़ू में दर्द होने लगता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि ये उपद्रव लगातार होते रहें। ऐसा भी होता है कि ये प्रारम्भ होते और बन्द हो जाते तथा फिर प्रारम्भ होते और बन्द हो जाते हैं। ऐसा कई बार होता है। कभी-कभी बुख़ार आ जाता है और रक्त का वेग बढ़ जाता है। अन्न की रुचि नहीं रहती, प्यास खूब लगती है।

इस अवस्था में गर्भ की कोई क्षति नहीं हुई रहती, इसलिए उपचार करने से गर्भ बचाया जा सकता है। गर्भवती को ठण्डे हवादार कमरे में खाट पर आराम से सुला देना चाहिए। लेकिन वह करवट होकर या पट होकर न सोने पावे, चित्त होकर लेटे। मल-मूत्र त्याग करने के लिए भी

उसे विस्तार से न उठने देना चाहिए। ऊपर से कुछ हलकी चीज़ ओढ़ा देना चाहिए। गर्भिणी को किसी प्रकार शारीरिक या मानसिक परिश्रम न होने पावे, तथा भोजन के लिए दूध, साबूदाना आदि हलके पदार्थ दिए जायँ। किन्तु केवल इन्हीं उपायो के सहारे रहना ठीक नहीं। एक तरफ़ इन बातों की व्यवस्था भी करते जायँ और डॉक्टर को भी बुलवा भेजें।

२—इस अवस्था में उपयुक्त उपद्रवों का वेग बढ़ जाता है और प्रसव-द्वार से रक्त भी आने लगता है, जो इस बात की सूचना है कि गर्भ विचलित हो रहा है। इस अवस्था में तो डॉक्टर या योग्य दाई की सहायता अनिवार्य हो जाती है।

पहली अवस्था में जो उपचार बतला आए हैं, उन्हें तो करना ही चाहिए, उनके अलावा गर्भिणी के प्रसव-द्वार पर बर्फ़ कपड़े में लपेट कर रखना चाहिए, और खाट का पैताना थोड़ा-सा ऊँचा कर देना चाहिए, जिससे गर्भिणी की कमर कुछ ऊँची हो जाय और हृदय नीचे आ जाय। मेथी की कुनकुनी चाय देने से भी लाभ होता है और रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह अवस्था एकदम निराशाजनक नहीं है, उपचार करने से लाभ हो सकता है।

३—इस अवस्था में ख़ून का वेग कभी-कभी तो इतना बढ़ जाता है कि देख कर तबीयत घबड़ा उठती है। दर्द

बहुत बढ़ जाता है और गर्भ नीचे को खिसक पड़ता है। इस अवस्था में डॉक्टर के हाथ में सभी बातें छोड़ देनी चाहिए; लेकिन इस अवस्था में लाभ होने की उम्मीद बहुत कम रहती है और स्थिति निराशाजनक हो जाती है। इस अवस्था में गर्भ की चिन्ता छोड़ कर गर्भिणी को बचाने की कोशिश करनी चाहिए और इस बात पर खूब ध्यान रखना चाहिए कि गर्भ में भ्रूण की मृत्यु न होने पावे। यदि भीतर ही मृत्यु हो गई हो तो फिर जिस क़दर हो सके, चाहे चीर-फाड़ कर या किसी अन्य प्रकार से, शीघ्र गर्भ को बाहर लाना चाहिए।

यदि कई बार गर्भपात होने लगे तो इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि दो-चार वर्ष तक गर्भ रहने ही न पावे। इससे गर्भाशय को आराम मिलेगा और वह पुष्ट होकर गर्भ-धारण के लायक़ बन जावेगा। एक बार जिस अवस्था में आकर गर्भ गिर जाता है, उसी अवस्था में जब दूसरा गर्भ पहुँचे, तब खूब सतर्क रहना चाहिए और उसकी रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि उसी समय गर्भपात होने की अधिक सम्भावना रहती है। गर्भवती होने पर ठण्डे जल का स्नान बहुत लाभदायक होता है। दिन को सोना न चाहिए और अधिक परिश्रम से बचना चाहिए तथा जहाँ तक हो सके, जल्दी सोना और तड़के उठना चाहिए। पति-संयोग से बहुत परहेज़ करना चाहिए।

गर्भ रह जाने पर बच्चे को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए; क्योंकि इससे गर्भपात का डर रहता है। बच्चे को पास भी न सुलाना चाहिए, नहीं तो उसके लात व हाथ की चोट से भी नुक़सान हो सकता है। गर्भपात के बाद गर्भिणी को उससे भी अधिक सावधान रहना चाहिए, जैसा प्रसव के बाद रहा जाता है। गर्भपात के बाद गर्भाघात की बड़ी सम्भावना रहती है, इसलिए इस सम्बन्ध में भी सतर्क रहना चाहिए।

गर्भवती के पालन करने योग्य नियम

१—गर्भिणी को अपना कोठा सदैव साफ़ रखना चाहिए। क़ब्ज़ियत रहने से मल एकत्र होता है और प्रसव-मार्ग सङ्कीर्ण हो जाता है, फलतः प्रसव के समय गर्भिणी को बड़ा कष्ट होता है। क़ब्ज़ियत दूर करने के लिए हल्का जुलाब देना चाहिए, तेज़ जुलाब देने से गर्भपात होने की सम्भावना रहती है।

२—गर्भिणी को पेशाब भी साफ़ होना चाहिए। इस शिकायत को दूर करने के लिए सबसे अच्छी दवा है दिन में तीन-चार बार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना। यदि गरमी के दिन हों तो दूध और जल बराबर मिला कर सवेरे ही पी लेना चाहिए। पेशाब साफ़ लाने के लिए यह सबसे बढ़ कर दवा है।

३—गर्भिणी के खान-पान का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसे सादा, पुष्टिकारक तथा हलका भोजन देना चाहिए। फल जितना हो सके, खाना चाहिए और मिर्च, मसाला, तेल, खटाई से यथासम्भव परहेज़ करना चाहिए। यदि खटाई खाने की प्रवल इच्छा हो तो एकाध फाँक नींबू खा लेना चाहिए। खान-पान में थोड़ी भी बदपरहेज़ी करने से खट्टे डकार आने लगते हैं और गले में जलन मालूम होने लगती है। इससे गर्भिणी को बड़ा कष्ट होता है।

४—खाना खाने के बाद गर्भिणी को तुरन्त किसी काम में न लग जाना चाहिए, थोड़ी देर विश्राम कर लेना उसके लिए परम आवश्यक है। इसके विपरीत चलने से पाचन क्रिया में बाधा आने की सम्भावना रहती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि खाना खाने के बाद दिन को सो रहना चाहिए। गर्भिणी को सदैव सुस्ती सी मालूम पड़ती रहती है। खाने के बाद वह सुस्ती और भी बढ़ जाती है। इसलिए बहुधा वे लोग रोज़ दिन को सो जाया करती हैं। इससे बड़ी हानि होती है और दिनभर उनकी तबीयत भारी बनी रहती है। दिन को सो रहने से रात को बड़ी देर तक नींद नहीं आती, बेचैनी सी मालूम होती है और भोजन ठीक से नहीं पचता।

५—गर्भिणी के लिए भूखे रहना या उपवास करना वर्जित है। गर्भावस्था में भूखे रहने से गर्भस्थ बालक को

बड़ा कष्ट होता है। गर्भिणी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने शरीर का जितना ही यत्न करेगी, गर्भस्थ बालक उतना ही हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग होगा।

६—प्रतिदिन प्रातःकाल थोड़ा सा दूध पीने से गर्भिणी को लाभ होता है। इससे शरीर आलस्य-रहित और फुर्तीला बना रहता है तथा मिचली को भी इससे बहुत लाभ होता है।

७—गर्भिणी को अपनी सफाई का बहुत ध्यान रखना चाहिए। बहुधा गर्भिणी की योनि से सफेद रङ्ग का द्रव्य निकला करता है, जिससे उनकी तबीयत भड़का करती है और साड़ी अक्सर खराब हो जाती है। यदि वे अपनी गुप्तेन्द्रियों को खूब साफ रक्खें तो यह कष्ट न हो।

८—गर्भिणी के मुख से पानी छुटा करता है, थूक आता रहता है और बार-बार क़ै के साथ एक खट्टा रस आता है, जो दाँत में जम कर उसे खराब कर देता है। इन कारणों से मुँह में दुर्गन्धि आने लगती है। इसलिए गर्भिणी को अपना मुख दिन में दो-तीन बार पाउडर से साफ कर डालना चाहिए और पान, इलायची, जावित्री, लौंग, केसर आदि से मुँह को साफ रखना चाहिए।

९—गर्भिणी को अपने वस्त्र, बिस्तर आदि सदैव स्वच्छ रखने चाहिए। बहुत सी स्त्रियाँ गर्भ की दशा में बड़ी मैली-कुचैली रहने लगती हैं, यह बहुत खराब है। तङ्ग कपड़ा तो

भूल कर भी अपने काम में न लाना चाहिए। कमर और स्तन को यथासम्भव ढीला रखना चाहिए।

१०—गर्भ की दशा में स्त्रियाँ भूत-प्रेत के डर से खुशबू आदि नहीं लगातीं और न सुगन्धित फूलों का ही उपयोग करती हैं। यह एक बड़ा भारी भ्रम है। इस दशा में सुगन्धि का, खास कर फूलों का जितना अधिक उपयोग किया जा सके, अच्छा है। रात को सोते समय भी तकिए के नीचे या आस-पास सुगन्धित फूल रख लेना चाहिए। फूलों से चित्त को प्रसन्नता होती है और स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

११—गर्भिणी को अधिक परिश्रम न करना चाहिए, किन्तु एकदम आलसी भी न बन जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं।

१२—जिन स्त्रियों का पेट बहुत ज्यादा निकल पड़ता है, उन्हें बड़ा कष्ट होता है, भार अधिक मालूम पड़ता है और तबीयत ऊबने सी लगती है। उन्हें झूलते हुए भाग को कपड़े से उठा कर बाँध लेना चाहिए।

१३—गर्भिणी को कहीं अकेले न जाने देना चाहिए तथा किसी भयानक, वीभत्स दृश्य को न देखने देना चाहिए। गर्भिणी के मन में अचानक डर पैदा होने से गर्भपात का भय रहता है।

१४—यदि किसी दूसरी स्त्री को प्रसव-पीड़ा हो रही

हो, तो उस समय गर्भिणी को वहाँ न जाने देना चाहिए। क्योंकि दूसरे की प्रसव-वेदना देख कर उसके अत्यन्त भय-भीत होने की सम्भावना रहती है।

१५—किसी की मृत्यु आदि उद्वेगजनक समाचार गर्भिणी को यथासम्भव न देना चाहिए या यदि उस समा-चार का उस तक पहुँचना आवश्यक हो, तो खा-पी लेने के बाद एक तरीक़े से उसे देना चाहिए।

१६—स्त्री के ऋतु-स्राव का जो नियत समय हो, उस समय गर्भ रह जाने के बाद भी सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि गर्भपात की उसी समय बड़ी सम्भावना रहती है।

१७—स्नान नियमित रूप से जारी रखना चाहिए। अधिक ठण्ढा या अधिक गरम पानी से बचना चाहिए। अधिक देर तक नहाना न चाहिए, जहाँ तक हो सके, ठण्ढे जल से स्नान करना चाहिए।

१८—जिनको घर का साधारण काम-काज करना पड़ता है, उनके लिए तो नही, लेकिन जिनके घर में यथेष्ट दास-दासियाँ हैं, उन्हे खुली हवा मे टहलना चाहिए। सवारी से यथासम्भव परहेज़ रखना चाहिए, और यदि किसी सवारी पर चढ़ना आवश्यक हो पड़े तो कम से कम उसे ज़ोर से न दौड़ाना चाहिए।

१९—ऊँचे घराने की अधिकांश भारतीय ललनाओं

का बाहर निकलने का अवकाश नहीं मिलता, बराबर कमरे में ही बैठी रहती हैं, यह ठीक नहीं है। गर्भ की अवस्था में उनके लिए शुद्ध वायु तथा धूप का मिलना निहायत ज़रूरी है। कमरे की खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए।

२०—गर्भवती मुँह ढँक कर न सोवे, और कमरे की खिड़की खुली रक्खे। सोते समय पेट पर अधिक बल न पड़े, इस बात का ध्यान रहे। घुटनों को पेट की तरफ जोड़-कर सोना ठीक नहीं। जल्दी सोना और सवेरे उठना सदैव लाभप्रद सिद्ध होगा।

२१—मन की दशा पर ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, मन में बुरे भावों को आने न दे और उनके चिन्तन में अधिक समय व्यतीत न करे। सदैव अपने को प्रसन्न रखने की चेष्टा करे और पवित्र विचारों में लीन रहे। बालक में जिन सद्गुणों की प्रधानता लाने की आपकी इच्छा हो, गर्भ के समय अपने में भी आपको उन्हीं की प्रधानता विद्यमान रखने की कोशिश करनी चाहिए और उन्हीं बातों के चिन्तन में समय बिताना चाहिए। यदि आपके मन मे काम-वासना की चिन्ता रहेगी, तो आपका बालक कामी होगा, यदि आपके मन मे वीर-भाव वर्त्त-मान रहेगा, तो बालक निडर तथा बहादुर निकलेगा।

२२—स्तन की भी सतर्क होकर रक्षा करनी चाहिए। इस समय इस अङ्ग को दूध की तैयारी करनी पड़ती है,

इसलिए इसे छूना, मसलना या और किसी प्रकार इसका उपयोग करना हानिकर है। कञ्चुकी से कस कर बाँधना भी न चाहिए। ढीले कपड़े ही इस समय पहनना चाहिए।

२३—गर्भवती की योनि में मैलेपन के कारण या सफ़ेद द्रव्य निकलने के कारण खुजली हो जाती है। उस स्थान पर गर्भ की दशा में रक्त-सञ्चार भी बहुत होता है, इसलिए खुजलाहट पैदा हो जाती है। इसकी एकमात्र दवा है उस स्थान को साफ रखना। गरम पानी से कपड़ा भिगो-कर सेंकने से भी लाभ होता है। यह क्रिया तीन-चार मिनिट से अधिक न की जाय और सूखे कपड़े से पानी खूब सुखा दिया जाय। बहुधा स्त्रियाँ इसे कामोत्तेजना समझ लेती हैं। यह भ्रम है। कामोत्तेजना के सम्बन्ध में अलग विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। यथासम्भव इससे बचने का यत्न करना चाहिए और अपने को अध्ययन तथा सात्विक खेल-कूद में लगाए रहना चाहिए।

गर्भ का समय

गर्भ स्थित होने से प्रसव तक लगभग २८० दिन या मासिकधर्म-अवधि के १० मास लगते हैं। मासिकधर्म साधारण तौर पर २८ दिनों में होता है, लेकिन इसकी ठीक तिथि नियत करना बहुत कठिन है। पहले तो यही नहीं मालूम रहता कि गर्भाधान किस दिन हुआ। यदि वह भी

किसी प्रकार मालूम हो जाय, यद्यपि ऐसा होना बहुत ही कठिन है, तो भी यह कोई निश्चित बात नहीं है कि ठीक २८० दिन में ही प्रसव होगा। बहुधा ऐसा होता है कि जिस दिन स्त्री रजोदर्शन से शुद्ध हुई हो, और जिसके बाद से रजोदर्शन फिर न हुआ हो उससे नव मास और कुछ दिनों में प्रसव होता है।

लेकिन आजकल हमारे आचार-विचार कुछ ऐसे बदल गए हैं कि कभी-कभी बच्चा होने के बाद रजोदर्शन होने के पहले ही गर्भ रह जाता है। ऐसी दशा में जिस समय गर्भ फड़कने लगे, उससे १५० दिन के बाद प्रसव होगा, ऐसा समझना चाहिए ; क्योंकि गर्भ का बालक जब आधा समय का हो जाता है, तब उसमें गति आती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि गर्भ रह जाने पर भी प्रथम या द्वितीय मास में स्त्री को रजोदर्शन हो जाता है। ऐसी दशा में दिन गिनना बहुत कठिन हो जाता है। किन्तु यह रज गर्भाशय से नहीं आता ; क्योंकि गर्भाशय का मुँह तो गर्भ स्थित होने के बाद बहुत शीघ्र ही बन्द हो जाता है। इसकी पहिचान यह है कि नियमित रजस्राव की अपेक्षा यह बहुत थोड़े परिमाण में निकलता है और बहुत कम समय तक जारी रहता है।

लोगों को प्रसव का समय जानने की चिन्ता इसी-लिए होती है, जिसमें वे प्रसव-काल की आवश्यक सामग्री

जुटा लें और उस समय के लिए तैयार रहें। इसके लिए बेहतर तो यही है कि आठ मास खतम होने तथा नौ के प्रारम्भ होते ही यह सब तैयारी कर लेनी चाहिए।

पुत्र या पुत्री की पहचान करने के लिए भी लोग बड़े उत्सुक रहते हैं। इसका कारण अधिकांश में यही जान पड़ता है कि लोग पुत्रोत्पत्ति के अधिक इच्छुक होते हैं और कन्या की पैदाइश कम चाहते हैं। लोगों का यह विचार भ्रमपूर्ण है। यद्यपि दुर्भाग्यवश इस देश में कन्या के पिता को बड़ी लाञ्छना एवं चिन्ता का सामना करना पड़ता है तथा कन्या के विवाह के लिए बड़ी ठोकरें खानी पड़ती हैं, फिर भी देश में कन्या तथा पुत्र का होना तो अनिवार्य है। और जो बात अनिवार्य हो, उसे कष्टप्रद होने पर भी धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए।

ज्योतिर्विद्या-कोविदों का कहना है कि जिस नक्षत्र में गर्भाधान होगा, उसी में प्रसव होगा। पञ्चाङ्ग उलट कर देखने से पता चलेगा कि प्रत्येक नक्षत्र की पुनरावृति प्रायः ९ महीने ९ दिन में होती है। यह गणना भी ठीक मालूम होती है, लेकिन इसके अनुसार भी प्रसव-काल का ठीक-ठीक समय नहीं बताया जा सकता; क्योंकि गर्भाधान लोग पत्रा देख कर तो करते नहीं, और सदैव ऐसा करना सम्भव भी नहीं दिखता।

कुछ लोगों का कथन है कि इसीलिए अच्छे नक्षत्र में

गर्भाधान करना चाहिए। ये लोग मानव-स्वभाव की कमज़ोरियों को भूल जाते हैं। यह उत्तेजना कब, किस पर सवार हो जाय, कोई नहीं जानता। यदि मन पर मनुष्य का इस क़दर क़ब्ज़ा रहता तो फिर पुलिस, जेल, न्याय-विभाग, वेश्यालय—ये क्यों दृष्टिगोचर होते ?

सत्रहवाँ परिच्छेद।
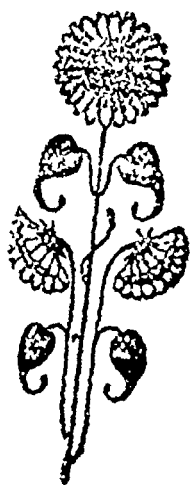
प्रसव

बालक का माता के गर्भाशय से बाहर निकलना ही प्रसव कहलाता है। जो स्त्रियाँ हृष्ट-पुष्ट होती हैं, जिनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, तथा जिनका शारीरिक गठन पूर्ण विकसित एवं सुदृढ़ रहता है, उन्हें प्रसव में अधिक कष्ट नहीं होता। जिनकी कमर व पेड़ू की हड्डियाँ पुष्ट और अच्छी बनी रहती हैं, जिनके जरायु के मुख के समीप की हड्डियाँ—जिनसे बच्चा आता है—तङ्ग न होकर चौड़ी होती हैं, तथा जिन्हें ठीक उमर में प्रसव करना पड़ता है, उनकी प्रसव-वेदना असह्य नहीं होती। इसके विपरीत नाज़ुक, आलसी तथा कम उमर वाली माताओं को प्रसव

के समय बड़ी वेदना का सामना करना पड़ता है तथा कई की तो मृत्यु हो जाती है। यदि किसी महिला को प्रसव की पीड़ा से यथासम्भव बचना हो तो उसे उपरोक्त बातों पर ध्यान देकर तदनुसार अपनी ऋतुचर्या तय करनी चाहिए।

इस देश में रहने वाली अधिकांश अङ्गरेज-महिलाओं को उनकी स्वास्थ्यकर दिनचर्या तथा सबल विकसित शरीर के कारण उतनी प्रसव-वेदना नहीं सहनी पड़ती, जितनी इस अभागे देश की कुलीन स्त्रियों को। इस देश में ही नीच समझी जाने वाली महिलाओं तथा जङ्गली स्त्रियों को कभी इतनी प्रसव-वेदना नहीं होती। बात की बात में उनके बच्चे बाहर आ जाते हैं। इसका कारण है उनका शारीरिक स्वास्थ्य, परिश्रम, खुली वायु तथा धूप में समय व्यतीत करना।

प्रसव के कुछ दिन पूर्व ही लोगों को इस बात की सूचना मिल जाती है कि प्रसव का समय समीप है। गर्भाशय, जो इन दिनों बढ़ता बढ़ता नाभि तक पहुँच गया रहता है, लगभग दस दिन पूर्व कुछ नीचे को खसक आता है। कलेजे और छाती पर जो बोझ-सा पड़ा रहता था, वह मिट जाता है और तबीयत कुछ हलकी हो जाती है। गर्भिणी खुल कर साँस लेने लगती है और उसे आराम मालूम पड़ता है। सुस्ती बिलकुल मिट जाती है और काम-

काज में गर्भिणी का मन अधिक लगने लगता है। लेकिन इस दशा में अधिक काम-काज हर्गिज़ न करना चाहिए। जननेन्द्रिय से जो एक प्रकार का सफेद द्रव्य निकलने लगता है, उसमें कभी-कभी रक्त-विन्दु भी मिले रहते हैं। लेकिन यदि रक्त अधिक हो तो समझना चाहिए कि यह अकाल प्रसव की सूचना है। इसके बाद प्रसव-काल उपस्थित होता है और लक्षण प्रकट होते हैं। इन लक्षणों के प्रकट होने पर समझना चाहिए कि अब प्रसव में कुछ घण्टों की ही देर है। यदि इन लक्षणों के प्रकट होने पर भी प्रसव न हो तो चिकित्सक को दिखा कर, उसकी सलाह लेनी चाहिए।

प्रसव के लक्षण

१—मूत्राशय और वस्ति में दाह एवं मूत्राशय तथा अन्त्रावली पर दबाव होने से गर्भिणी को बारम्बार पेशाब तथा दस्त का आना।

२—गर्भिणी का जी मिचलाता है और क़ै भी होने लगती है। यह लाभप्रद है। गर्भाशय का मुख खुलने में इससे सहायता मिलती है।

३—गर्भिणी के बदन में कँपकँपी उठती है और दाँत भी कटकटाने लगते हैं, मानो उसे बड़े ज़ोर की ठण्ढ लग रही हो, किन्तु वास्तव में ठण्ढ नहीं लगती।
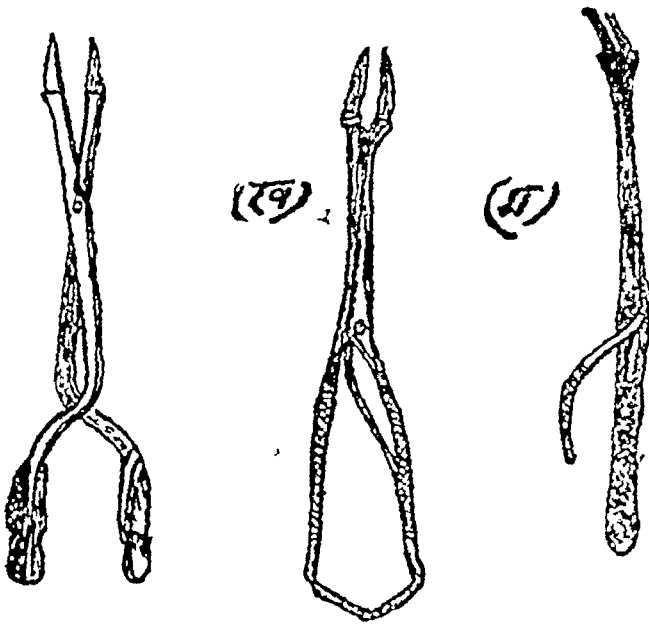
अनेक प्रकार के पर्फोरेटर

४—योनि से जल निकलने लगता है और दर्द कमर से उठ कर पेट तक जाता है।

प्रसव की पीड़ा दो प्रकार की होती है—सच्ची और झूठी। सच्ची पीड़ा पेट से प्रारम्भ होकर कमर, पीठ, जङ्घा तक जाती है और झूठी पीड़ा केवल पेट में ही होती है। सच्ची पीड़ा नियत समय पर दस-दस या पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट के बाद आती है और बराबर बढ़ती ही जाती है, झूठी पीड़ा अनियमित तथा कुछ हलकी होती है। सच्ची पीड़ा में गर्भाशय का मुख प्रति बार खुलता और उसमें से मैला पानी निकलता है, झूठी वेदना में न तो पानी निकलता और न गर्भाशय का मुँह ही खुलता है।

इस वेदना में ग़नीमत यही होती है कि प्रसव-वेदना रह-रह कर आती है और प्रसूतिका को बीच-बीच में आराम करने का समय मिल जाता है। इन वेदनाओं के कारण शीघ्र ही गर्भाशय का मुख खुल जाता है और बच्चे का जन्म होता है।

प्रसव की तैयारी

प्रसव की तैयारी में सबसे प्रथम सूतिका-गृह या वह कमरा आता है, जिसमें प्रसूतिका रक्खी जायगी। प्रसव-वेदना के प्रारम्भ से लेकर एक मास तक या कम से कम पन्द्रह दिन तो अवश्य ही प्रसूतिका को उस घर में रहना

चाहिए। प्रसूतिका-गृह को चुनते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

१—जहाँ प्रसूता की चारपाई हो, वहाँ सीधी हवा तो न आनी चाहिए, लेकिन कमरे में हर समय ताज़ी हवा आने तथा गन्दी हवा बाहर निकलने के लिए पूरा प्रबन्ध चाहिए।

२—गीली या गन्दी ज़मीन न होनी चाहिए। प्रसूतिका का मल-मूत्र बहुत जल्द वहाँ से हटाए जाने का प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे कमरे में गन्दगी न होने पावे।

३—प्रसूतिका के उपयोग के लिए जो कपड़े दिए जायँ, वे काफी साफ़ हों। उसे कपड़े की कमी भी न होने पावे। प्रसूतिका को कपड़े अक्सर बहुत कम दिए जाते हैं। उसके लिए तथा बच्चे के लिए यथेष्ट कपड़ों का प्रबन्ध होना चाहिए।

४—यदि जाड़े या बरसात के दिन हों, तो कमरे में आने वाली ठण्ढी वायु को गरम रखने की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कमरे में लकड़ी की धूनी या कोयला जलाना पड़ता है। ऐसा करते समय दो बातों का ध्यान रखना चाहिए—(१) धुआँ निकलने का ऐसा प्रबन्ध हो कि बच्चे तथा प्रसूतिका की आँखो को तकलीफ न हो या साँस लेने में कष्ट न होने पावे, और (२) हवा सदैव काफी मिलती रहे।

५—कमरे में प्रकाश भी यथेष्ट आना चाहिए।

हम लोगों के यहाँ काफ़ी हवा देना या खिड़की खुली रखना तो अलग रहा, उस कमरे के सारे दरार तक बन्द कर दिए जाते हैं और पर्दा डाल कर सबके सब मार्ग बन्द कर दिए जाते हैं। धुआँ भी वहाँ बेतरह होता रहता है। प्रसूतिका की खाट के नीचे एक गोरसी भर कर रख दी जाती है, जिससे बराबर धुआँ निकल कर बालक तथा उसकी माता की आँखों और साँस की नलियों में पहुँचता रहता है। न जाने इस प्रथा के कारण कितने बच्चों की भूमिष्ठ होते ही तथा कितनों की प्रसूतिका-गृह में ही मृत्यु हो जाती है और उनकी माताओं को असमय ही बुढ़ापा तथा रोग का सामना करना पड़ता है।

सूतिकागार में अधिक लोगों की भीड़-भाड़ न होनी चाहिए। उस घर में कुटुम्ब की एक ऐसी स्त्री का रहना अत्यन्त आवश्यक है, जिसका प्रसूता के प्रति प्रेम हो और जिस पर प्रसूता को भी विश्वास हो। इस स्त्री को दो-चार बच्चे की माँ होना चाहिए, अर्थात् उसे प्रसव का अनुभव होना चाहिए और उसका स्वभाव भी ऐसा होना चाहिए, जिससे उसमें शीघ्र ही घबराहट दिखाई न दे। वह सदैव प्रसूतिका को धैर्य देती रहे और उसका मन बहलाने की चेष्टा करती रहे।

प्रसव की वेदना प्रारम्भ होते ही किसी चतुर दाई को

बुला लेना चाहिए। इस स्त्री में भी वे ही गुण होने चाहिए, जो ऊपर बताए जा चुके हैं। इसके अलावा उसे धातृ-विद्या में भी कुशल और दयालु स्वभाव की होना चाहिए। इस दाई से प्रसूतिका का परिचय कुछ पहले से ही करा रखना चाहिए, जिसमें उसके आने पर प्रसूतिका के मन में सङ्कोच या लज्जा न पैदा हो। दाई को अपना काम शुरू करने के पूर्व कपड़े बदल कर, साफ स्वच्छ कपड़े पहन लेना चाहिए और हाथ के नाख़ून काट कर हाथ-पाँव ख़ूब अच्छी तरह साबुन से धोकर साफ कर लेना चाहिए।

पीड़ा के आरम्भ से लेकर गर्भाशय के मुख खुलने तक की अवस्था को प्रसव की प्रथमावस्था कहते हैं। अनभिज्ञ दाइयाँ इसी अवस्था में प्रसूतिका को सौरि-गृह में बिठा कर ख़ूब जोर करने को कहती हैं। इससे बेचारी प्रसूतिका अधमरी हो जाती है। इस अवस्था में प्रसूतिका को खड़ी होकर इधर-उधर थोड़ा टहलना चाहिए। इसके अलावा कुछ ऐसा यत्न करना चाहिए, जिससे प्रसूतिका को उबकाई आए। उबकाई आने से गर्भाशय का मुख खुलने में सहायता मिलती है। प्रसूतिका के मुख में उसके केश ठूँसने से उसका जी मिचला कर तुरन्त उबकाइयाँ आने लगती हैं। अनेक स्त्रियों को बिना किसी बाह्य उप-चार के आप से आप उबकाइयाँ आने लगती हैं। यह

प्रसूता के लिए बहुत ही अच्छा है। जी मिचलते देख कर किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिए।

जब तक गर्भाशय का मुख नहीं खुलता, तब तक प्रसव कराने का समस्त प्रयत्न विफल होता है। इसलिए जब तक गर्भाशय का मुख न खुले, तब तक वैसी चेष्टा कर प्रसूता को हलाकान करने से कोई लाभ नहीं। जरायु का मुख खुलते ही पानी की थैली फट जाती है और पानी बाहर निकलने लगता है। यहीं से प्रसव की द्वितीयावस्था प्रारम्भ होती है; लेकिन कभी-कभी पानी की थैली नहीं फटती, इसलिए दाई को थैली फटने के भरोसे बैठे न रहना चाहिए। दाई को चाहिए कि थोड़ी-थोड़ी देर से हाथ डाल कर गर्भाशय को देख लिया करे कि उसका मुख खुला या नहीं। गर्भाशय का मुख खुलते ही बाहर तक बच्चे के निकलने लायक़ एक पथ तैयार हो जाता है। यदि पानी की थैली न फटे और बच्चा उस थैली में बन्द ही बाहर आ जाय तो शीघ्र ही उस थैली को चाक़ू से फाड़ डालना चाहिए। इस कार्य में ज़रा भी देर होने से बच्चे की मृत्यु हो जाने की सम्भावना रहती है।

प्रथमावस्था

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य यह है कि जब तक गर्भाशय का मुख अच्छी तरह न खुल जाय,

तब तक इस थैली का सुरक्षित रहना ही वाञ्छनीय है। पानी की थैली अन्त तक सुरक्षित रहने से वह गर्भाशय के मुख को धक्का देकर खोलने में सहायता पहुँचाती है तथा इससे प्रसव-कार्य सुगम हो जाता है। इसके पहले ही फट जाने से प्रसव में बड़ा ही कष्ट होता है और फिर बच्चे का सिर पहले न आकर हाथ या पैर बाहर आते हैं और प्रसूतिका की जान का खतरा हो जाता है। इसलिए मुख खुलने के पूर्व न तो प्रसूता को ही ज़ोर कराना चाहिए और न किसी प्रकार झिल्ली में धक्का ही लगने देना चाहिए।

प्रसव की इस प्रथमावस्था में प्रसूतिका को गरम दूध पिलाना चाहिए। इससे गर्भाशय का मुख खुलने में सहायता मिलती है और प्रसूता, जो लस्त पड़ गई रहती है, ज़रा सचेष्ट हो जाती है तथा उसमें कुछ बल भी हो आता है। बहुत से लोग इस अवस्था में प्रसूतिका को कुछ भी खाने को नहीं देते। वे समझते हैं कि इससे प्रसव-कार्य में बाधा पड़ेगी। प्रसव की यह प्रथमावस्था कई लोगों को घण्टों जारी रहती है। कभी-कभी तो यह दो-दो दिन तक होती रहती है। ऐसी अवस्था में, जब कि प्रसूता को इस प्रकार वेदना सहनी पड़ती हो, भूखे रखना कितना कष्टप्रद होगा। भूख के कारण उसकी सहनशक्ति घट जाती है और पीड़ा बढ़ी हुई मालूम पड़ती है। इस अवस्था में गरम दूध, सागूदाना या इसी प्रकार का हलका भोजन अवश्य दे

देना चाहिए। इससे शरीर में बल का सञ्चार होकर प्रसव-वेदना सहने की क्षमता आती है, किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि इस समय जो भोजन दिया जाय वह गरम रहे।

द्वितीयावस्था

गर्भाशय के मुख खुलने के समय से लेकर बच्चे के जन्म होने तक के समय को प्रसव की द्वितीयावस्था कहते हैं। यह अवस्था बहुत ही खतरनाक होती है। यत्न में जरा भी त्रुटि होते ही या असावधानी पड़ते ही बच्चे अथवा प्रसूता की जान पर आ बनती है; और कभी-कभी तो दोनों को जान खोना पड़ता है। दाई की कार्य-दक्षता, परिचय तथा उसकी आवश्यकता इसी अवस्था में जान पड़ती है।

इस अवस्था में प्रसूतिका का बैठे रहना या टहलना ठीक नहीं, क्योंकि अक्सर गर्भाशय का मुख खुलने के बाद शीघ्र ही बच्चे का जन्म होता है, अतः खड़े रहने या बैठने से बच्चे के बाहर निकलने में सुविधा न होगी। इसलिए इस अवस्था के प्रारम्भ होते ही प्रसूता को लिटा देना चाहिए। मूर्ख दाइयाँ उलटा करती हैं। इस अवस्था में वे प्रसूता को बिठा रखती हैं और उसके चिल्लाने पर भी उसे लेटने की इजाज़त नहीं देतीं।

प्रसूतिका को इस दशा में चित न लिटाना चाहिए। ऐसा करने से जननेन्द्रिय पर बड़े जोर का धक्का लगता है और वह स्थान क्षत हो जाता है। प्रसूता को इस समय बाईं करवट लिटाना चाहिए। लिटा कर उसके दोनो पैर के टिहुने छाती की तरफ सिकोड़ देने चाहिए और दोनो जाँघो के बीच में एक छोटी गोल तकिया लगा देना चाहिए। ऐसा करने से उसके दोनो पैर एक-दूसरे से अलग रहते हैं और प्रसव-द्वार प्रशस्त बना रहता है।

प्रसूतिका को इस तरह लिटा कर उसके पेड़ू (कुक्षि) पर धीरे-धीरे दबा कर हाथ फेरना चाहिए। इसी तरह जङ्घा और पैर की पिण्डुरियों को भी दबाना चाहिए। ऐसा करने से प्रसूता को कुछ आराम मिलता है और पीड़ा का वेग कम मालूम होता है। दाई को इस समय उस कमरे में अकेले न रह कर आवश्यकतानुसार दो-एक अन्य स्त्रियों को भी मदद के लिए बुला लेना चाहिए।

बच्चे का सिर निकलते समय स्त्रियों को बड़ा कष्ट होता है। अनेक स्त्रियाँ उस समय चिल्लाने लगती हैं। हाथ-पैर पीटती हैं और पगलियो की तरह बड़ा उत्पात मचाती हैं। परन्तु इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। कष्ट के कारण ही उनकी यह दशा हो जाती है। इस समय अन्त्रावली पर दबाव पड़ने के कारण बहुतो को दस्त भी हो जाता है।

बच्चे का सिर दिखाई देते ही दाई को अपना एक हाथ

प्रसव-द्वार पर लगा देना चाहिए। इससे कुछ सहारा भी मिलेगा और चमड़ी फटने की दहशत न रहेगी। पहले गर्भ में चमड़ी फटने का विशेष डर रहता है। जो स्त्रियाँ आठ-दस वर्ष वाद गर्भ धारण करती हो, उनके सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि हाथ का केवल सहारा ही रहे। बच्चे के सरकने में ज़रा भी रुकावट न आने पाए।

बच्चे का सिर निकालने के बाद उसके धड़ को निकलने में कुछ समय लगता है। ऐसी दशा मे घबड़ा कर बहुधा मूर्ख दाइयाँ बच्चे का सिर पकड़ कर उसे बाहर खींचती हैं, परन्तु इससे बच्चे के गले में झटका लगने का डर रहता है। सिर निकलने के थोड़ी देर वाद पुनः पीड़ा होती है और बच्चे का समूचा शरीर बाहर आ जाता है। परन्तु यदि पीड़ा न उठे और बच्चा निकलना बन्द हो जाय, तो प्रसूतिका के पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरना चाहिए। किन्तु हाथ फेरने पर भी पीड़ा न उठे, तो एक स्त्री को प्रसूतिका का पेट ख़ूब ज़ोर से दवा रखना चाहिए और दाई को बहुत सँभाल कर बच्चे को बाहर करना चाहिए। प्रसूतिका का पेट न दबाने से बहुत रक्त बाहर निकलने की सम्भावना रहती है, जिससे प्रसूतिका क्षीण हो सकती है और कभी-कभी तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है, इसलिए उसके पेट को बराबर दबाए रखना चाहिए।

बच्चे का जन्म होते ही उसे प्रसूतिका की दाहिनी या बाईं ओर हटा देना चाहिए। ऐसा न करने से कभी-कभी प्रसूतिका के प्रसव-द्वार से जो रक्त-धारा निकलती है, वह बच्चे की नाक, कान और आँख में भर कर हानि पहुँचाती है। बच्चे को एक ओर हटा कर उसका मुख धो देना चाहिए; क्योंकि बाहर आते समय उसके मुँह में बहुत सा मल भर जाता है। इसके बाद यदि बालक भलीभाँति रोता हो तो समझ लेना चाहिए कि उसकी दशा ठीक है और नाल काटने की तैयारी करनी चाहिए; किन्तु यदि बच्चा रोता न हो तो समझना चाहिए कि या तो वह हाँफ रहा है या उसकी साँस रुँध रही है। ऐसी अवस्था में उसे बिना सावधान किए नाल न काटना चाहिए। उसे सावधान करने के लिए उसके मुँह तथा नेत्रों पर छींटे देना चाहिए। यदि ऐसा करने पर भी वह सावधान न हो तो उसे गले तक गुनगुने पानी में डुबो देना चाहिए। यदि फिर भी न रोए तो कृत्रिम साँस देना चाहिए। उसका तारीक़ा यों है—बच्चे को गोद में चित लिटा कर उसके मुँह में फूँक मारना चाहिए, और फूँक मारते समय उसके दोनों हाथ उठा कर कानों तक ले जाना चाहिए और फिर नीचे लाकर पसलियों से सटाना चाहिए। इस क्रिया को कई बार दुहराने से बच्चे का फेफड़ा काम करने लगेगा। यदि इस क्रिया से भी कोई लाभ न हो तो समझ लेना चाहिए कि बच्चा जिएगा

नहीं। बच्चे को सावधान करने या उसमें साँस जारी करने की यह अन्तिम क्रिया है। ऐसी हालत में डॉक्टर को दिखा कर सन्तोष कर लेना ही अच्छा है।

कभी-कभी बच्चे के इस प्रकार बेहोश हो जाने के कारण उसका मुँह कुछ स्याह सा पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में नाभि के पास क़रीब तीन अङ्गुल छोड़ कर नाल को शीघ्र ही काट देना चाहिए। काटने के बाद उसको थोड़ी देर योंही छोड़ देना चाहिए, जिससे थोड़ा ख़ून बह जाय। इस प्रकार नाल से थोड़ा ख़ून बह जाने पर श्यामता दूर हो जाती है।

बच्चा जब भली-भाँति रोने लगे, तब नाल काटने की तैयारी करनी चाहिए। नाल काटने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता रहती है। अक्सर इसमें असावधानी होने के कारण बच्चों को बड़ा कष्ट होता है, और कभी-कभी तो उनकी जान ही चली जाती है।

बच्चे की नाभि से तीन अङ्गुल जगह छोड़ कर एक गाँठ दे देनी चाहिए, याने किसी सूत से बाँध देना चाहिए। थोड़ी जगह लगभग एक अङ्गुल छोड़ कर फिर एक दूसरा बन्धन देना चाहिए। इन दोनों के बीच में तेज़ क़ैंची से काट देना चाहिए। नाल बाँधने के लिए सूती फ़ीता काम में लाना चाहिए। ऐसा करने से न तो रक्त ही निकलता और न बच्चे को कष्ट ही होता है। इस बात का भी ध्यान

रहे कि बाँधते या काटते वक्त नाभि पर झटका न लगे और वह खिंचने न पाए। यदि दूसरी गाँठ न लगाई जाय और माँ के पेट में इत्तिफ़ाक़ से दूसरा बालक रहा तो नाल के ज़रिए ख़ून निकल जाने से उसकी मृत्यु हो जायगी। यदि बच्चा न भी रहा तो रक्त-सञ्चय से आँवल के निकलने में मदद मिलती है।

नाल काटने के बाद बच्चे के बदन पर ख़ूब तेल मलना चाहिए—इसे तैल-स्नान ही समझिए। कई लोग बेसन या कण्डे की राख को बारीक कपड़े में छान कर उसे बच्चे के बदन पर मलते हैं, यह भी बुरा नहीं है। इसका उद्देश्य यही है कि बच्चे के शरीर पर जो मल एकत्रित हो गया रहता है, वह छूट जाय। इसके बाद उसे गरम पानी से ख़ूब अच्छी तरह स्नान कराना चाहिए और स्नान के बाद साफ तौलिए से शरीर को पोंछ कर पानी को अच्छी तरह सुखा डालना चाहिए। नाल के ऊपर तेल की एक पट्टी लगा कर और उस पर साफ रूई रख कर एक पट्टी से बाँध देना चाहिए। यह सब हो जाने के बाद गरम कपड़े में लपेट कर सुला देना चाहिए। लेकिन वह इस प्रकार न लपेटा जाय, जिससे उसकी साँस ही रुक जाय। इस समय बच्चे को अच्छी तरह न साफ करने से खुजली, फुन्सी आदि उसे बहुत सताते है और उसका शरीर सदैव के लिए बिगड़ जाता है।

प्रसव के बाद प्रसूता को पानी या कोई ठण्डी चीज़ चौबीस घण्टे तक न देना चाहिए।

तृतीयावस्था

बच्चे के जन्म से लेकर आँवल गिरने तक के समय को प्रसव की तृतीयावस्था कहते हैं। इस अवस्था में प्रसूता को चित लिटा कर उसके पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरना चाहिए। ऐसा करने से कुछ देर में आँवल गिर पड़ेगी। इसमें कभी-कभी एक घण्टे तक का समय लग जाता है।

इस समय घबड़ा कर पेट मे हाथ डालना और आँवल को तोड़-मरोड़ कर निकालने की कोशिश करना हानिकर सिद्ध होगा। आँवल को इस प्रकार निकालने से कभी-कभी प्रसूतिका को इतना रक्त जाता है कि उसका प्राणान्त तक हो जाता है। ऐसा करने से उसका पेट साफ भी नही हो पाता। आँवल का हिस्सा पेट में रह जाने के कारण जन्म भर के लिए उसे कई प्रकार की व्याधियाँ आ घेरती हैं।

प्रसव होने के बाद थोड़ी देर तक उसी के समान फिर पीड़ा होती है। यह पीड़ा गर्भाशय सङ्कुचित होने की है। ज्यों ज्यों गर्भाशय सङ्कुचित होता जाता है, त्यों-आँवल छूटती जाती है और अन्त में आप ही बाहर आ

रहे कि बाँधते या काटते वक्त नाभि पर झटका न लगे और वह खिंचने न पाए। यदि दूसरी गाँठ न लगाई जाय और माँ के पेट में इत्तिफ़ाक़ से दूसरा बालक रहा तो नाल के ज़रिए ख़ून निकल जाने से उसकी मृत्यु हो जायगी। यदि बच्चा न भी रहा तो रक्त-सञ्चय से आँवल के निकलने में मदद मिलती है।

नाल काटने के बाद बच्चे के बदन पर ख़ूब तेल मलना चाहिए—इसे तैल-स्नान ही समझिए। कई लोग बेसन या कण्डे की राख को बारीक कपड़े में छान कर उसे बच्चे के बदन पर मलते हैं, यह भी बुरा नहीं है। इसका उद्देश्य यही है कि बच्चे के शरीर पर जो मल एकत्रित हो गया रहता है, वह छूट जाय। इसके बाद उसे गरम पानी से ख़ूब अच्छी तरह स्नान कराना चाहिए और स्नान के बाद साफ़ तौलिए से शरीर को पोंछ कर पानी को अच्छी तरह सुखा डालना चाहिए। नाल के ऊपर तेल की एक पट्टी लगा कर और उस पर साफ़ रूई रख कर एक पट्टी से बाँध देना चाहिए। यह सब हो जाने के बाद गरम कपड़े में लपेट कर सुला देना चाहिए। लेकिन वह इस प्रकार न लपेटा जाय, जिससे उसकी साँस ही रुक जाय। इस समय बच्चे को अच्छी तरह न साफ़ करने से खुजली, फुन्सी आदि उसे बहुत सताते हैं और उसका शरीर सदैव के लिए बिगड़ जाता है।

प्रसव के बाद प्रसूता को पानी या कोई ठण्ढी चीज़ चौबीस घण्टे तक न देना चाहिए।

तृतीयावस्था

बच्चे के जन्म से लेकर आँवल गिरने तक के समय को प्रसव की तृतीयावस्था कहते हैं। इस अवस्था में प्रसूता को चित लिटा कर उसके पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरना चाहिए। ऐसा करने से कुछ देर में आँवल गिर पड़ेगी। इसमें कभी-कभी एक घण्टे तक का समय लग जाता है।

इस समय घबड़ा कर पेट मे हाथ डालना और आँवल को तोड़-मरोड़ कर निकालने की कोशिश करना हानिकर सिद्ध होगा। आँवल को इस प्रकार निकालने से कभी-कभी प्रसूतिका को इतना रक्त जाता है कि उसका प्राणान्त तक हो जाता है। ऐसा करने से उसका पेट साफ भी नहीं हो पाता। आँवल का हिस्सा पेट में रह जाने के कारण जन्म भर के लिए उसे कई प्रकार की व्याधियाँ आ घेरती हैं।

प्रसव होने के बाद थोड़ी देर तक उसी के समान फिर पीड़ा होती है। यह पीड़ा गर्भाशय सङ्कुचित होने की है। ज्यों ज्यों गर्भाशय सङ्कुचित होता जाता है, त्यों-आँवल छूटती जाती है और अन्त में आप ही बाहर आ

निकलती है। इसमें बहुत देर नहीं लगती और न इतनी पीड़ा ही होती है।

परन्तु कभी-कभी पीड़ा बन्द हो जाती है और आँवल नहीं गिरती। ऐसा दशा में बेहतर तो यही है कि प्रसव होते ही राई का तेल, गुड़ और हल्दी मिला कर लगभग डेढ़ पाव प्रसूता को पिला देना चाहिए। इससे गर्भाशय सङ्कुचित होता है और आँवल बाहर निकल पड़ती है।

प्रसूतिका के पेट को दाई इस प्रकार दबाए कि गर्भाशय का मुख उसके हाथ में आ जाय। मुख को हाथ में लेकर उसे दबाने से आँवल तथा मल गर्भाशय से निकल पड़ता है और बाहर आ जाता है। कभी-कभी आँवल गर्भाशय से निकल कर प्रसव-द्वार में आकर अटक जाती है। प्रसव-द्वार में उँगली डाल कर इस बात की जाँच कर लेनी चाहिए और यदि आँवल अटकी मालूम पड़े तो उसे आहिस्ते से खींच लेना चाहिए। परन्तु जब आँवल गर्भाशय में हो तो उसे कभी न खींचना चाहिए। आँवल निकल जाने पर भी गर्भाशय को उपरोक्त विधि से कुछ देर दबा रखना चाहिए, जिससे उसके अन्दर का बचा-खुचा मल भी बाहर आ जाय।

सब साफ़ हो जाने पर गर्भाशय के ऊपर कपड़े की एक गद्दी बना कर रख देनी चाहिए और उस पर पट्टी बाँध देनी चाहिए। इससे वह दबा रहेगा और जल्दी सिकु-

ड़ेगा। दस दिन तक ऐसी पट्टी बँधी रहनी चाहिए। इससे पेट की ढीली चमड़ी भी तन जाती है और प्रसूता को आराम भी मालूम होता है।

इस समय यह भी मालूम कर लेना चाहिए कि पेट में दूसरा बच्चा तो नहीं है। यदि पेट को छूने से दूसरे बच्चे का अस्तित्व मालूम पड़े तो जल्दी न करना चाहिए, वरन् लगभग आध घण्टा बैठ रहना चाहिए और स्वाभाविक प्रसव-वेदना की राह देखनी चाहिए। लेकिन सदैव इस बात का ध्यान रहे कि गर्भाशय का मुख न सिकुड़ने पाए। इसलिए यदि आध घण्टा बीत जाने पर भी बच्चा निकलने के लक्षण दिखाई न दें तो तुरन्त उसे भूमिष्ठ करने की चेष्टा करनी चाहिए। इस दशा में गर्भाशय के मुख में हाथ डाल कर धीरे से झिल्ली फोड़ देनी चाहिए। इसके बाद शीघ्र ही एक वेदना के साथ बालक बाहर आने लगता है।

यदि झिल्ली फोड़ देने के बाद भी बच्चा आप से आप सरकने का नाम न ले, तो बच्चे को पकड़ कर धीरे-धीरे नीचे उतारना चाहिए। इस काम में बहुत अधिक साव-धान रहने की आवश्यकता है। थोड़ा भाग बाहर निकल आने पर फिर उसे खींचना न चाहिए। प्रसूतिका के पेट पर धीरे-धीरे दबा कर हाथ फेरने से वेदना शुरू होगी और बालक निकलने लगेगा। इस बार बच्चा बाहर निकलते

समय भी उन्हीं बातों का ध्यान रखना चाहिए, जिनका पहली बार रक्खा गया था। इसके अलावा प्रसूता के क्षीण हो जाने के कारण बहुधा इस बार उसकी पीड़ा में गति नहीं होती और बालक की कमर निकलते समय कठिनाई होती है। जब पीड़ा उठे तो हाथ के सहारे कमर को सरका कर गति दे देना चाहिए और बच्चे को बाहर निकलने में मदद देनी चाहिए। बच्चे को खींच-खाँच करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके हाथ-पैर बँधे रहते हैं; अगर खींच-खाँच करने से वे खुल गए तो फिर उनका प्रसव-मार्ग से बाहर आना कठिन हो जायगा।

बच्चे के बाहर होने पर प्रसूता को राई का तेल, हल्दी तथा गुड़ का पान करा कर गर्भाशय को बाँध देना चाहिए और बच्चे की उसी प्रकार सावधानी करनी चाहिए, जैसा कि पहली बार बताया जा चुका है।

गर्भाशय का मुख खोलने और मांस-पेशियों को क्रिया-शील बना कर बच्चे को बाहर करने में निम्न-लिखित औष-धियाँ बड़ा काम करती हैं :—

१—गर्भिणी के प्रसव-द्वार में सर्प की केचुली की धूनी दी जाय।

२—सर्प की केचुली मिट्टी के बर्तन में रख कर जलाई जाय और इस राख को छान कर, शहद में घिस कर अञ्जन की तरह प्रसूतिका की आँखों में लगाया जाय।
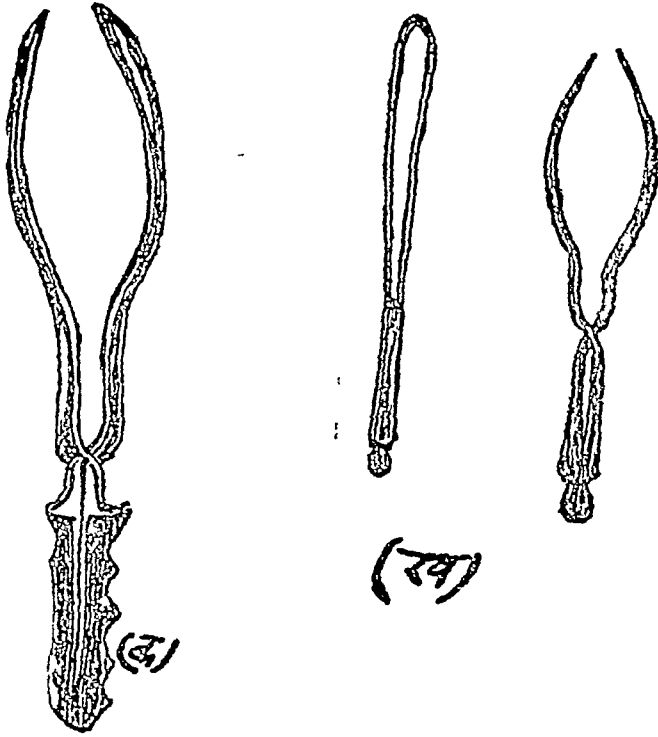
फ़र्सैप्स या शङ्कुयन्त्र

(क) डॉक्टर सिमसन द्वारा आविष्कृत फ़र्सैप्स

(ख) डॉक्टर जिगलार द्वारा आविष्कृत फ़र्सैप्स

३—अलसी व तिल शहद में पीस कर दोनों जङ्घाओं व नलों पर लेप किया जाय।

४—नौसादर व पोदीने को पीस कर उसकी वत्ती प्रसव-मार्ग में रक्खी जाय।

५—चिड़चिड़े की जड़ खूब अच्छी तरह पीस कर नाभि के नीचे से लेकर जङ्घाओं तक लेप कर दिया जाय।

६—घोड़े के सुम की धूनी दी जाय।

७—गाजर के बीज, सौंफ, सोआ, मेथी, बरगद की जड़, बनफशा और मुलहटी—यह सब चीजें तीन-तीन माशे लेकर क्वाथ बना कर पिलाए।

लेकिन इन सब औषधियों का सेवन उसी दशा में करना चाहिए, जब बहुत देर हो गई हो और स्वाभाविक पीड़ा से प्रसव न हो रहा हो; अन्यथा बाधा देना ठीक नहीं है।

प्रसव के बाद

सव-क्रिया सानन्द समाप्त होने तथा आँवल आदि गिर जाने के बाद प्रसूतिका का बिछौना और उसके कपड़े शीघ्र बदल देना चाहिए। इसके बाद उसे गरम पानी से अच्छी तरह स्नान कराना चाहिए। स्नान करने से क्लान्ति दूर होकर शरीर हलका मालूम होगा और प्रसूता को नींद आ जायगी। प्रसूता को स्नान कराते-कराते उस कमरे को खूब अच्छी तरह साफ़ कर, वहाँ की मलिनता को एकदम दूर कर देना चाहिए। स्नान के बाद प्रसूता को लगभग एक पाव दूध में आध औंस के लगभग ब्राण्डी (शराब) पिला देना चाहिए, और एक चावल भर कस्तूरी डाल कर एक पान खिला देना चाहिए। सुस्ती उतर जाने के कारण तथा ब्राण्डी के असर से प्रसूता को शीघ्र

नींद आ जायगी और ऐसा होना इस समय है भी बहुत आवश्यक।

लेटने के समय प्रसूता को अपने दोनों पैर सटा कर रखना चाहिए और अधिक हिल-डोल न कर, चुपचाप शान्त-भाव से पड़े रहना चाहिए।

प्रसूता का प्रसव-मार्ग एवं जननेन्द्रिय इस समय बहुत-कुछ क्षत-विक्षत हो गया रहता है। उसके लिए एक परात में या ऐसे चौड़े बर्तन मे, जिसमें प्रसूता बैठ सके, पानी तथा शराब मिला कर प्रसूता को इस तरह बिठाना चाहिए कि उसकी जननेन्द्रिय उस शराब-मिश्रित पानी में डूब जाय। इससे क्षत स्थानों को तो लाभ होता ही है, उस क्षत स्थान में कीटाणु इकट्ठा नहीं हो पाते। अगर कुछ कीटाणु वहाँ एकत्रित हो भी गए हो, तो वे नष्ट हो जाते हैं।

प्रसव के कारण पेट के स्नायु दुर्बल और ढीले पड़ जाते हैं। गर्भाशय बड़ा पड़ जाता है और पेट की चमड़ी झुलस जाती है। गर्भाशय के सङ्कुचित न होने से प्रसूता को अपना पेड़ू भारी जान पड़ता है और योनि में हरदम दबाव सा मालूम पड़ता है, जैसे वह बाहर को निकली पड़ती हो। कमर व पेड़ू में दर्द रहता है और गर्भाशय खिसक कर स्थान-भ्रष्ट हो जाता है। गर्भाशय के बढ़ जाने से स्त्री को अनेक रोग आ घेरते हैं और सदैव के लिए उसका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है।

इसके लिए सब से आवश्यक बात तो प्रसूता का विश्राम है। एक मास तक उसे घर-गृहस्थी के कामों में न पड़ना चाहिए और पति से बिलकुल अलग रहने की चेष्टा करनी चाहिए। लेकिन केवल इसी से काम न चलेगा, उसके लिए अन्य साधन भी आवश्यक हैं। चमड़े को सिकोड़ने में ठण्ढे पदार्थों का उपयोग किया जाता है। यह एक साधारण बात है कि गर्मी से चीज़ें फैलती और सर्दी से सिकुड़ती हैं इसलिए उबाले हुए ठण्ढे पानी में ज़रा ब्राण्डी मिला कर कपड़े को भिगो लेना चाहिए और इस साफ़ कपड़े को लपेट कर पेड़ू और जननेन्द्रिय पर रखना चाहिए, और एक कपड़ा ऊपर से डाल कर पट्टी की तरह बाँध देना चाहिए, जिससे वह सरकने न पाए। उसे दिन में कम से कम तीन बार अवश्य बदल देना चाहिए।

प्रसव के बाद लगभग पन्द्रह-बीस दिनों तक जननेन्द्रिय से थोड़ा-थोड़ा मैला स्राव निकला करता है। इसका निकलना ज़रूरी है। इसके द्वारा वह गन्दा खून निकला करता है, जो गर्भाशय की दीवारों में भरा रहता है। शुरू में यह मासिक स्राव के रङ्ग का रहता है, एक हफ्ते के बाद पीला हो जाता है और अन्त में सफेद पानी सा गिर कर बन्द हो जाता है। यह स्राव यदि अधिक मात्रा मे निकले या इसमे कुछ बदबू सी मालूम हो, तो चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। ऐसी नौबत ही न आने पावे, इसके लिए

आवश्यक है कि जननेन्द्रिय को रोज़ दो दफ़ा साफ़ कर लिया जाय।

प्रसव के बाद प्रसूतिका को एक प्रकार का भयङ्कर ज्वर कभी-कभी हो जाता है, जिसे छूत-ज्वर (Septic fever) कहते हैं। यह रक्त-दोष से हुआ करता है, जिसके निम्न-लिखित कारण हैं :—

१—चीर-फाड़ कर बच्चा निकालते समय पूरी सफाई न रखना और हाथ या अस्त्रों द्वारा क्षत स्थानों में कीटाणुओं का प्रवेश करना।

२—प्रसव के बाद स्राव का सड़ जाना।

३—दाई के हाथ, कपड़े व चाक़ू आदि की गन्दगी।

४—गर्भाशय में कमल आदि का कोई हिस्सा रह जाना और उसका पूरी तौर से साफ न होना।

५—दाई तथा डॉक्टर द्वारा किसी दूसरी रोगिणी की छूत।

६—अन्य किसी प्रकार से छूत लग जाना।

प्रसूता को जो लोग देखने आएँ, उनके सम्बन्ध में होशियार रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह प्रथा अच्छी है कि प्रसूता के पास बिना हाथ-पैर धोए तथा धूनी में हाथ-पैर सेंके कोई उस कमरे में नहीं जाने पाता। धूनी में यदि गन्धक या नीम के पत्ते डाल कर जलाए जायँ तो और भी अच्छा हो।

प्रसव के बाद प्रसूता को स्नान कराने और कपड़े, बिस्तर आदि बदलने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रसूता को बहुत हलचल न करना पड़े। यदि सम्भव हो तो उसे बिलकुल ही हलचल न करने देना चाहिए। इस प्रकार की हलचल से उसकी ढीली नसें और भी ढीली हो जाती हैं और रक्त-स्राव होने लगता है। इस समय प्रसूता कमज़ोर रहती है, अतः रक्त-स्राव से उसे भारी हानि होती है।

हम लोगों के यहाँ प्रसूतिका-गृह में अग्नि रखने की प्रथा है। यह इस लिहाज़ से है भी अच्छा कि प्रसूता को सर्दी न लगने पाए; क्योंकि वह इस समय बहुत कमज़ोर रहती है और ज़रा-सी सर्दी लगते ही प्राण पर आ बनती है। लेकिन हर बातों को विचारपूर्वक, स्थिति पर ध्यान देकर, करना चाहिए। जाड़े या बरसात में यह प्रथा ठीक है, लेकिन गर्मी के दिनों में तो इससे उलटे हानि होने की ही सम्भावना रहती है। गर्मी के दिनों में मामूली तौर पर ही इतनी गर्मी रहती है, उस समय घर भर में अग्नि तथा धूनी लगा देने से कष्ट होता है और गरमी की अधिकता के कारण उसके बीमार पड़ने की अधिक सम्भावना रहती है। धूनी जलाते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए। आग को भी प्राणवायु (Oxygen) की ज़रूरत रहती है। जिस घर में आग जलेगी, वहाँ का बहुत सा प्राणवायु

वह भक्षण कर जायगी। इसलिए जिस घर में आग जलाई जाय, वहाँ इतनी हवा आनी चाहिए कि आग के लिए ख़र्च होने पर भी आदमी के लिए यथेष्ट प्राणवायु शेष रह जाय।

प्रसूता की ख़ूराक

प्रसूता को दो-तीन दिनों तक तो केवल दूध-सागूदाना आदि हलके पदार्थों पर ही रखना चाहिए। इसके बाद बतीसा सोंठ आदि जैसा कि हिन्दुस्तानियों के यहाँ दिया जाता है, देना चाहिए। लेकिन इस सम्बन्ध में जो एक बात ध्यान रखने योग्य है, उसे लोग अक्सर भूल जाते हैं।

प्रसूता इस समय बहुत कमज़ोर रहती है, फलतः उसकी पाचन शक्ति भी ऐसी दशा में क्षीण होनी चाहिए। लोगों का साधारण तौर पर ख़्याल यही है कि इस समय वह घी, दूध, मसाला आदि पौष्टिक पदार्थ जितना अधिक खाएगी, उसे उतना ही लाभ होगा। बात है भी ठीक, लेकिन ऐसा उसी वक़्त हो सकता है, जब वह खाई हुई चीज़ों को अच्छी तरह पचा सके। इसलिए प्रसूता को उतना ही भोजन करना चाहिए, जितना कि वह पचा सके। इस बात पर हरदम ध्यान रखना चाहिए कि उसे दस्त व पेशाब बराबर आते जायँ और उसका पेट भारी न होने पाए।

प्रसव के बाद प्रसूता की मूत्र-प्रनाली साफ़ हो जाना

बहुत जरूरी है। इसलिए उसे पेशाब कराने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि प्रसव के बाद बीस-पच्चीस घण्टे तक भी पेशाब न आवे तो पेशाब लाने की दवा देनी चाहिए।

अक्सर प्रसव के बाद दो-एक दिन तक प्रसूता को दस्त नहीं आते, लेकिन यदि दो दिन बीत जाने पर भी दस्त न आए तो एक चम्मच अरण्डी का तेल पिलाना चाहिए। इस पर भी यदि दस्त न आए तो डॉक्टर की सलाह से ऐनिमा आदि द्वारा उपचार करना चाहिए।

दूध उतरना

प्रसव के तीसरे दिन तक माता के स्तन में दूध उतरता है। दूध उतरते समय स्तन कुछ फूल से जाते हैं, नसें तन जाती हैं और माता के तमाम शरीर में दर्द होने लगता है तथा हलका-सा ज्वर भी हो आता है। यह स्वाभाविक है, इससे डरना न चाहिए।

यदि दूध उतरने में देर हो तो गरम पानी में फलालैन का टुकड़ा या रूई से सेंकना चाहिए। इससे स्तन-स्रोत खुल जाते हैं। स्तन के मुलायम होने से दूध उतर आता है।

बहुत से शौक़ीन लोग बालक को इस भय से स्तन पान नहीं कराते कि उनकी स्त्री का यौवन इससे जल्दी बिगड़ जायगा। उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्तन तथा जननेन्द्रिय से घनिष्ट सम्बन्ध है। अच्छे-अच्छे

डॉक्टरों की राय है कि आवश्यक समय तक स्तन-पान कराने से गर्भाशय के सङ्कुचन में सहायता मिलती है। स्तन-पान न कराने से सङ्कुचन में बाधा आती है।

इसके अलावा यह तो स्पष्ट है कि स्तन से दूध पीकर ही बालक का शरीर बनता है। जिस प्रकार उत्तम भोजन का हमारे शारीरिक बनावट और मन तथा चरित्र पर असर पड़ता है, उसी प्रकार दूध का बालक पर पड़ता है। माता के बीमार होते ही दूध के ज़रिए माता का विकार बालक खींच लेता है और माता का रोग बालक को हो जाता है। किसी माता का दूध अच्छा होता है और उसके बालक हृष्ट-पुष्ट होते हैं। जिस माता के बालक जल्दी चलने-फिरने या बोलने लगते हैं, उसे बघदूधिन कहते हैं। इसी तरह जिस माता के बालक कमज़ोर होते हैं, उसे कमज़ोर दूध वाली कहते हैं। जिस माता के सभी बालक बचपन में ही मर जाते हैं, उसे मराछ दूध वाली, अर्थात् ऐसा दूध जिसमें जीवन-शक्ति न हो, कहते हैं। इन सब बातों से स्पष्ट है कि माता के दूध का बालक पर बड़ा असर पड़ता है।

ऐसी दशा में बालक को हीनसंस्कार वाली दाई के हवाले कर देना कितना हानिकर है, यह सब लोगों को समझना चाहिए। यदि माता का दूध रोगी न हो तथा यदि उसे यथेष्ट दूध आता हो, तो बालक के हित की दृष्टि से, अपने यौवन का ख़याल छोड़ कर, बालक को अपने स्तन

से ही दूध पिलाना चाहिए। हाँ, जिन्हें काफ़ी दूध न आए, जिनके दूध को डॉक्टर ने हानिकर बता दिया हो, उन्हें अवश्य ही किसी सच्चरित्र, नीरोग दाई की तलाश करनी चाहिए।

सन्तान उत्पन्न होने के बाद माता का शरीर ढीला न पड़े तथा असमय में ही उस पर बुढ़ापे का आक्रमण न हो जाय, इसके लिए सब से आवश्यक चीज़ है प्रसव-काल में उसकी उचित शुश्रूषा और विश्राम !

शुश्रूषा के सम्बन्ध में काफी लिखा जा चुका है। विश्राम के लिए शारीरिक विश्राम पर ध्यान देना चाहिए और एक मास तक तो अधिक हिलना-डुलना न चाहिए। इस सम्बन्ध में हिन्दुओ के यहाँ जो ४० दिनों तक सूतक लगने की प्रथा है, वह बहुत अच्छी है। ४० दिन स्त्रियों से उनके अपवित्र होने के कारण घर का काम-काज नहीं लिया जाता। लेकिन इस अपवित्रता का यह अर्थ न लगाना चाहिए कि छूने के डर से प्रसूता की उचित सेवा ही न हो पाए। इसका अर्थ यही है कि लोग उसे तङ्ग न करें और वह घर के कार्यों से अलग रहे। शारीरिक विश्राम देने के अलावा, उसे मानसिक विश्राम भी यथेष्ट मात्रा में देना चाहिए तथा घरेलू झगड़ों और अन्य सभी ऐसी बातो से उसे अलग रखना चाहिए, जिससे उसके मन या दिमाग़ पर अधिक ज़ोर पड़े।

कम से कम चार मास तक पति से प्रसूता को अलग रहना चाहिए, जिससे उसके स्नायुओं को और मन तथा मस्तिष्क को उत्तेजना में न पड़ना पड़े और उसके आराम तथा शक्ति-सञ्चय में ख़लल न पहुँचे। इसके अलावा इस समय दुबारा गर्भ रहने से भी बचनाा चाहिए। इस समय संयोग करने से यदि गर्भ रह गया तो उसके क्षीण शरीर-यन्त्र को आराम मिलना अलग रहे, उसे अस्वाभाविक तौर से इतना परिश्रम करना पड़ेगा, जितना उसकी सहनशक्ति के बाहर है। अधिकांश स्त्रियों को असमय में बुढ़ापा आने का प्रधान कारण उनका जल्दी-जल्दी गर्भ धारण करना ही है।

एक बात और देखी गई है। इस समय मैथुन-क्रिया प्रारम्भ कर देने से दूध घटने लगता है और बच्चे को कष्ट होता है तथा उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्त्री को भी इससे हानि होगी और उसका शरीर—गर्भाशय—ठीक न हो पाएगा। इस दृष्टि से भी इस अवस्था में संयोग वर्जित है।
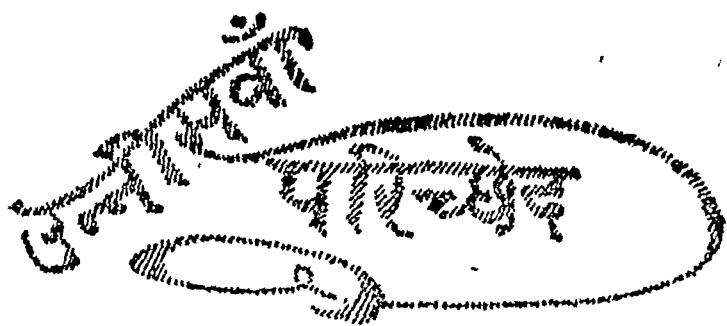
बच्चे का यत्न
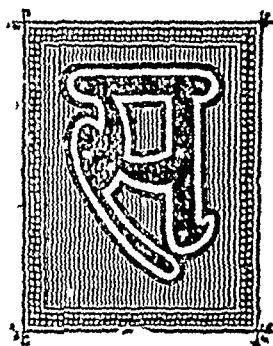
न्तान-पालन का कार्य बहुत कठिन एवं दायित्वपूर्ण है। यह हमारी अज्ञानता तथा ज़िम्मेदारी को न सँभाल सकने का ही परिणाम है कि आज इस देश के वयोवृद्ध अक्सर इस बात की शिकायत किया करते हैं। उनके बच्चे उनकी आज्ञा नहीं मानते, बेकहे हो गए—उनकी यह शिकायत व्यर्थ है। इसमें सारा दोष तो उन्हीं का है। यदि वे उचित रीति से सन्तान-पालन के अपने कर्त्तव्य निवाहते तो यह नौबत क्यों आती ? माता का इस सम्बन्ध में क्या कर्त्तव्य है, इसे पहले ही लिख आए हैं। अस्तु, यहाँ पर इस सम्बन्ध की साधारण बातों को ही चर्चा करेंगे।

बच्चे की नाल काटने के बाद उसे ख़ूब सावधानी से धोकर, उस पर एक तेल की पट्टी लगा कर तथा उस पर मुलायम साफ रूई रख कर बाँध देना चाहिए। इस पट्टी को रोज़ खोल कर देख लेना चाहिए कि नाल सूख रही है या नहीं। यदि उसमें कुछ विकार दिखे, वह पका हुआ दिखाई दे तो उसे चिकित्सक को दिखा कर शीघ्र दवा करनी चाहिए। असावधानी करने से वह बढ़ कर बड़ा घाव हो सकता है।

बच्चे की सफाई पर बहुधा लोग बहुत कम ध्यान देते हैं। लोगों की ग़रीबी की अपेक्षा उनकी अज्ञानता तथा आलस्य ही इसका ज़ोरदार कारण है। बच्चे को स्नान कराने की लोग आवश्यकता ही नहीं समझते। बच्चे को न नहलाने या ठीक तौर से न नहलाने के कारण प्रसव के दो-चार दिन बाद ही उसके शरीर पर फोड़े निकल आते हैं। कई बच्चों की तो इसी असावधानी के कारण मृत्यु तक हो जाती है।

सफाई वय-प्राप्त मनुष्य के लिए जितनी आवश्यक है, एक बच्चे के लिए भी उतनी ही आवश्यक है। कम से कम हफ्ते में दो बार बच्चे को स्नान कराना चाहिए। उसे गुनगुने जल से ही स्नान कराना अच्छा होगा। स्नान कराते समय उसे गोद में सीधे न बिठा कर लिटा देना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी नाक या

आँख में पानी की धार न पड़े। लिटा कर सिर धोने से यह बात बच सकती है।

अक्सर लोग बच्चों के गद्दे, तकिए बड़े गन्दे रखते हैं। बच्चों के लिए छोटे-छोटे कम से कम आधा दर्जन टुकड़े चाहिए। बच्चा ज्योंही इसे खराब करे, उसे सरका कर दूसरा टुकड़ा वहाँ लगा दे और उसे तुरत धो डाले। तुरत धोने से वह जल्दी साफ होगा, सूख जाने पर साफ करने में देर लगेगी।

बच्चे को प्रसव के बाद ही शहद के साथ एक बूँद अराडी का तेल चटा देना चाहिए। इससे उसके अन्दर का मल निकल जायगा। इसके बाद भी उसे आवश्यकता होने पर इसी तरह एक बूँद अराडी का तेल चटा देना चाहिए। लेकिन बहुधा इस बात की जरूरत जब बच्चा माता का दूध पीने लगता है, तब नहीं पड़ती; क्योंकि माता का नया दूध किञ्चित् रोचक होता है। परन्तु दो-तीन दिनों तक उसे दूध नहीं भाता, इसलिए एक बार तो बच्चे को अराडी का तेल चटा ही देना चाहिए।

अक्सर माताएँ ज्योंही बच्चा रोया, उसके मुँह में अपना स्तन लगा देती हैं। लेकिन बच्चा सदैव दूध के लिए ही तो नहीं रोता! कभी वह भूख से रोता है तो कभी पेट कड़ा हो जाने के कारण तथा कभी हाथ-पैर, सिर आदि में दर्द हो जाने के कारण। इसलिए बच्चे के रोते ही उसे दूध

पिलाने लगना ठीक नहीं। बच्चे के रोने पर उसके कारण का अन्दाज़ लगा लेना चाहिए। बच्चे को दूध पिलाने के लिए समय नियत कर लेना चाहिए। उसी के अनुसार दूध पिलाने से बच्चे को निमयित आहार-विहार की अभी से आदत पड़ेगी। पहले मास में प्रति दिन बारह बार; तीसरे-चौथे मास में दस बार; छठे मास में आठ बार तथा इसके बाद छः बार और एक वर्ष की अवस्था हो जाने पर इससे भी कम कर देना चाहिए। रात को अक्सर यह गड़बड़ी होती है कि बच्चा माता के हृदय से लग कर सोता है और रात भर मुँह चलाया करता है। सोने के पहले ही उसे अच्छी तरह दूध पिला देना चाहिए और आवश्यकतानुसार रात में और दो-तीन बार पिला देना चाहिए। रात भर बच्चे का मुँह चलाते रहना हानिकर है।

माता के आहार पर ही बालक का स्वास्थ्य उस समय तक निर्भर रहता है, जब तक बालक अन्न न खाने लगे। हमारे यहाँ बालको का अन्नप्राशन-संस्कार छः मास की अवस्था में ही कर दिया जाता है। यथासम्भव बालकों को एक वर्ष तक दूध पिला कर ही रखना चाहिए। बालक के लिए अन्न खाने की स्वाभाविक अवस्था वह है, जब उसके इतने दाँत निकल आएँ कि वह अन्न चबा सके। अस्तु, जब तक बालक दूध पीता रहे, माता को केवल हलकी चीज़ें ही खाना चाहिए, जिससे बालक को हानि न पहुँचे।

बच्चे कोमल होते हैं, इसलिए वे हमारी तरह सब बातों को नहीं सह सकते ; फलतः उनके स्वास्थ्य, रहन-सहन, निद्रा, विश्राम, सफाई आदि में माता-पिता को विशेष सतर्क रहना चाहिए।

बालक के लालन-पालन में भी लोग भयानक ग़लतियाँ करते हैं। कुछ लोग तो ऐसे हैं, जो हर बात में बालकों को दबाए रखना तथा साधारण से साधारण अपराध के लिए उसे कड़ा दण्ड देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे हैं, जो बालकों को अनुचित बातें करते देख कर भी दुलारने लगते हैं और कुछ नहीं बोलते। ये दोनों रास्ते बुरे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कुछ ख़ास शक्ति, प्रवृत्ति एवं संस्कार लेकर आता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसकी स्वाभाविक बाढ़ में आवश्यकता से अधिक दबाव न डाला जाय। बालक में जो बुरी बातें दिखे, उनका शमन और जो अच्छी बातें दिखें, उनका प्रोत्साहन करना चाहिए। बालक को अपने मन के मुताबिक़ मोड़ने की तो चेष्टा करनी चाहिए, लेकिन इसके लिए उस पर अनुचित दबाव डाल कर उसकी बाढ़ रोकना ठीक नहीं।

उन्हें बुरे रास्ते पर जाने से रोकने के लिए सबसे बेहतर तरीक़ा है उस दिशा की बुराइयों से उन्हें परिचित करा देना। अवश्य ही कभी-कभी डाँट-डपट की भी ज़रूरत

पड़ जाती है। लेकिन यह इतना न होना चाहिए कि बालक की स्वाभाविक बाढ़ पर अनुचित दबाव पड़े।

बच्चे को बार-बार मूर्ख, नालायक़, बदमाश कहने पर वह सचमुच ही नालायक़ हो सकता है। उसके सामने ऊँचे आदर्श रख कर उसे आगे बढ़ाना चाहिए। उसे छोटा बता कर, नालायक़ कह कर उसकी गति रोकना उचित नहीं। इसी प्रकार बार-बार बच्चों को धमकाने से वे भीरु हो सकते हैं। उन्हे निर्भीक व प्रतिभासम्पन्न बनाने के लिए सबसे आवश्यक उत्तेजना यही है कि उन्हें विश्वास करा दीजिए कि वह निडर हैं, होशियार हैं या उनमें वैसा होने की शक्ति मौजूद है। इसके लिए निर्भीकता, शौर्य आदि की कहानियाँ उन्हे बहुत लाभ पहुँचा सकती हैं। बार-बार मार खाने या डाँटे जाने से बच्चा निर्लज्ज हो जाता है। अनुचित-उचित अपनी सभी आज्ञाओ का पालन कराने तथा उनके चूकने पर उन्हे मारने-पीटने से बालक के सामने गुरुजनो की आज्ञा का कोई महत्व नहीं रह जाता, और माता-पिता की भक्ति तथा उनके प्रति स्नेह भी बालकों के मन से विलीन हो जाता है।